आ पुस्तक-" श्री जैन एडवोकेट ' प्रीन्टींग प्रेसमां वाडीलाल
बापुलाल शाहे छाप्युं, घीकांटा जेशींगभाइनी वाडी
अमदावाद.

॥ ॐ अर्हम् ॥

॥ परमोपकारि पूज्यपाद सद्गुरु श्रीमद्विजय नेमिसूरीश्वरेभ्यो नमोनमः ॥

॥ श्रीदण्डक विस्तरार्थ

प्रस्तावना

(शार्दूलविक्रीडित छंद.)

जेनो उत्तम बोध शोध करतो तत्त्वार्थना तत्त्वनी,
एकी साथ प्रशंसना मतिधनो जेना करे सत्त्वनी;
पाम्यो हुं श्रुतबोध योग विधिने जेना प्रसादे करी,
वंदुं 'श्रीगुरु नेमिसूरि' चरणे ते उपकारो स्मरी ॥१॥

सर्वज्ञ शासनरसिक प्रियबंधुओ ? निष्कारण जगद्बंधु–भावकरुणासिंधु–आसन्नोपकारि–श्री महावीरप्रभुनो–अतीत भावि वर्तमान समस्ततीर्थपतिना वचनने अनुसरनार—अचल सिद्धान्त ए फरमावेछे के– संसारि जीवोने कर्मोनो बंध या मोक्ष पोतानी अध्यवसायपरिणतिने आधीन छे.— तात्पर्य ए के— अशुभ अध्यवसायोना योगे कर्मोनो बंध अने तेथी विपरीत अप्रतिपाति उत्तम अध्यवसायोना योगे मोक्ष थायछे. एज रहस्यने प्रकट करता पूज्यपाद महोपाध्याय न्यायाचार्य श्रीमद्यशोविजयजी महाराज प्रतिपादन करेछे के–'मन एव मनुष्याणां,कारणं बन्ध मोक्षयोः ॥' तेवा प्रकारनो विशिष्ट कर्मबंध पण चउद गुणस्थानको पैकी दशमा सूक्ष्मसंपरायगुणस्थानक सुधीज होयछे. परंतु तेथी अग्रेतन उपशान्त मोहादि चार गुणस्थानकोमां ते संभवतो

नथी. कारणके ते स्थले कषायोदयनो अभाव छे. एथी ए सिद्ध थयुं के– कषायोदय अवस्थामां विद्यमान आत्मपरिणति विशिष्ट कर्मबंधमां हेतु थइ शके. एज रहस्य पञ्चम कर्मग्रन्थनी टीकामां अध्यवसायनी व्याख्या करतां श्री देवेन्द्रसूरिमहाराजाए जणाव्युं छे के "अध्यवसानान्यध्यवसायाः, ते चेह कषायजनिता जीवपरिणामविशेषाः" यद्यपि उपशांतमोहादि त्रण गुणस्थानकोमां शातावेदनीयनो बंध वर्ते छे, तो पण तेने (ते बंधने] अध्यवसायनिमित्तक स्वीकारेल नथी. कारणके श्रीपंचसंग्रहादिमां तेनी द्विसमय मात्र अल्पस्थिति प्रतिपादन करेल छे. बंधपरत्वे करेल आ संक्षिप्तविवेचन एज जणावेछे के– जीवाजीवादि नवतत्त्वो पैकी पांचमा आश्रव तत्त्व अने आठमा बंध तत्त्वना फळरूपे संसारिजीवो शुभाश्रवद्वारा करेल शुभ कर्मबंधना प्रतापे शुभ दंडकोमां एटले देव मनुष्यना दंडकोमां अने अशुभाश्रवद्वारा करेल अशुभ कर्मबंधना प्रतापे नारकतिर्यंचोना अशुभ दंडकोमां उत्पन्न थायछे. ज्यां उत्पन्न थया पछी विशिष्टसंज्ञावाला ते ते देवादि जीवोने ए प्रश्नो प्रादुर्भवे छे, जे– आ आत्माए –चोवीश दंडको पैकी कया कया दंडकोमां कयाकया हेतुओथी केवी केवी स्थिति अनुभवी ? अनुत्तरदेवो पण जेनी निरंतर अभिलाषा करी रह्या छे, अने जे निर्वाणपदनुं परम साधन छे, एवा मनुष्यभव रूप उच्च कोटीनुं स्थान विद्यमान छतां पण कया कया हेतुओथी आ जीव ते स्थान मेळववामां मंदभाग्य थयो?, कदाच पाम्यो, तोपण कया कया साफल्यप्रतिबंधकहेतुओथी यथार्थलाभ मेळववा असमर्थ थयो ? अने निगोदादिमां अनन्त काळसुधी रह्यो ? हवे पछी एवा कया कया उत्तमसाधनो सेववा जोइये ? के जेथी दीर्घकाळ सुधी अनुभवेल क्लिष्ट दुःखमय स्थितिने न पामे ? इत्यादि अनेकप्रश्नो रूपी ग्रीष्मकाळनी तृषाने शांत करवामां

अमृत समान आ ' श्रीदण्डकविस्तरार्थ ' नामनो अपूर्व ग्रन्थ छे, ए वात आर्हतसिद्धान्तना रहस्यना अभिज्ञमानवोने स्हेजे जणाइ आवशे. ते उपरांत आ ग्रंथ सम्यग्द्रष्टिने ओळखवाना पांच साधनो पैकी उपशम १. संवेग २. निर्वेद ३. आ त्रण गुणोनो आविर्भाव करवामां तेमज परंपराए मोक्ष प्राप्तिमां पण असाधारण कारण छे. आटलाज विवेचन परथी ' नवतत्त्व पछी दंडकप्रकरणनुं अध्ययन करवामां शुं प्रयोजन ? ए प्रश्नना समाधानद्वारा प्रस्तुत प्रकरणनुं मुद्रण प्रयोजन पण सहज समजाय तेम छे. यद्यपि प्रस्तुत प्रकरण सामान्यतः शब्दार्थरूपे अनेक संस्थाओद्वारा प्रकट थएल छे, तो पण तेवा सामान्य संक्षेपमात्रथी तार्किक-तत्त्वजिज्ञासुओने संपूर्ण अर्थलाभजन्य संतोष बीलकुल प्राप्त थतोज नथी. कारण के— ज्यारे तेओ ते ते मुद्रित प्रकरणना अर्थने जाणेछे, त्यारे तेओना हृदयमां स्वभावेज आ प्रमाणे तर्कश्रेणि प्रादुर्भवे छे. जे – १ – दंडक ए कयो पदार्थ छे ?. २–अधिक वा न्यून न स्वीकारता चोवीश ज दंडको मानवानुं शुं कारण ?. ३–भुवनपतिना दश दंडकोनी माफक सात नारकीयोना सात दंडको न मानवामां शुं प्रयोजन ?. ४–अमुक दंडकना अमुकजीवोने कहेल शरीरादिथी अधिक शरीरादि केम न होइ शके ?. ५–देवोए उत्तरवैक्रिय रूपे बनावेल छतां औदारिक जेवा देखाता सिंहादि औदारिक केम न कहेवाय ?. ६–वनस्पतिनी साधिक सहस्र योजननी अवगाहना कइ अपेक्षाये ?. ७–तेइंद्रिय जीवोनी त्रण गाउनी अवगाहना कया जीवनी अपेक्षाए घटे ?. ८–अवगाहनाद्वारमां वर्णवेल अवगाहना कया क्षेत्रमां कया काले संभवे?. ९-कया कया देवादि कया कया हेतुथी उत्तरवैक्रिय बनावे ?. १०–देवोए बनावेल उत्तरवैक्रियनी स्थिति अर्धमासथी अधिक होय के नहि?. तैजस काययोग नहि स्वीकारवानुं शुं कार-

ण ?. ११–ज्यारे अहीं देवोने संघयण न होय एम कीधुं तो पछी श्री जीवाभिगमादिमां प्रथम संघयण मान्युं तेनुं शुं समाधान ?. १२–लेश्या कयो पदार्थ ?. १३–शुं चारे गतिना जीवोने एक सरखीज लेश्या होय ?. १४–शुं छद्मस्थनी अने सर्वज्ञनी शुक्ल लेश्या स्थितिनी अपेक्षाए एक सरखीज होय ?. १५–समुद्घात शुं पदार्थ ?. १६–तेने करवानु शुं कारण ?. १७–कया कया जीवो कया कया समये कइ कइ समुद्घात करे ? १८–एक काले एकथी वधारे समुद्घात होय के नहि ?. १९–एक ठेकाणे स्थावरोने मिथ्यादृष्टि कीधा त्यारे अन्यत्र सास्वादन दर्शन मान्युं तेनुं शुं कारण ?. २०–पर्याप्तावस्थामां विकलेन्द्रिय सम्यग्दृष्टि के मिथ्यादृष्टि ?. २१–विग्रहगतिमां पण अचक्षुदर्शन होय के नहि ?. २२–चक्षुदर्शननो व्यापार क्यारे होय ?. २३–शरूआतथीज परमाधार्मिको सम्यग्दृष्टि होय के नहि ?. २४–विभंगज्ञानिने अवधिदर्शन होय के नहि ?. २५–तिर्यंचपंचेन्द्रियने अपर्याप्तावस्थामां अवधिज्ञान वा विभंगज्ञान होय के नहि?.२६–स्थावरोमां ज्ञान अने अज्ञान पैकी बे मतभेद कइ अपेक्षाए छे ?.२७–सास्वादनदर्शनकाले ज्ञान के अज्ञान ?. २८–समकाले एक जीवने ज्ञानलब्धि केटली होय ?. २९–अमुक दंडके कहेल योगो करतां अधिक योगो नहि होवानुं शुं कारण ?. ३०–उत्तर वैक्रिय अने आहारकना प्रारम्भे अनुक्रमे वैक्रियमिश्र अने आहारकमिश्र योग होय के औदारिकमिश्रयोग होय?. ते वखते–अमुकज योग होय तेमां शुं कारण?. ३१–शुं वधाए वायुजीवोने वैक्रियहोय ?. ३२–प्रत्येक मनुष्यादिने लब्धिरूपे केटला उपयोग केवी रीते होय ?. ३३–अमुक दंडकना जीवने कहेल उपयोगोथी अधिक उपयोग केम न होय ?. ३४–कहेल आयुःस्थिति कया जीवनी अपेक्षाए घटे ?. ३५–शुं सर्व देवलोकोमां देवीयोनो सद्भाव होय ?. ३६–इन्द्रोनुं आयुष्य ज-

घन्य भांगे के उत्कृष्ट भांगे होय ?. ३७–कया देवलोक सुधी इन्द्रादि व्यवस्था होय ?. ३८–सर्वज्ञोने संज्ञा न होय तेनुं शुं कारण ? ३९–अन्यदर्शनकारो भवान्तर विषयक गत्यागति ईश्वरेच्छा अने तेनी प्रेरणाथी माने छे त्यारे जैनो कर्मद्वारा माने छे. तेनु शुं समाधान ?. ४०–देवोने श्रीभगवतीसूत्र अने श्रीविचारसप्ततिमां ५ पर्याप्तिओ अने श्री नवतत्त्व भाष्यादिमां ६ पर्याप्तियो कीधी तेनु शुं कारण ?. ४१–अनुत्तरविमानवासि देवोने शब्दोच्चारना अभावे वचनयोग केम घटे ? जो ते न होय तो भाषापर्याप्ति केवी-रीते घटे ?. इत्यादि ॥

जो तेओना ते व्याजबी तर्कोनुं पण समधान दीर्घकाल सुधी न थाय तो ए पण तर्को चिरस्थायि थतां तेओनुं सम्यग्दर्शन पोतानी पूर्वस्थिति साचवी शकशे नहि ? कारणके जिज्ञासाजन्य तर्क पण कालान्तरे एवा संशयरूपे परिणमे छे, के- जे तर्क–श्रद्धाने पण अंशे अंशे घटाडनार नीवडे छे. आभाव– वर्तमानजमानाना अनेक दृष्टान्तोद्वारा अनुभवगोचर थइ शके तेम छे. तेमज पदार्थ तत्त्वोनो संगीन बोध पण प्रकट थयेल तर्कोना समाधाननेज आधीन छे, जेथी तार्किक भव्यसमाजने सानन्द समाधान मलवा पूर्वक संगीनबोध संपादन कराववो, ए पण आ प्रस्तुत प्रकरणनुं बीजुं मुद्रण प्रयोजन छे.

हवे—१—प्रस्तुत प्रकरणने बीजा कोइपण शब्दथी न ओळखावतां दंडक शब्दथी ओळखाववानुं शुं कारण ?, २. कर्ताए आ प्रकरणने स्तुतिग्रन्थनी माफक स्वतंत्र पद्धतिए रच्युं छे के सिद्धान्तपद्धतिए ? जो सिद्धान्तपद्धतिए तो कया कया सिद्धान्तोने अवलंबीने रच्युं ? ३ ते ते सिद्धान्तोमां दंडकोनुं स विस्तरवर्णन छतां पण पृथक् रचनानुं शुं प्रयोजन ? आ प्रश्नोनुं समाधान करवुं व्याजबी छे— ते संक्षेपमां आ प्रमाणे—

१ जीवने स्वकर्मजन्य फलानुभव योग्य कया कया स्थानको छे? ए जणाववा माटे प्रस्तुत प्रकरणने दंडक पदथी ओळखावेल छे. २ आ दंडकोनुं मुख्यत्वे करी आपणा परमपूज्यतम पञ्चमांग श्री व्याख्याप्रज्ञप्ति (श्री भगवती) सूत्र तथा चतुर्थोपांग श्री प्रज्ञापना सूत्रमां सविस्तर वर्णन करेल छे. जेथी अहीं संज्ञाक्रमादि पण प्रायः तदनुसारेज राखेल छे. ३ तेओनुं सार्वजनिक अध्ययन नहि होवामां बे प्रयोजनो छे. जे १ मूल प्राकृतभाषानो अपरिचय तथा वृत्तिग्रन्थोनी संस्कृत भाषानुं काठिन्य. २ जिनाज्ञाधारि साधुओने पण अध्ययननिमित्ते योगोद्वहन क्रियानी आवश्यकता. तेथी सार्वजनिक उपकार करवा माटे कर्त्ताए आ मूल प्रकरण बनावेल छे.

सज्जनो ! जाणमांज हशे के "परिचय ए प्रवृत्तिनुं कारण छे" तेथी आ श्रीदंडकविस्तरार्थ केटला भागमां केवी रीते व्हेंचायेल छे? आ बाबत पण टुंक परिचय कराववो व्याजबीज छे. त्रण विभागे व्हेंचाएल आ ग्रन्थना कर्ताए—

१. प्रथमविभागे-मंगलाचरणादि करवापूर्वक चोवीश दंडकोना नामो, तथा भेद प्रभेदनुं सविस्तरवर्णन, तेमां उपयोगी प्रश्नोत्तरो, चोवीशे द्वारोनुं सविस्तर स्वतंत्रवर्णन करवा पूर्वक चोवीशे दंडकोमां ते द्वारो समजावी, पर्यन्ते श्री परमात्मापासे स्तुतिद्वारा मोक्षपदनी प्रार्थना करी तथा स्वपरिचय करावी ग्रन्थसमाप्ति करेल छे.

२ द्वितीय विभागे-दंडकार्थ विषयक बे स्तवनो तेमां—

१.--प्रथम स्तवन श्रीउत्तमविजयजी महाराजना शिष्य पण्डित श्रीपद्मविजयजीगणिए भावनगरमां रचेल छे. जेमां २४ दंडकोमां २९ द्वारो टुंकमां समजावेल छे. तेमां २८ द्वारो उपरांत १ नामद्वार जेमां २४ दंडकोना नामो दर्शावेल छे. २ संपदाद्वार. जेमां १४ चक्रवर्त्तिना रत्नो तथा तीर्थंकरादि ९. सर्वमली २३ संपत्तियो कहेल छे. ३

धर्मद्वार-जेमां दरेक दंडकप्रत्ये विरतिधर्मनी विचारणा दर्शावेल छे. ४ जीवयोनिद्वार-जेमां दरेक दंडकना जीवने केटली केटली योनियो होय ए भाव जणावेल छे. ५ कुलद्वार-जेमां दरेक दंडकना जीवने केटली केटली कुलकोटीयो होय, ए अर्थ प्रतिपादन करेल छे. एम पांच द्वारो वधारे जणावेल छे.

२. बीजुंस्तवन— श्रीविजयहर्षवाचकना शिष्य श्री धर्मचन्द्रमुनिए जेसल्मेरमां १७२९ नी सालमां दीवालीपर्वना दिवसे बनावेल छे. जेमां श्री पार्श्वनाथभगवाननी स्तुति करवा द्वारा गत्यागतिना बे द्वारो विस्तारथी वर्णवेल छे.

३–तृतीय विभागमां — मूल प्रकरण तथा ते उपर स्वोपज्ञ अवचूर्णि छे, प्रकरणकार जिनसमुद्रसूरिना पट्टप्रतिष्ठित जिनहंसमुनीश्वरना राज्यमां वर्तमान-श्रीधवलचन्द्रगणिना शिष्य गजसागरगणि छे. तेमणे आ जिनविज्ञप्तिरूप दंडक प्रकरण जे तेमनाथी पूर्व समयमां पत्र उपर यन्त्ररूपे लखेल हतुं. ते सुगमताने माटे एटले बालजीवो अल्पशब्दोमां अर्थलाभ लइ शके, ए हेतुथी पाटणमां विक्रम संवत् १५७९ नी सालमां सूत्ररूपे गुंथ्युं. तेमणे अवचूर्णिमां मूल सूत्रनो आशय संक्षेपमां सारी रीते समजावेल छे जेमांना केटलाएक कंठस्थ करणीय ज्ञेयमुद्दाओ ए छे जे—

१ स्वकीय क्षायोपशमिक ज्ञानद्वारा रागादिभाव शत्रुओने हठाववामां यथाशक्ति प्रवृत्तिपरायण सम्यग्दृष्टि जीवने दृष्टिवादोपदेशकी सज्ञा होय.

२ लब्धिद्वारा उत्तरवैक्रियकारक जीव ते शरीरमां अन्तर्मुहूर्त कालथी वधु अवस्थान न करी शके. कारण तेटलो काल वीत्या बाद ते जीव औदारिक शरीरमां स्वस्थ बनेछे.

३ कार्मग्रन्थिक मते देवोने तथा नारकोने संहनननो प्रतिषेध तथा सैद्धान्तिकमते तेनो सद्भाव होयछे.

४ — १० संज्ञाओ उपरांत केटलाएक मनुष्योने श्री आचारांग सूत्रमां कहेल — १ मोक्ष २ धर्म ३ सुख ४ दुःख ५ जुगुप्सा ६ शोक ए ६ संज्ञाओ पण होय छे. परन्तु तेवा जीवो अल्प होवाथी मूलसूत्रमां आ अधिकार ग्रहण करेल नथी. ५ वायु विगेरेना ध्वजादि संस्थानो श्रीभगवतीसूत्रना आधारे दर्शावेल छे. ६ ' सव्वे वि चउक्कसाया' आ वचन प्रथमना अगीआर गुणस्थानकोना जीवोने उद्देशीने कहेल छे.७ सामान्यथी सात नरकस्थानकोमां त्रण लेश्याओ कही. विशेषथी दरेक नरकस्थाने एकज अवस्थित लेश्या होय ते आ प्रमाणे, पहेलो बीजी नरकमां कापोतलेश्या, त्रीजी नरकमां उपरना प्रस्तटोमां कापोतलेश्या, नीचेना प्रस्तटोमां नीललेश्या, चोथी नरकमां नीललेश्या, पांचमीमां उपरना प्रस्तटोमां नीललेश्या, नीचेना प्रस्तटोमां कृष्णलेश्या. छट्ठी सातमी नरकमां कृष्णलेश्या अने तेवी रीते देवलोकमां पण सामान्यथी ६–लेश्याओ कही. विशेषथी -भुवनपति तथा व्यन्तरोमां पहेली–४–लेश्याओ तथा ज्योतिषि तथा सौधर्मेशान देवलोकमां तेजोलेश्या, ३–४–५मा देवलोकमां पद्मलेश्या होय. आगळ अनुत्तरविमानसुधीना देवस्थानोमां शुक्ललेश्या होय. ८ पृथ्वी–जल–वनस्पतिमां कार्मग्रन्थिकमते बे अज्ञान अने सैद्धान्तिकमते औपशमिकदर्शनने वमतां तथा ते त्रण दंडकोमां उत्पन्न थतां–ईशानसुधीनां देवोने स्वीकारेल सास्वादनदर्शनना योगे अन्तर्मुहूर्त्त काल सुधी अपर्याप्त अवस्थामां बे ज्ञान पण होय.

तथा अवचूर्णिकारना समयथी पश्चाद्भाविसमयमां विद्यमान वृत्तिकार श्रीरूपचन्द्रजी महाराज—जे-श्री हीरसूरिजी महाराजना शिष्य उपाध्याय भानुचन्द्रगणिना शिष्य उदयचंद्रजीना शिष्य हता.तेमणे विक्रम संवत १६७५ना जेठ सुद ६ गुरुवारे ५३६ श्लोक प्रमाण-अवचूर्णिने अनुसरनारे आ वृत्ति बनावी एम प्रशस्ति-

ना श्लोकोद्वारा जणायछे.जेमांनां केटलाएक कंठस्थ करणीयमुद्दाओ आ प्रमाणे--१–प्रथमना ६ समुद्घातोनी स्थिति अंतर्मुहूर्त्त अने ७-मा केवलीसमुद्घातनी स्थति समय ८.२—श्रीसर्वज्ञमहाराजाने त्रण संज्ञाओ पैकी एक पण संज्ञा न होय. कारण--कर्मना क्षयोपशमजन्य संज्ञाओ छे. ते क्षायोपशमिक भाव सर्वज्ञने न होय. ३-ग्रैवेयक अने अनुत्तरविमानवासि देवो-सामर्थ्य छतां पण प्रयोजनना अभावे उत्तरवैक्रिय रचना न करे. ४–देवोनुं उत्तरवैक्रिय शरीर–उंचाइमां चतुरंगुलहीन लक्षयोजन. कारण–तेओ जमीनथी चार अंगुल अस्पृष्ट रहेछे. तथा मनुष्यो तेवा नहि होवाथी चार अंगुल अधिक लक्षयोजन प्रमाण उत्तरवैक्रिय रचना करे. ५–मतान्तरे–वायु जीवोने एक वैक्रिय शरीरज होय एम श्री अनुयोगद्वार वृत्तिमां कहेल छे ६ संमूर्च्छिम पंचेन्द्रियतिर्यंचने सैद्धान्तिकमते सेवार्त्तसंहनन अने कार्मग्रन्थिकमते छ ए संघयण होय. ७–परमाधार्मिक देवोने एक कृष्ण लेश्याज होय, ८ श्रवण नेत्रने कामेच्छा शेषत्रणने भोगेच्छा. ९–ज्यां केवल मनुष्योज उत्पन्न थइ शकेछे एवा आनतादि देव लोकना देवो एकसमयमां संख्याताज च्यवे तथा उपजे, कारण—तेओनी उत्पत्ति संख्याता एवा गर्भज मनुष्योमांज होइ शके छे. १०–कर्मनायोगे श्रोताओने कदाच बोध न थाय तोपण अनुग्रहबुद्धिथी उपदेशकने घणी निर्जरा थायज.

अनन्तर जणावेल कार्मग्रन्थिक अने सैद्धान्तिकना बे मतभेद पैकी अमुकज मत साचो छे,एवो निर्णय छद्मस्थ जीवो न करी शके. कारण–ए मतभेद वाचनाभेदजन्य छे. वाचना भेद थवानुं कारण आ छे–क्षयिकज्ञानवाला पूज्यपाद त्रिकालभावि सकलतीर्थपति महाराजाओनो तो मूलथी एकजमत छे. कारण–अतीत अनन्त तीर्थंकरोमांना एक पण श्रीमान् तीर्थंकरमहाराजाए अर्थदेशनाद्वारा एवो शब्दप्रयोग नथी कर्यो जे आ– परमाणु आदि पदार्थना

स्वरूपने हुं पोतेज प्रतिपादन करुं छुं परन्तु एज प्रतिपादन कर्युंछे के—जेम अतीत अनंता तीर्थकरोए जे पदार्थभाव जेवारूपे प्ररूप्यो अने भावि अनन्ता तीर्थंकरो जे पदार्थभावने जेवारूपे प्ररूपशे, तेनेज अनुसरीने हुं आ विवक्षितपरमाणु आदि पदार्थना स्वरूपने निरुपण करुंछुं. अने तेज हेतुथी अविच्छिन्न प्रभावशालि-त्रिकालावाधित भवोभव चाहना करवालायक—जैनेन्द्रशासननी लोकोत्तरता सिद्ध थायछे. जेमां त्रिकालभावि सर्वधर्मोपदेशकोमां प्ररूपणा भेद होइ शकेज नहि. एज प्रणालिकाना विरहथी अन्यदर्शनकारोने निरुपाये कहेवुं पड्युं के—

श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना,
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणं । (मतं न भिन्नमित्यप्यन्यत्र)
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां,
महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥ १ ॥

कालान्तरे सूत्रार्थविषयक विस्मृति आदि हेतुओना संनिधानथी वाचनाभेद थयो.आ भाव टुंकामां श्रीजंबुद्वीप प्रज्ञप्ति टीकामां वर्णवेल छे. तेमज परोपकारधुरीण आचार्य श्रीमलयगिरि महाराजाए पण श्री ज्योतिष्करण्डक नामना प्रकीर्णकनी वृत्तिमां कर्युंछे के— जैनेन्द्रशासनभावि श्री स्कन्दिलाचार्यना समयमां पांचमा दुःषम आराना प्रतापे दुर्भिक्षकाल प्रवर्त्यो. जेथी साधुओमां सिद्धान्तवाचनादि प्रवृत्ति मंद थवा लागी. दुष्काल वीत्या बाद सुभिक्षकाल समये १–वलभीपुर [वळा) २–मथुरा एम बे स्थले संघ भेगो थयो. जेमां सूत्रार्थनी संयोजनाना समये अतीतदुष्कालना प्रतापे सूत्रार्थनी विस्मृति थयली होवाथी—वाचनाभेद थयो. ते अवसरे संसारमां अनन्तकाल सुधी भ्रमणकरावनारी प्रवचनाशातनाथी भय पामनार—कदाग्रहरहित—तथा अव-

ध्यादि प्रत्यक्ष ज्ञानरहित—अने तेज हेतुथी अमुकज वाचनापाठ सत्य छे एवो निश्चय करवो अशक्य जाणनार संघनायक पूज्यपाद—श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण महाराजा विगेरे आचार्य महाराजाओए ते ते वाचनाओना पाठो परस्पर अविसंवादपणे स्मरणने अनुसारे तदवस्थज पुस्तकारूढ कर्या, जेथी आज सुधी पण तेज पद्धति तदवस्थभावे दृष्टिगोचर थायछे जेमां अवसाने ' आ बे अर्थमां सत्य अर्थ कयो ? ते केवलिगम्य छे एवो उल्लेख देखायछे.

आ श्रीदंडकप्रकरणनो अनुवाद—छूटा शब्दार्थ मास्तर. चंदुलाल नानचंदे लखेल छे. अने प्रकरणना विषमस्थलोने सैद्धान्तिक सरलशैलीए स्पष्ट विवेचन टिप्पणी यन्त्रादि साथे समजावनार—मारा परमोपकारिशिरोमणि— चारित्रादिगुणोने वृद्धि पमाडनार— उत्तम ब्रह्मचर्यादि लोकोत्तर सद्गुणोने धारण करनार—जंगमकल्पतरु—कलिकाले श्री गौतम गुरुसमान—श्री जैनेन्द्रशासनतीर्थरक्षणपरायण—परोपकारशील—भावकरुणाजलनिधि —पूज्यपाद—प्रातःस्मरणीय—भावाचार्य पुरंदर—श्रीस्थानांगोक्त पञ्चातिशयधारक—तपोगच्छाचार्य श्रीपरम गुरुवर्य श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वर भगवत्पट्टपूर्वाचलनभोमणि—सदाचारशीलवैराग्यगुरुभक्तिपरायण, वासीचंदननी माफक भव्य जीवोने श्रुतादिना अध्यापनादिद्वारा कृतार्थी बनावनार—मारा श्रुतादिपाठक, सत्कृतिसांनिध्यकारक—परमोपकारी गीतार्थमुख्य—सिद्धान्तवाचस्पति-न्यायविशारद पूज्यपाद श्रीमद्विजयोदयसूरिजी महाराज छे. जेथी तेओश्रीनो आ अनहद आभार अनाग्रही—गुणग्राही तत्त्वरसिक भव्यजीवोने अविस्मरणीय छे, पर्यन्ते भव्यजीवो आ ग्रंथना अध्ययन—अध्यापन—मनन—अने निदिध्यासनद्वारा दंडकोनुं यथार्थ स्वरूप समजी, शुभ दंडकोने सुवर्णनी बेडी समान, अने अशुभ दंडकोने लोहनी बेडी समान गणी, पोताना

दंडकस्थानो दूर करी, द्वादश भावनाना ध्यानरूप पवनना झपाटाथी अष्टकर्मरूप वादळाने हठावी–पोताना अव्याबाध निरुपाधि शाश्वत सच्चिदानन्द सूर्यने प्रकट करी–अने ते द्वारा लोकालोकना भाव जाणी–स्वपरोपकार करवापूर्वक मुक्तिपद पामे. एम हार्दिक निवेदन करी, हवे हुं आ टुंक प्रस्तावनाने संक्षेपी लइश. कारणके श्रीवीतरागबिंबनुं संक्षिप्त वर्णन पण प्रभुदेवमां रहेला लोकोत्तर गुणोनुं भान कराववाद्वारा भेदज्ञानिजीवने तत्स्वरूपे लीन थवामां निबंधनभूत थायज छे. तथा छद्मस्थ जीवोने आवारक कर्मोना प्रतापे अनाभोगजन्यस्खलनाओ दुर्निवार्यछे यतः—

अवश्यं भाविनो दोषाः, छद्मस्थत्वानुभावतः ॥
समाधि तन्वते सन्तः, किनराश्चात्र वक्रगाः ॥ १ ॥

तेथी आ ग्रंथमां गुणग्राही–विज्ञवाचक वर्गने दृष्टिदोषजन्य या मुद्रणजन्य जे कोइ योग्य भूलचूक जणाय, तेने महाशयो सुधारीने वांचशे. अने कृपा करी जणाववा तस्दी लेशे, तो बीजी आवृत्तिमां सुधारो पण थइ शकशे. इत्यलं विस्तरेण भूयाद्भद्रं श्री श्रमणसंघस्य.

निवेदक—

श्री गुरु नेमिसूरीश्वरचरणकिंकर—

मुनि पद्मविजयः



॥ ॐ अर्हं नमः ॥

॥स्वपरसमयपारीण–विश्वोपकारधुरीण–चारुचारित्र–तपोगच्छाधिपति
आचार्यश्रीविजयनेमिसूरिसद्‌गुरुभ्यो नमः ॥

॥ अथदंडकाविस्तरार्थः ॥

॥ यंत्रादिविभूषितः ॥

नत्वा श्रीमन्महावीरं, नेमिसूरिं गुरुं तथा ।
दण्डकाख्यस्य शास्त्रस्य, विस्तरार्थं तनोम्यहम् ॥ १ ॥

अवतरण—आ प्हेली गाथामां मंगलाचरण करवा पूर्वक दंडकरूप पदवडे श्रीऋषभदेव वगेरे २४ भगवाननी स्तुति स्वरूप दंडकप्रकरण अपरनाम विचारछत्रीशी अथवा लघुसंग्रहणि ग्रन्थ सांभळवामां भव्योने सावधान करे छे. ?

नमिउं चउवीसजिणे–तस्सुत्तवियारलेसदेसणओ ।
दंडगपएहिं ते च्चिय–थोसामि सुणेह भोभव्वा ? ॥ १ ॥

(संस्कृतानुवादः)

नत्वा चतुर्विंशतिजिनान्–तत्सूत्रविचारलेशदेशनतः ।
दंडकपदैः तांश्चैव, स्तोष्यामि श्रुणुध्वं भो भव्याः ? ॥ १ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

नमिउं–नमस्कार करीने.
चउवीस–चोवीश.
जिणे–जिनेश्वरोने.
तस्सुत्त–तेमना सिद्धांतनो.
वियार–विचार–स्वरूप.
लेस–लेशमात्र–किंचित्.
देसणओ–दर्शाववाथी.

दंडगपएहिं–दंडकनां पदोवडे.
ते–तेओने (–श्रीजिनेश्वरोने)
च्चिय–निश्चय.
थोसामि–स्तवीश.
सुणेह–सांभळो.
भो–हे.
भव्वा–भव्यजनो !

गाथार्थः—चोवीश जिनेश्वरोने नमस्कार करीने तेमना सिद्धान्तनुं स्वरूप लेशमात्र देखाडवा पूर्वक (२४) दंडक+पदोवडे (–दंडकनां स्थानवडे) निश्चय तेमनी (–जिनेश्वरोनी) स्तुति करीश ते हे भव्यो सांभळो !

विस्तरार्थः—आ ग्रंथमां अभिधेय (–विषय) २४ प्रभुनी स्तुति करवानो छे, हवे ते स्तुति प्रभुना गुणनुं वर्णन–प्रभुनी कायनुं वर्णन–प्रभुनां वचनोनुं वर्णन इत्यादि द्वारा अनेक प्रकारे प्रभु स्तुति थइ शके छे, त्यां आ ग्रंथकर्ता 'गजसार मुनि' आ ठेकाणे सिद्धान्तरूप प्रभुनां वचनोना वर्णनरूपे प्रभु स्तुति करे छे, माटे मूळ गाथामां कह्युं छे के " तस्सुत्तवियारलेसदेसणओ–तेमना सिद्धान्तनुं स्वरूप लेश मात्र देखाडवा पूर्वक (चोवीश दंडकपदोवडे) हुं तेमने स्तवीश. " वळी ए प्रमाणे जे स्तवना करवी ते पण हंमेशां नमस्कार कर्या बाद थाय छे माटे प्रथममां प्रथम " चोवीश जिनेश्वरने नमस्कार करीने " एम कह्युं छे. चालु पद्धति पण एज छे के भगवानने प्रथम नमस्कार कर्या बाद तेमनी स्तुति बोलाय छे एज पद्धति आ गाथामां दर्शावी छे. हवे तेमना सिद्धान्तनो विचार लेश मात्र देखाडवाने जे स्तवना कर-

वी छे, ते सिद्धान्तनो विचार तो नयवर्णनथी–निक्षेपवर्णनथी–द्रव्यानुयोगना वर्णनथी–गणितानुयोगना वर्णनथी इत्यादि अनेक प्रकारे थइ शके छे तो अहिं कया प्रकारनो विचार दर्शावी स्तवना करवी छे? ते जणाववाने माटे कहे छे के–'दंडगपएहिं'–दंडकनां २४ स्थान ते वडे स्तवना करवानी छे. अहिं जेटला भगवाननी स्तुति करवी छे तेटलांज दंडकनां स्थानोवडे सिद्धान्तनुं पण किंचित् स्वरूप दर्शाववानुं छे. माटे हे भव्यो तमे सांभळो.

अर्थात् आ दंडक प्रकरण ते २४ जिनेश्वरनी स्तुतिरूपे रचायलुं छे, अने ते स्तुति प्रभुना गुण वगेरेनी नहिं पण प्रभुनां सिद्धान्तगत वचनोनी छे.

भरत अने ऐरवतक्षेत्रमां प्रति उत्सर्पिणी अवसर्पिणीमां २४–२४ ज तीर्थंकरो थाय छे माटे चोवीशनी स्तवनाथी अतीत अनागत वर्तमान तमाम चोवीशीओ (अनन्त चोवीशीओ) नी स्तवना थइ! आ प्रकरणमां करेली स्तुति ते नमस्कार आशीः इत्यादि स्वरूप कोइ नही पण विज्ञापनारूप छे, जे माटे प्रकरणने अन्ते पोतेज ग्रन्थकार 'गजसार मुनि' ते आशय व्यक्त करे छे. "दंडतिय विरइ मुलहं, लहुं मम दिंतु मुक्खपयं."

॥ प्रथम गाथा तात्पर्यार्थ. ॥

मंगलाचरण, दंडकपदे करी अभिधेय, भवा एपदे करी भव्यवजी अधिकारी, संबन्ध तथा फल अर्थपत्तिथी सूचव्यां छे. (१)



अवतरण—आ गाथामां प्रकरण वक्तव्यतानो उद्देश करवा २४ दंडकनां नाम दर्शावे छे.

नेरइया असुराई, पुढवाइ बेन्दियादओ चेव ।
गब्भयतिरियमणुस्सा, वंतर जोइसिय वेमाणी ॥ २ ॥

(संस्कृतानुवादः)

नैरयिका असुरादयः पृथ्व्यादयो द्वीन्द्रियादयश्चैव ।
गर्भजतिर्यग्मनुष्या, व्यन्तरो ज्योतिषिको वैमानिकः ॥ २ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

नेरइया–नारक.
असुराई–असुरकुमार वगेरे (१०)
पुढवाइ–पृथ्विकाय वगेरे (५)
बेन्दियादओ–द्वीन्द्रिय वगेरे (३)
चेव–निश्चय.
गब्भय–गर्भज.
तिरिय–तिर्यंच.
मणुस्सा–मनुष्यो.
वंतर–व्यन्तर.
जोइसिय–ज्योतिषी.
वेमाणी–वैमानिक.

गाथार्थः—सात नारकनो १–असुरकुमार वगेरे १०–पृथ्वीकायवगेरे ५–द्वीन्द्रिय वगेरे ३–गर्भजतिर्यंचनो १–गर्भज मनुष्यनो १–व्यंतरनो १–ज्योतिषीनो १–ने वैमानिकनो १ (एम २४ दंडक छे.) (अहिं चेव ए शब्दमां चकार समुच्चयवाचक ने एव निश्चयवाचक गाथा पूर्त्यर्थ छे)

विस्तरार्थः—आ गाथामां २४ दंडकनां नाम कह्यां छे, त्यां 'नेरइया'–साते प्रकारना नारकनो १ दंडक गणेलो छे, ते ७ नारकनां नाम—रत्नप्रभा पृथ्वीना नारक, शर्कराप्रभाना नारक, वालुकाप्रभाना नारक, पंकप्रभाना नारक, धूमप्रभाना नारक, तमःप्रभाना नारक ने तमस्तमःप्रभाना नारक. तथा 'असुराइ'–असुरकुमारादि १० भवनपतिना १० दंडक, तेनां नाम—असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वायुकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, ने द्वीपकुमार (आ अ-

नुक्रम तत्त्वार्थनो छे.) अहिं १५ [1]परमाधार्मिकदेवो असुरकुमार-निकायना छे. तथा 'पुढवाई'–पृथ्वीकाय विगेरे ५ दंडक तेनां नाम—पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय, ने वनस्पतिकाय तथा 'बेंदियादओ'–द्वीन्द्रियादि ३ दंडक तेनां नाम—द्वीन्द्रिय, त्री-न्द्रिय, ने चतुरिन्द्रिय ए ३ विकलेन्द्रिय पण कहेवाय छे. तथा 'ग-ब्भयतिरिय'–गर्भज तिर्यंचनो १ दंडक, तेमज (गब्भय) 'मणुस्सा'–गर्भज मनुष्यनो १ दंडक, तथा व्यन्तर ८ प्रकारना अथवा १६ प्रकारना अथवा १०५ प्रकारना तेनां नाम—भूत–पिशाच–यक्ष--राक्षस--किन्नर--किंपुरुष--महोरग--ने गंधर्व ए आठ मूळव्यन्तर छे, तथा व्यन्तरनी बीजी वाणव्यन्तर नामनी जातिना पण ८ भेद छे तेनां नाम—अणपन्नि--पणपन्नि--ऋषिवादि--भूतवादि--कंदित--महाकंदित--कोहंड--ने पतंग ए प्रमाणे ८ मळी १६ प्रकारना व्यन्तर कह्या, अने ए सर्वना उत्तरभेद मळीने १०५ प्रकारना व्य-न्तर देवो छे तेनां नाम—

१० किन्नर.	१० किंपुरुष.	१० महोरग.	१२ गांधर्व.
१ किन्नर	१ पुरुष	१ भुजग	१ हाहा
२ किंपुरुष	२ सत्पुरुष	२ भोगशाली	२ हूहू
३ किंपुरुषोत्तम	३ महापुरुष	३ महाकाय	३ तुंबरु
४ किन्नरोत्तम	४ पुरुषवृषभ	४ अतिकाय	४ नारद
५ हृदयंगम	५ पुरुषोत्तम	५ स्कंधशाली	५ ऋषिवादिक
६ रूपशाली	६ अतिपुरुष	६ मनोरम	६ भूतवादिक
७ अनिन्दित	७ मरुदेव	७ महावेग	७ कादंब
८ मनोरम	८ मरुत	८ महेष्वक्ष	८ महाकादंब

[1] अंब-अंबरीष-शबल श्याम-रौद्र-उपरौद्र-असिपत्र-धनु-कुंभ-महाकाल-काल-वैतरणी वालुक-महाघोष-खरस्वर—ए ना-मना १५ परमाधार्मिक देवो असुरकुमार निकायना छे.

९ रतिप्रिय	९ मेरुप्रभ	९ मेरुकान्त	९ रैवत
१० रतिश्रेष्ठ	१० यशस्वत्	१० भास्वन्त	१० विश्वावसु
			११ गीतरति
			१२ गीतयश

१३ यक्ष.	७ राक्षस.	९ भूत.	१६ [1]पिशाच
१ पूर्णभद्र	१ भीम	१ सुरूप	१ कुष्मांड
२ माणिभद्र	२ महाभीम	२ प्रतिरूप	२ पटक
३ श्वेतभद्र	३ विघ्न	३ अतिरूप	३ जोष
४ हरिभद्र	४ विनायक	४ भूतोत्तम	४ आन्हक
५ सुमनोभद्र	५ जळराक्षस	५ स्कंदिक	५ काल
६ व्यतिपातिकभद्र	६ राक्षसराक्षस	६ महास्कंदिक	६ महाकाळ
७ सुभद्र	७ ब्रह्मराक्षस	७ महावेग	७ चोक्ष
८ सर्वतोभद्र		८ प्रतिच्छन्न	८ अचोक्ष
९ मनुष्ययक्ष		९ आकाशग	९ तालपिशाच
१० वनाधिपति			१० मुखरपिशाच
११ वनाहार			११ अधस्तारक
१२ रूपयक्ष			१२ देह
१३ यक्षोत्तम			१३ महादेह
			१४ महाविदेह
			१५ तूष्णिक
			१६ वनपिशाच

तथा १० तिर्यगजृंभक नामना व्यन्तरजातिना देव छे तेनां नाम—अन्नजृंभक–पानजृंभक--वस्त्रजृंभक--वेश्मजृंभक--शय्याजृंभक--पुष्पजृंभक--फलजृंभक--पुष्पफलजृंभक--विद्याजृंभक--ने अव्यक्तजृंभक ए १० प्रकारना देवो तीच्छीलोकमां

[1] श्री द्रव्यलोकप्रकाशे देह-महादेह ने विदेहपूर्वक १६ पिशाच गणाव्या छे, अने श्रीतत्त्वार्थ भाष्यमां देहने महाविदेह ए बे भेदपूर्वक १५ पिशाच कह्या छे.

चित्र--विचित्र--यमक--समक--कंचनगिरि--वैताढ्य वक्षस्कार- विगेरे पर्वतोमां वसे छे अने अन्नादि पदार्थोमां रसादिकनी हीनाधिकता करवानी जृंभना--चेष्टावाळा होवाथी तिर्यग्जृंभक कहेवाय छे. ए प्रमाणे (१०-१०-१०-१२-१३-७--९-१६-१०) उत्तरभेदो ९७ तथा ८ मूळभेदो मळी १०५ प्रकारना व्यन्तर देवो कह्या. तथा ५ प्रकारना अथवा १० प्रकारना ज्योतिषी देवो छे तेनां नाम—चंद्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र-ने तारा ए ५ मूळ ज्योतिषी देवो छे, ते पण दरेक २॥ द्वीपमां चर-चालता छे, ने २॥ द्वीप बहार स्थिर छे. माटे चर अने स्थिर ए बे भेदवडे गुणतां १० भेद थया. दरेक चंद्र इन्द्रनी आज्ञामां रहेनार अने पाछळ पाछळ चालनार अथवा साथे रहेनार दरेक चंद्रना ८८ ग्रह-२८ नक्षत्र-ने ६६९७५ कोडा कोडि तारा छे, अने सर्व चंद्र तथा सर्व सूर्य असंख्य असंख्य छे. छतां जातिभेदे ५ अथवा १० गणाय छे. पुनः ए ८८ ग्रह विगेरे जे चंद्रनो परिवार कह्यो तेज सूर्यनो परिवार पण छे, परन्तु सूर्य इन्द्रनो परिवार जुदो नथी, अर्थात् एक जातना परिवार उपर बे इन्द्रोनी आज्ञा छे, अथवा बे इन्द्रोनो भेगो एकज परिवार छे. तेमां पण सूर्य इन्द्र करतां चन्द्र इन्द्र मोटो महर्द्धिकने पुन्यवान् बळवान् गणाय छे, माटे सामान्य रीते ग्रहादि चन्द्रनो परिवार छे एम विशेष प्रसिद्धि छे.

तथा 'वेमाणी'-वैमानिक देवोना मूळ कल्प अने कल्पातीत एम बे भेदो छे, उत्तरभेदो २६ अथवा ३८ भेद छे-तेमां १२ कल्प ने १४ कल्पातीत देवो मळी २६ भेदनां नाम—

१२ कल्प.	१४ कल्पातीत.	
१ सौधर्म.	१ सुदर्शन.	(आ ९ ग्रैवेयक देवो कहेवाय छे.)
२ ईशान.	२ सुप्रतिबद्ध.	
३ सनत्कुमार.	३ मनोरम.	
४ माहेन्द्र.	४ सर्वभद्र.	
५ ब्रह्म.	५ विशाल.	
६ लांतक.	६ सुमन.	
७ शुक्र.	७ सौमनस.	
८ सहस्रार.	८ प्रियंकर.	
९ आनत.	९ आदित्य.	
१० प्राणत.	१ विजय.	(आ पांच अनुत्तर विमानवासीदेवो कहेवाय छे.)
११ आरण.	२ वैजयंत.	
१२ अच्युत.	३ जयन्त.	
	४ अपराजित.	
	५ सर्वार्थसिद्ध.	

तथा ब्रह्मदेवलोकने अन्ते रहेनार ९ लोकान्तिक देवो[1] छे तथा ३ किल्बिषिक देवो छे. ते आ प्रमाणे—

९ लोकान्तिक.	३ किल्बिषिक.
१ सारस्वत.	१ सौधर्म अने ईशान–

[1] लोकांतिकना सर्व देवो २४४५५, ने मतान्तरे २२६३७७ छे, ते सर्व एकावतारी अथवा मतान्तरे ७-८ भवतारी ब्रह्मदेवलोकना त्रीजा पाथडे आठ कृष्णराजीओना मध्यमां रहेला नव विमानोमां रहेनारा छे.

२ आदित्य.
३ वन्हि. कल्पनी नीचे रहेनारा.
४ अरुण.
५ गर्दतोय. २ सनत्कुमार अने माहेन्द्र
६ तुषित.
७ अव्याबाध. कल्पनी नीचे रहेनारा.
८ मरुत.
९ अरिष्ट. ३ लांतक कल्पनी नीचे रहेनार.

ए प्रमाणे २६ अने १२ मळीने वैमानिकना ३८ भेद पण थाय छे.

सर्व देव संख्या.

१० भुवनपति १५ परमाधामी १०५ व्यन्तर १० ज्योतिषी ३८ वैमानिक	ए प्रमाणे "श्री द्रव्यलोकप्रकाशमां" देवना भेद १७८ गणाव्या छे ते प्रमाणे अहीं पण गणाव्या.

१७८ (इति चतुर्विंशति दंडकभेदप्रभेदवर्णनम.)

शंका—आ २४ दंडकोमां ७ नारकीनो भेगो १ दंडक गण्यो अने १० भुवनपतिना जुदा जुदा १० दंडक गण्या तेनुं कारण शुं ? तथा सम्मूर्च्छिम तिर्यंच अने सम्मूर्च्छिम मनुष्यनो दंडक केम न गण्यो ?

उत्तर—आ दंडकप्रकरणना रचनार ग्रन्थकारे दंडकनी संख्या सिद्धान्तने अनुसारे राखी छे, अने सिध्धान्तोमां सर्वत्र पूर्वोक्त रीतेज संख्या गणावी छे, तेनुं यथार्थ कारण श्री बहुश्रुतगम्य छे, परन्तु प्रायः एम समजाय छे के संख्या बांधवी ए वक्तानी इच्छाने आधीन छे माटे सात नारकीनो एकज ने १० भुवन०

ना १० दंडकनी संख्या राखी अने सम्मू० तिर्यंच तथा सम्मू० मनुष्यने कंइक वखत तिर्यंच–तथा मनुष्यना दंडकमां अंतर्गत करेल छे. छतां दरेक द्वार वर्णन प्रसंगे हुं ए बन्ने भेदमां पण स्पष्ट समजाय तेवी रीते जुदो द्वारावतार करीश.

तथा जेने विषे जीव स्वकृतकर्मनो दंड पामे ते 'दंडक कहे-

१ एकार्थक सरखो पाठ जेनी अंदर आवे ते दंडक कहेवाय छे. जेम ' उख, नख, णख, वख, मख इत्यादि गतौ ' ए दंडक धातु कहेवाय छे. तेम प्रायः साते नरकमां सरखा पाठ आलावा ' नेरइया ' शब्दे करी सिद्धान्तोमां घणुं करी देखाय छे. माटे ते एक दण्डक जाणवो अने दश भुवनपतिओमां घणुं करी ' असुरकुमारा ' 'जाव थणियकुमारा ' इत्यादि शब्दो वडे अलग अलग आलावाओ सूचव्या छे. माटे ते दशदण्डको समजाय छे. तेज रीते एकेन्द्रियना अधिकारमां घणे भागे ' पुढविकाइया ' इत्यादि शब्दो वडे अलग अलग आलावाओ आवे छे. माटे तेना पांच दण्डको अलग जणाय छे. वळी गुरुसम्प्रदायथी ए पण एक हेतु समजाय छे जे रत्नप्रभा तथा शर्कराप्रभानी वच्चे तेना आधार भूत घनोदधि-घनवात–तनुवात आकाशनुं अन्तर छे पण असुरकुमार अने नागकुमारनी वच्चे जेम नरकना पाथडानुं अने नारकी जीवोनुं अन्तर छे तेवुं कांइ अन्तर नथी तेवीज रीते साते नरकमां पण एक बीजानी वच्चे बीजुं कांइ अन्तर नथी माटे ते साते नारकीना जीवो अव्यवहित गणाय छे. जेथी तेओनो एक दण्डक छे. अने भुवनपतिमां एक बीजानी वच्चे नरकना पाथडानुं अन्तर होवाथी दरेकना अलग अलग मळी दश दण्डको जाणवा. आज कारणथी व्यन्तरोना अनेक प्रकारो होवा छतां पण तेमां एक बीजाने अन्तर नहीं होवाथी एकज दण्डक छे. तेमज वैमानिकोना कल्प-कल्पातीत–लोकान्तिक-किल्बिषिक इत्यादि अनेक भेदो होवा छतां पण अन्तरनो अभाव होवाथी ते वैमानिक एकज दंडक कहेवाय छे. (मु. च. मे. ऊ. ऊ. ग.)

वाय, अथवा दंडक शब्द ते ते जीवोनो समुदाय ग्रहण करवा माटे छे (एम श्रीदंडकवृत्तिमां कह्युं छे.)

पुनः आ प्रकरणमां सूक्ष्म अने अपर्याप्त जीवोनो अधिकार पण प्रायः नथी–(श्रीदंडक वृत्तिः)

अवतरण—आ बे गाथाओमां (२४ दंडक उपर उतारवा) माटे २४ द्वारनां नाम कहेवाय छे.

संखित्तयरी उ इमा, सरीरमोगाहणा य संघयणा ।
सन्ना संठाण कसाय, लेसिन्दिय दुसमुग्घाया ॥३॥
दिट्ठी दंसणनाणे, जोगुवओगोववाय चवणठिई ।
पज्जत्ति किमाहारे, सन्निगइ आगई वेए ॥४॥

(संस्कृतानुवादः)

संक्षिप्ततरा त्वियं, शरीरमवगाहना च संहननानि ।
संज्ञासंस्थानकषाय–लेश्येन्द्रियद्विसमुद्घाताः ॥ ३ ॥
दृष्टिर्दर्शनं ज्ञानं, योग उपयोग उपपातश्च्यवनं स्थितिः ।
पर्याप्तिः किमाहारः, संज्ञिर्गतिरागतिर्वेदः ॥ ४ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

संखित्तयरी–अति संक्षेपवाळी.
उ–वळी.
इमा–आ (२४ द्वाररूपसंग्रहणी.)
सरीरं–शरीर (५)
ओगाहणा–अवगाहना.
संघयण–संघयण (६)
सन्ना–संज्ञा (४)
संठाण–संस्थान (६)
कसाय–कषाय (४)
लेस–लेश्या (६)

इंद्रिय—इन्द्रिय (५)
दुसमुग्घाया—बेसमुद्घात.
दिट्ठि—दृष्टि (३)
दंसण—दर्शन (४)
नाणे—ज्ञान (८)
जोग—योग (१५)
उवओग—उपयोग (१२)
उववाय—उपपात—(जन्म).
चवण—च्यवन—(मरण).
ठिई—स्थिति—(आयुष्य)
पज्जत्ति—पर्याप्ति (६)
किमाहारे—कइ दिशिनो आहार?
सन्नि—संज्ञा (३)
गइ—गति.
आगइ—आगति.
वेए—वेद (३)

गाथार्थः—अति संक्षेपवाळी (२४ द्वाररूप संग्रहणी) आ (प्रमाणे छे.)—शरीर—अवगाहना--संघयण--संज्ञा--संस्थान--कषाय--लेश्या--इन्द्रिय--बे समुद्घात--दृष्टि—दर्शन—ज्ञान—[1]अज्ञान---योग--उपयोग--उपपात--जन्म--मरण--आयुष्य--पर्याप्ति--कइ दिशिनो आहार--संज्ञिपणुं---(संज्ञा)--गति--आगति---अने वेद (ए २४ द्वार छे.)

विस्तरार्थः—२४ दंडकोमां २४ द्वारोनो अवतार मात्र ४४ गाथामांज करेलो होवाथी 'संखित्तयरी उ इमा'—आ २४ द्वाररूप संग्रहणी--(संग्रहनुं स्त्रीलिंग संग्रहणी) अति संक्षिप्त छे. ते २४ द्वारोनुं किंचित् स्वरूप कहेवाय छे.

॥ १ शरीरद्वार. ॥

शीर्यते—विनाश पामे ते शरीर पांच प्रकारनां छे. ते आ प्रमाणे:—१ उदार--(विशाळ—प्रधान) गुणवाळा एवा श्री तीर्थंकर--गणधर--सर्वज्ञ--सर्व विरति--चक्रवर्ति- वासुदेव--प्रतिवासुदेव

[1] मूळ गाथामां अज्ञानद्वार कह्युं नथी कारणके ज्ञानद्वारमां अज्ञानद्वारने अंतर्गत गण्युं छे. ते अंतर्गत अज्ञानद्वारने जुदुं पाडतां २५ द्वार थाय.

--बळदेव--इत्यादिने प्राप्त थतुं होवाथी, अथवा मोक्षरूप उदारगुण अथवा अनंत लब्धिरूप उदारगुण ए शरीर वडेज प्राप्त थतो होवाथी अथवा उदार एटले स्थूल पुद्गलोनुं बनेलुं तिर्यंच--अने मनुष्योनुं शरीर औदारिक कहेवाय छे. १

२ तथा विविधप्रकारनी क्रियाओवाळुं एटले एक होइने अनेक थाय, अनेक होइने एक थाय, भूमिचर होइने आकाशचारी थाय, आकाशचारी होइने भूमिचारी थाय, नाना होइने मोटा थाय, मोटा होइने नाना थाय, हलकुं होइने भारी थाय, ने भारी होइने हलकुं थाय, दृश्य होइने अदृश्य थाय, अने अदृश्य होइने दृश्य थाय इत्यादि अनेक प्रकारनी क्रियावाळुं अथवा शक्तिवाळुं जे शरीर ते वैक्रियशरीर सर्व देव--सर्वनारक--केटलाएक गर्भज मनुष्य--केटलाएक गर्भजतिर्यंच अने केटलाएक बादरपर्याप्ता वायुकायने होय छे. २

३ आमर्षौषधि आदि लब्धिवाळा १४ पूर्वधर मुनि महाराज श्रीजिनेश्वरनी ऋध्धि देखवाने अथवा सूक्ष्मशंकानुं निराकरण करवाने १ हाथ प्रमाणनुं नवुं शरीर बनावी श्री विहरमान तीर्थंकर पासे मोकले ते [1]आहारक शरीर कहेवाय. आ शरीरना परमाणुओ वैक्रिय शरीरना परमाणुओथी तद्दन भिन्न तथा सूक्ष्म होवाथी अने केटलाएक गुण वै० शरीरथी जुदा होवाथी ए शरीर वैक्रियान्तर्गत न गणाय.

४ आहार पचाववामां, तेजोलेश्या मूकवामां, ने शीतलेश्या

---

१ आखा भवमां वर्तनां वारवार आहारक शरीर बनावे एक भवमां उत्कृष्ट बे वारज बनावे. आहारक शरीरनो जघन्य विरहकाल १ समय. उत्कृष्ट छ मास अथवा मतान्तरे वर्षपृथक्त्व विरहकाळ छे.

मूकवामां जे कारणरूप शरीर ते तैजस शरीर सर्व संसारी जीवने होय. ४

५ कर्मपुद्गलोथी बनेलुं ते कार्मण शरीर, केटलाएक आठ कर्म परमाणुओना समुदायरूप-(१५८ प्रकृतियोना समुदाय)ने कहे छे. पण ते उचित समजातुं नथी. कारण कार्मण शरीर नाम कर्मना भेदरूप, बोरने कुंडानी जेम सर्व कर्मनो आधार छे. ते [२]कार्मण शरीर पण सर्व संसारी जीवने होय छे. आ शरीर जीवने परभवमां लइ जनार होय छे. ५ ॥इति प्रथमं शरीरद्वारम्॥१॥

॥ २ अवगाहनाद्वार. ॥

कया जीवनुं शरीर केटलुं मोटुं होय, एम कहेवुं ते अवगाहनाद्वार कहेवाय. ॥ इति द्वितीयमवगाहनाद्वारम् ॥ २ ॥

॥ ३ संघयणद्वार. ॥

हाडकाना समूहनुं बंधारण ते संहनन कहेवाय. तेना ६ भेद आ प्रमाणे—१ संधिने स्थाने हाडना बे छेडा एक बीजाने परस्पर आंटी मारीने वांदरीना बच्चानी पेठे वळगी रहेला होय, ने ते बन्ने छेडा उपर मध्यमां हाडकाना पाटो वींटायलो होय, अने ते उपरथी चारे अंगने एटले प्रथम पाटाने, तेनी नीचे संधिगतहाडने. तेनी नीचे संधिगत बीजा हाडने, ने तेनी नीचे पाटाने

२ सर्व शरीरनी उत्पत्तिमां, भवान्तर जवामां, प्रथम समये आहार पूर्णो लेवा विगेरेमां कारणरूप छे.

(ए चारने) भेदीने हाडकानी खीली आरपार नीकळी होय, एवा प्रकारनी संधीना हाडकानी मजबुताइनुं नाम **वज्रऋषभनाराच** (**–वज्र–खीली, ऋषभ–पाटो, नाराच–मर्कटबंध**) संहनन कहेवाय. १

२ हाडकानी खीली सिवाय पूर्वे कहेली संधिगतहाडनी मजबु॰ ताइ, के जेमां **ऋषभ–पट्टो,** ने **नाराच–मर्कटबंध** बेज होय ते **ऋषभनाराच** संहनन कहेवाय. २

३ पूर्वोक्त रीते एकलो मर्कटबंध होय ते **नाराच संहनन**. ३

४ पूर्वोक्त मर्कटबंध हाडकानां बन्ने छेडाना परस्पर हतो तेम नहिं होतां मात्र एक छेडो बीजा छेडाने मर्कटबंध रीते वळगेलो होय ने बीजो छेडो सीधो होय, तथा तेना मध्यमांथी हाड खीली पण आरपार थइ होय तो तेवी संधि रचनानुं नाम **अर्ध नाराच** कहेवाय. ४

५ तथा हाडना बे छेडा एक उपर एक सीधा चढेला होय ने वचमां खीली आरपार थइ होय तो तेवी संधिरचनानुं नाम **कीलिका संहनन** कहेवाय. ५

६ तथा हाडनो एक छेडो खोभण (–स्हेज खाडा) वाळो होय अने तेमां हाडनो बीजो छेडो अडकीने रहेलो होय, तेवी संधिरचनानुं नाम **छेदपृष्ठ संहनन** कहेवाय, आ संहननमां बे छेडा सामासामी आवीने स्पर्शेला होय पण एक बीजापर चडेला होता नथी, अने खीली होती नथी माटे कोइ हाडने खेंचेतो खोभणमांथी बहार नीकळी जतां " हाडकुं उतरी गयुं " कहेवाय अने ये हाडकांने एवा प्रकारनो आंचको लागतां खोभणमांथी नीकळी एक बीजापर चढी जाय त्यारे " हाडकुं चढी गयुं " कहेवाय. तथा तेलादि मसळवारूप सेवा वडे आर्त्त एटले पीडायलुं (–ते वडे दृढ रहेनारुं) होवाथी एनुं बीजुं नाम सेवार्त्त पण छे. ६ "संह-

न्यन्ते–दृढीक्रियन्ते शरीरपुद्गला येन तत् अथवा संहन्यन्ते संहति (शक्ति) विशेषं प्राप्यन्ते शरीरावस्थावयवा यैस्तानि संहननानि" (–जेनावडे शरीर पुद्गलो संहन्यन्ते एटले दृढ कराय अथवा जेना वडे शरीरमां रहेला अवयवो शक्ति विशेष पामे ते संहनन एवो व्युत्पत्त्यर्थ छे.) ॥ इति तृतीयं संहननद्वारम् ॥३॥

॥ ४ संज्ञाद्वारम्. ॥

जेना वडे 'संजानाति' एटले जाणे छे ते संज्ञा ते ज्ञानरूप अने अनुभवरूप एम बे प्रकारनी छे त्यां मति–श्रुत–इत्यादि आठ ज्ञानरूप संज्ञा छे, अने बीजी अशाता वेदनीयादिकर्मना उदयथी उत्पन्न थयेली आहारादिकनी अभिलाषात्मक अनुभवरूप संज्ञा ४–१०–ने १६ प्रकारनी छे. ते आ प्रमाणे—

१ क्षुधारूप अशाता वेदनीयकर्मना उदयथी आहार ग्रहणनी जे इच्छा ते **आहारसंज्ञा.**

२ भयमोहनीय कर्मना उदयथी उत्पन्न थयेल त्रास उपजवारूप ते **भयसंज्ञा.**

३ वेद मोहनीयना उदयथी उत्पन्न थयेल विषयाभिलाष ते **मैथुनसंज्ञा.**

४ लोभ मोहनीयना उदयथी उत्पन्न थयेल तृष्णा ते **परिग्रहसंज्ञा.**

ए चारे संज्ञाओ सर्व संज्ञि जीवोने प्रगट अनुभवरूप छे अने एकेन्द्रियादि सर्व असंज्ञि जीवोने अस्पष्ट अनुभवरूप छे. तथा ए चार संज्ञाओमां चार कषायरूप ४ संज्ञाओ अने लोक तथा ओघ

संज्ञा मेळवतां १० संज्ञाओ पण कही छे. त्यां मतिज्ञानावरणना क्षयोपशमथी शब्द अने अर्थना विषयवाळी सामान्य अवबोधरूप क्रिया ते ओघसंज्ञा १ अने शब्द तथा अर्थनो विशेषाववोधक्रिया ते लोकसंज्ञा, २ (इति प्रव० सारो० वृत्ति). अथवा दर्शनोपयोग ते ओघसंज्ञा अने ज्ञानोपयोग ते लोकसंज्ञा (इति ठाणांग वृत्ति.) अथवा वल्लीनुं जमीन छोडीने भींत वंडी या वृक्ष इत्यादि पर चढवुं इत्यादि ओघसंज्ञा, अने पुत्ररहितने सद्‌गति न होय, कूतरा ते यक्ष छे, ब्राह्मण ते देव छे, कागडा ते पूर्वज छे, मयूरीने मोरनी पांखना वायुथी अथवा मयूरनां आंसु चाटवाथी गर्भ रहे छे इत्यादि लोकोए स्वच्छंदमति कल्पनाथी उपजावेली कल्पनाओ ते लोकसंज्ञा (इति आचारांग वृत्ति). ए १० संज्ञाओ कही.

तथा मोह–धर्म–सुख–दुःख–जुगुप्सा–ने शोक ए ६ संज्ञाओ श्री आचारांगजीमां कहेली होवाथी पूर्वोक्त १० साथे मेळवतां १६ संज्ञाओ पण थाय. जीव जे संज्ञी अथवा असंज्ञी कहेवाय छे ते ए ४–१० वा १६ संज्ञाओवडे नहिं, पण आगळ कहेवाती दीर्घकालिकी आदि संज्ञाओवडे संज्ञि असंज्ञिपणुं कहेवाय छे.

एकेन्द्रिय जीवोमां बादर प्रत्येकवनस्पतिने अंगे १० संज्ञाओ लिंगरूपे नीचे प्रमाणे कही छे—

१ वृक्षने जळनो आहार होय छे माटे एकेन्द्रियने आहारसंज्ञा.

२ लज्जाळु नामनी वनस्पतिने हाथ अडाडवा जइए तो संकोचाइ जाय छे माटे एकेन्द्रियने भयसंज्ञा.

३ वेलडी पोताना तंतुओवडे वृक्षने वींटी लेछे तेथी ते एकेन्द्रियने परिग्रहसंज्ञा.

४ कुरुवक नामनुं वृक्ष स्त्रीना आलिंगनवडे फळीभूत थाय छे माटे एके०ने मैथुनसंज्ञा.

५ कोकनद नामनो कंद हुंकारो करे छे माटे क्रोधसंज्ञा.

६ रुदंती वेलना रसना स्पर्शथी सुवर्णसिद्धि थाय छे, अने ते वेलमांथी रसनां टपकां झरतां रहे छे, जे परथी मानसंज्ञानु अनुमान थाय छे. अर्थात् हुं होते छते जगत्मां गरीवाइ केम होय? एवा अभिमानथी आंसु टपकावे छे ए हेतुथी मानसंज्ञानुं अनुमान थयेलुं छे.

७ वेलडी पोतानां फळोने ढांकी दे छे माटे मायासंज्ञा.

८ बीली अथवा धोळो खाखर प्रायः दाटेला निधान उपर उगे छे अने पोतानां मूळ ते निधानपर फेलावी वींटी लेछे माटे लोभसंज्ञा.

९. कमळो रात्रे संकोच पामे छे माटे लोकसंज्ञा.

१० वेलडी जमीनमार्ग छोडीने भींत या वृक्षपर उर्ध्व चडे छे. माटे ओघसंज्ञा.

ए प्रमाणे बादर वनस्पतिने १० संज्ञाओनां लक्षण कह्यां, अने ते प्रमाणे बीजा दरेक जीवोमां कोइमां स्पष्ट तो कोइमां अस्पष्ट पण ए संज्ञाओ रहेली छे. (४) ॥इतिचतुर्थं संज्ञाद्वारम्॥४॥

॥ ५ संस्थानद्वारम् ॥

सामुद्रिकशास्त्रोक्त प्रमाणसहित वा प्रमाणरहित अवयवोनी रचनाथी थयेलो शरीरनो शुभाशुभ आकार ते संस्थान कहेवाय. ते ६ प्रकारनां छे. तेनुं स्वरूप आ प्रमाणे—

१ शरीरना सर्व अवयवो प्रमाणसर होय ते समचतुरस्र सं-

स्थान कहेवाय. आ संस्थानवाळो मनुष्य पर्यंकासने बेठेल होयतो तेना डाबा ढींचणथी जमणा खभा सुधीनुं माप, जमणा ढींचणथी डाबा खभानुं, अने पर्यंकासनना मध्यथी नासिकाग्रसुधीनुं माप एक सरखुं होय छे माटे सम-सरखा छे. चतुः-(बे खभाने बे ढींचणरूप)चारे अस्र खूणा ते जेमां ते समचतुरस्र संस्थान कहेवाय.

२ तथा न्यग्रोध एटले वडनी पेठे नाभिथी उपरना अवयवो प्रमाणसर होय ने नाभिथी नीचेना अवयवो प्रमाणथी न्यूनाधिक होय ते न्यग्रोध संस्थान.

३ तथा आदि एटले पगना तळीयाथी नाभि सुधीना प्रथम अंगार्धना अवयवो प्रमाणसर होय ने उपरना अवयवो प्रमाण रहित होय ते सादि संस्थान (अहिं केटलाएक आ संस्थानने साचि एटले शालमली वृक्ष सरखा आकारवाळुं एम पण कहे छे.)

४ मस्तक-ग्रीवा-हाथ-ने पग ए ४ अंग प्रमाण सर होय अने शेष अवयवो प्रमाण विनाना होय ते वामनसंस्थान.

५ मस्तक-ग्रीवा-हाथ-ने पग ए ४ अंग प्रमाणरहित होय अने बीजा अवयवो (प्रायः) प्रमाण सर होयतो कुब्जसंस्थान.

६ प्रायः सर्व अवयव प्रमाण रहित होय ते हुंडकसंस्थान ॥ इति पञ्चमं संस्थानद्वारम्. ॥ ५ ॥

॥ कषायद्वारम्. ॥

कष एटले संसारनो आय एटले लाभ जेनाथी थाय ते कषाय कहेवाय, ते क्रोध-मान-माया-ने लोभ ए चार प्रकारना छे.

बीजा पण १६ अथवा ६४ प्रकार ग्रन्थान्तरथी जाणवा. ॥इति षष्ठं कषायद्वारम्. ॥ ६ ॥

॥ ७ लेश्याद्वारम. ॥

"श्लिष्यते कर्मणा सह जीव आभिरिति लेश्याः"—जेनावडे आत्मा कर्मवडे श्लिष्यते—संबंधवाळो थाय ते लेश्या कहेवाय. तेना द्रव्यथी अने भावथी एम बे भेद छे, त्यां आत्माना योगपरिणाम रूप हेतुथी प्राप्त थतां अमुक प्रकारनां पुद्गलो ते द्रव्यलेश्या.

द्रव्यलेश्यारूप पुद्गलोथी थतो जे आत्मपरिणाम ते भावलेश्या.

ए बन्ने लेश्या कृष्ण—नील—कापोत—तेजो—पद्म—ने शुक्ल एम ६ प्रकारनी छे. तेमां कृष्णादि प्रथमनी ३ लेश्या अशुभपरिणामरूप छे, अने तेजो आदि उपरनी ३ लेश्या शुभ परिणामवाळी छे, पुनः अशुभ ३ लेश्यामां पण कृष्णलेश्या अत्यंत अशुभ परिणामवाळी, नीललेश्या तेथी अल्प अशुभ परिणामवाळी, ने कापोतलेश्या तेथी पण अल्प अशुभ परिणामवाळी छे, तेवीज रीते तेजोलेश्या अल्पविशुद्ध परिणामवाळी, पद्मलेश्या अधिक विशुद्धिवाळी, अने तेथी शुक्ललेश्या अधिक विशुद्धिवाळी छे. पुनः कृष्णलेश्या असंख्य अध्यवसायवाळी छे, ने ते अध्यवसाय—(आत्म परिणाम)मां पण पहेला अध्यव०थी बीजो अध्यव० अतिविशुद्ध तेथी त्रीजो अधिक विशुद्ध ए प्रमाणे असंख्य अध्यवसायो अनुक्रमे अधिक अधिक विशुद्ध छे, ए प्रमाणे नीललेश्यातथा कापोतलेश्याना पण असंख्य अध्यवसायो अनुक्रमे अधिकाधिक विशुद्ध जाणवा. तोपण ए सर्व अध्यवसायो उपरनी त्रण

लेश्याना शुद्ध अध्यव०नी अपेक्षाए अशुभज गणाय छे. तथा तेजो आदि त्रणे शुभ लेश्यामां पण असंख्य अध्यवसायो अनुक्रमे अधिक अधिक विशुद्ध जाणवा.

तथा प्रथमनी ३ (द्रव्य)लेश्याओनो वर्ण-गंध-रस-स्पर्श अशुभ छे, ने उपरनी ३ द्रव्यलेश्याओनो वर्ण-गंध-रस-स्पर्श शुभ छे.

तथा मनुष्य अने तिर्यंचनी द्रव्यलेश्याओ दरेक अन्तर्मुहूर्त्ते बदलाया करे छे, अर्थात् कृष्णलेश्यानां पुद्गलो ते अन्तर्मु० बाद नीलादि ५ मांथी कोइपण लेश्यारूप थइ जाय छे, एज प्रमाणे नीलादि सर्व लेश्यानां पुद्गलोनो वर्ण-गंध-रस-स्पर्श अन्तर्मु० बाद अन्य लेश्याना वर्णादिरूपे थइ जाय छे. माटे मनु०तिर्यं०नी लेश्याओ वस्त्र समान कही छे, कारणके वस्त्रने रंगमां बोळतां जेम तद्रूप रंगमय थइ जाय छे, तेमां कृष्णद्रव्यो ते नीलद्रव्यना संबंधथी नीलरूप थइ जाय छे. पुनः देव अने नारकनी द्रव्यलेश्याओ स्फटिकवत् कही छे, कारणके स्फटिक जेम भिन्नवर्णना पुष्पादिकना संयोगथी सर्वांशे स्वरूप त्याग कर्या विना ते रंगवाळुं देखाय छे, पण स्वरूपनो त्याग नथी करतुं. माटे देवनारकोनी द्रव्यलेश्या अवस्थित छे. पुनः भावलेश्याओ तो चारे गतिवाळाने अन्तर्मू० बाद बदलाया करे छे. चालु दंडक प्रकरणना अधिकारमां द्रव्यलेश्यानोज अधिकार छे. ॥इति सप्तमं लेश्याद्वारम्. ॥७॥

॥ ८ इन्द्रियद्वारम्. ॥

इन्द्र एटले आत्मा तेनुं जे चिन्ह ते इन्द्रिय, अथवा इन्द्र एटले आत्माने ज्ञान थवानुं जे द्वार ते इन्द्रिय ते स्पर्शन-रसना-घ्राण-चक्षु-ने श्रोत्र एम पांच प्रकारनी छे, त्यां स्पर्शनादि ५

इन्द्रियो द्रव्येन्द्रिय अने भावेन्द्रियरूप बे प्रकारे छे, तेमां पण स्पर्शन सिवायनी रसनादि ४ द्रव्य इन्द्रियो अभ्यन्तरनिर्वृत्ति अने बाह्यनिर्वृत्ति-(अंतरंग आकार ने बहार देखातो आकार) एम बे प्रकारनी छे, त्यां जीव्हा-नाक इत्यादि जे दृष्टिगोचर थाय छे ते बाह्यनिर्वृत्ति छे, अने ए बाह्य आकारोनी अंदर विषय ग्रहण करवानी शक्तिवाळां, अने दृष्टिथी नहिं देखी शकाय एवां सूक्ष्म परिणामी पुद्गलो कदंबपुष्पादि आकारे गोठवायलां छे ते अभ्यन्तरनिर्वृत्ति कहेवाय छे. तथा ए बन्ने द्रव्येन्द्रियोमां स्वस्वकार्य करवारूप रहेली जे शक्ति ते अभ्यन्तर तथा बाह्य उपकरणेन्द्रिय कहेवाय छे, ए प्रसिद्ध सिद्धान्त छे, अने आचारांगजीमां तो इन्द्रियस्थाने गोठवायला स्वच्छतर आत्मप्रदेशो ते अभ्यन्तरनिर्वृत्ति, अने विषयग्रहण शक्तिवाळां स्वच्छतर सूक्ष्मपुद्गलो के जे कदंबपुष्पादि आकारवाळा छे ते बाह्यनिर्वृत्ति कहेल छे, अर्थात् प्रज्ञापनादिमां जेने अभ्यन्तरनिर्वृत्ति मानी छे तेने श्रीआचारांगजी वृत्तिमां बाह्यनिर्वृत्ति मानी छे, ए प्रमाणे द्रव्येन्द्रियना भेद कह्या. हवे भावेन्द्रिय आ प्रमाणे—

लब्धि अने उपयोग एम भावेन्द्रिय बे प्रकारनी छे, त्यां मतिज्ञानावरणादिना क्षयोपशमथी इन्द्रियद्वारा विषय ग्रहण करवानी जे आत्मशक्ति ते लब्धि भावेन्द्रिय दरेक जीवमात्रने समकाळे पांचे इन्द्रियरूप होय छे. अने प्राप्त थयेली अभ्यन्तरनिर्वृत्तिरूप द्रव्येन्द्रियद्वारा विषय ग्रहणमां प्रवर्तवुं ते उपयोग भावेन्द्रिय ते एक भवमां कोइ जीवने एक, कोइने बे यावत् कोइने पांचे जूदे जूदे वखते होय छे.

जीव पंचेन्द्रिय बेन्द्रिय इत्यादि कहेवाय छे, ते द्रव्येन्द्रिय आश्रयी अपेक्षाए छे. नहितर लब्धिरूप भावेन्द्रियनी अपेक्षाए सर्व

जीव पंचेन्द्रिय, अने उपयोगरूप भावेन्द्रियनी अपेक्षाए सर्वे जीव एकेन्द्रिय गणाय. इत्यादि इन्द्रिय संबंधि घणुं विवेचन नवतत्त्वविस्तरार्थमां करेल होवाथी अहिं लखायुं नथी. ॥ इत्यष्टममिन्द्रियद्वारम्. ॥ ८ ॥

॥ ९ समुद्घातद्वारम्. ॥

सम्-एकी भावे-(एकदम-शीघ्र) उत्-प्रबळतावडे-(आत्माना अतिप्रयत्नवडे) घात-कर्मपरमाणुओनो विनाश करवो ते समुद्घात, वेदना-कषाय-मरण-वैक्रिय-तैजस-आहारक--अने केवलिक ए प्रमाणे ७ [1]प्रकारनी छे. ते दरेकनुं किंचित् स्वरूप आ प्रकारे—(१) समुद्घातस्वरूप—

१ अत्यन्त वेदनावडे व्याकुळ थयेलो आत्मा तीव्र प्रयत्नथी

[1] गाथामां दु समुग्घाया-बे समुद्घात ते एक जीव समुद्घात ने बीजो अजीव समुद्घात, ए बेमांथी अहिं जीवनो अधिकार चालतो होवाथी मात्र जीवनीज ७ समुद्घातोनुं वर्णन कर्युं छे, अने अचित्त महास्कंध नामनो पुद्गल वर्गणानो एक स्कंध तथा विध विश्रसा-(स्वाभाविक) प्रयोगे अथवा विश्रसा परिणामे परिणत थयो छतो आगळ कहेवाती केवलि समुद्घातनी पद्धतिए प्रथम समये दंड, बीजे समये कपाट, त्रीजे समये मथान, चोथे समये मंथानान्तरपूर्ति करी लोकमां सर्व व्यापी थइ पांचमे समये अन्तर संहरण, छट्ठे समये मंथान संहरण. सातमे समये कपाट संहरण, ने आठमे समये दंड संहरण करी स्वभावस्थ अंगुलनी असंख्यातमा भागनी अवगाहनावाळो थाय. ए अचित्त महास्कंध संबंधि अजीव समुद्घातनुं अत्र प्रयोजन नहि होवाथी अर्थ प्रसंग कह्यो नथी.

पोताना केटलाएक आत्म प्रदेशोने शरीर बहार काढी मुखादिकनां विवर अने खभादिकनां अन्तर पूरी शरीरनी उंचाइ ने जाडाइ जेटलो एक सरखो दंडाकार रची अशातावेदनीयनां घणां कर्म पुद्गलोनो उदीरणा करणवडे उदयावलिकामां लावी घात करे--(निर्जरे ते वेदना समुद्घात.

२ अत्यन्त कषायवडे व्याकुळ थयेलो आत्मा केटलाएक आत्मप्रदेशोने शरीर बहार काढी मुखादिकनां पोलाण अने खभादिकनां अंतर पूरी पूर्वोक्त रीते स्वदेहप्रमाण आत्मप्रदेशोनो दंडाकार रची कषायमोहनीयकर्मनां घणां कर्म पुद्गलोने उदीरणा करणवडे उदयावलिकामां लावी घात करे--(भोगवीने निर्जरे) ते कषाय समुद्घात.

३ मरणना अन्त अवसरे मरणथी व्याकुळ थयेलो आत्मा मरणथी अन्तर्मु० पहेलां पोताना आत्म प्रदेशोने शरीर बहार काढी ज्यां उत्पन्न थवानो छे ते स्थान सुधी आत्म प्रदेशोने लंबावी स्वदेह प्रमाण स्थूळ ने उत्पत्तिस्थान सुधी (उ० असंख्ययोजन) दीर्घ दंडाकार रची अन्तर्मु० सुधी तेवीज अवस्थाए रही आयुष्यकर्मनां घणा पुद्गलोनो उदीरणा करणवडे उदयावलिकामां लावी घात करे ते मरण समुद्घात.

४ वैक्रिय लब्धिवाळो आत्मा पोताना आत्मप्रदेशोने शरीर बहार काढी जे स्थाने वैक्रिय नवुं रूप रचवानुं छे ते स्थानथी उ० थी संख्यातयोजन प्रमाण दीर्घ अने स्वदेह प्रमाण स्थूळ दंडाकार रची पूर्वे बांधेला वैक्रियनामकर्मनां पुद्गलोने पूर्वोक्त रीते उदयमां लाववा साथे वैक्रिय शरीर वर्गणानां पुद्गलो ग्रहण करतो जाय ने उत्तरदेहनी रचना करे ते वैक्रियसमुद्घात.

५ तेजोलेश्यानी लब्धिवाळो आत्मा पोताना आत्मप्रदेशोने

शरीर बहार काढी जे स्थाने तेजोलेश्या (अथवा शीत लेश्या) मूकवानी छे ते स्थान सुधी (उ० थी संख्यातयोजन) दीर्घ अने स्वदेह प्रमाण स्थूळ एवो दंडाकार रची पूर्वोपार्जित तैजस परमाणुओनो पूर्वोक्त रीते घात करवा पूर्वक तेजोलेश्या (अथवा शीतलेश्या) मूके ते तैजस समुद्घात.

६ आहारक लब्धिवाळा चौदपूर्वधर मुनि श्रीजिनेश्वरनी ऋद्धि देखवाने अथवा सूक्ष्मसंदेह निवारवाने इत्यादि कारणथी स्वशरीर प्रमाण स्थूळ अने उत्कृष्टथी संख्यात योजन दीर्घ दंड करी पूर्वोपार्जित आहारक नामकर्मनां पुद्गलो पूर्वोक्त रीते निर्जरवा पूर्वक आहारक देहयोग्य पुद्गलो ग्रहण करी आहारकशरीर रचे ते आहारकसमुद्घात.

७ जे केवलिने नाम—गोत्र—अने वेदनीय ए त्रण कर्मनी स्थिति पोताना आयुष्यनी स्थितिथी अधिक रही होय तो ते त्रणनी स्थितिने आयुष्यस्थिति जेटली सरखी करवा माटे अन्तर्मु० प्हेलां जेणे आवर्जिकरण कर्युं होय छतां कर्मस्थिति अधिक रही जाय तो तेनुं समीकरण करवा माटे जेओनुं अन्तर्मु० जेटलुं आयुष्य बाकी रह्युं होय एवा केवलि भगवान् पोताना आत्मप्रदेशोने शरीर बहार काढी प्रथम समये लोकना नीचेना छेडाथी उपरना छेडा सुधी दीर्घ, ने स्वदेहप्रमाण स्थूळ दंडाकार करी, बीजे समये ते दंडाकारमांथी आत्मप्रदेशोने स्वदेह प्रमाण जाडाइ कायम राखी उत्तर दक्षिण लंबावी कपाट—(कमाड) आकारे रची, त्रीजे समये पूर्व पश्चिम लंबावी मंथान—(रवैयानो) आकार रची, चोथे समये चारे आंतरा पूरी समग्र लोकमां व्याप्त थाय, तदनंतर पांचमे समये आंतरामां रहेला आत्मप्रदेशो संहरी मथानरूप करी, छट्ठे समये मंथानाकार संहरी कपाटकार करी, सातमे समये कपाटकार संहरी दंडाकार करी, आठमे समये दंड संहरी देहस्थ थाय. ते केवलि समुद्घात.

आ आठ समयना प्रयत्नथी त्रणे कर्मोनी स्थिति आयुष्य तुल्य थाय, अने ते साथे दरेक समये रसघात पण थाय छे, एमां त्रीजे चोथे ने पांचमे समये अनाहारक तथा कार्मण काययोगी होय, पहेलेने आठमे समये औदा० योगी होय अने बीजे छ ने सातमे औदा० मिश्र योगी होय.

(१) काळनियम—केवलि समु० ८ समय प्रमाण, अने सर्व अन्तर्मु० प्रमाण छे.

(२) ग्रहणवर्जननियम—वेदनीय मरणने केवलि समु० मां कर्मपरमाणुओनो विनाश छे, पण नवुं ग्रहण नथी, कषाय समु०मां कषायमोहनीय कर्मपुद्गलोनो विनाश, अने तेथी बीजा अधिक कषाय पुद्गलोनुं ग्रहण पण थाय छे, ने जो तेम न थाय तो सर्वथा कर्मनो अभाव थवाथी वीतरागपणुं प्राप्त थवानो प्रसंग आवे.—तथा वै०–तै०–ने आहा० समु०मां ते ते नामकर्मनां पुद्गलोनो विनाश छे, ने ते ते देह वर्गणाना पुद्गलोनुं ग्रहण छे.

(३) आभोगानाभोगनियम—वेदनाकषाय–ने मरण ए ३ समुद्घात स्वाभाविक थाय छे, पण जीव जाणी जोइने करवा जाय तोज बने एम नथी माटे अनाभोगिक, अने शेष चारे समुद्घात जीवना विचार पूर्वक थाय छे माटे आभोगिक, तथा दरेक समुद्घातमां आत्मप्रदेशो शरीरथी जे बहार नीकळे छे ते सर्व प्रदेशो बहार नीकळता नथी पण केटलाएक प्रदेशो शरीरमां पण होय ने बीजा केटलाएक बहार नीकळे छे, जेथी शरीर आत्मप्रदेश रहित थाय नहि. इत्यादि समु०नुं विशेष स्वरूप सिद्धान्तथी जाणवुं.

॥इति नवमं समुद्घातद्वारम्. ॥

॥ १० दृष्टिद्वारम्. ॥

दृश्यते अर्थानां सदसत्स्वरूपमनेनेति दर्शनं-पदार्थोनुं सत् वा असत् स्वरूप जेनावडे देखाय-(जणाय) ते दर्शन अथवा दृष्टि सम्यग्-असम्यक् ने मिश्र एम त्रण प्रकार होवाथी सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-ने मिश्र एम ३ प्रकारनी दृष्टि छे. त्यां पदार्थनुं सत् स्वरूप कदी सत्रूपे ने कदी असत्रूपे जाणे, असत् स्वरूपने कदी असत्रूपे ने कदी सत्रूपे जाणे ए रीते पदार्थना स्वरूपने यथार्थ न जाणे ते मिथ्यादृष्टि, पदार्थना सत् स्वरूपने सत् स्वरूपे जाणे अने असत् स्वरूपने असत् स्वरूपे जाणे एम वस्तु स्वरूपने यथार्थ जाणे, ते सम्यग्दृष्टि, अने पदार्थना सत् स्वरूप वा असत् स्वरूपने समकाळे केटलेक अंशे यथार्थने केटलेक अंशे अयथार्थ जाणे ते मिश्रदृष्टि ए त्रणे दृष्टिना उत्तर भेद आ प्रमाणे—

१ सम्यक्त्व—आत्मानो पदार्थने यथार्थपणे जाणवारूप सम्यक्त्वगुण रोकनार ३ दर्शन मोहनीय अने ४ अनंतानुबंधि ए ७ प्रकृतियो उपशान्त थतां-(उदयथी रोकातां) आत्माने जे श्रद्धागुण प्रगट थाय ते उपशम सम्यक्त्व, अन्तर्मुहूर्त काळ मात्र टके छे. तथा आखा भवचक्रमां पांचवारज, अने एक भवमां बे वार प्राप्त थायछे.

---

१ अर्थात् जेम मदिरा पीवाथी विवेकविकल थयेलो जीव माने मा कहे अने स्त्री पण कहे. स्त्रीने स्त्री कहे अने स्त्रीने मा पण कहे. पोते निर्धन होय छतां धनवान कहे, ने निर्धन पण कहे ए प्रमाणे सत्य अने असत्य वचनरूपे बोले तोपण विवेकशून्य होवाथी सत्य ते पण असत्य अने असत्य ते पण असत्यज गणाय. तेम मिथ्यादृष्टि सत ने कदी सत जाणे ने कदी असत पण जाणे छतां असत जाणेज कहेवाय (ए भावार्थ श्रीतत्त्वार्थभाष्यमां).

तथा ए ७ प्रकृतियोनो सर्वथा क्षय थवाथी आत्माने जे श्रद्धागुण प्रगट थाय ते क्षायिकसम्यक्त्व, आखा भवचक्रमां अथवा एक भवमां एकवार प्राप्त थाय छे. अने अनंतकाळ सुधी रहे छे, पण कोइ काळे विनाश पामतुं नथी.

तथा ए ७ प्रकृतियोमां ६ नो क्षयोपशम (वा प्रदेशोदय मात्र) अने सम्यक्त्व मोहनीयनो विपाकोदय वर्तता आत्माने जे श्रद्धागुण प्रगट थाय ते क्षयोपशमसम्यक्त्व, आखा भवचक्रमां असंख्यात वार, अने एकभवमां घणी हजारवार-(प्रायः ९००० वार) प्राप्त थाय छे, तथा जघन्यमां जघन्य अन्तर्मु० अने वधुमां वधु ए श्रद्धागुण ६६ सागरोपमथी पण अधिककाळ टके छे.

तथा उपशम सम्यक्त्वथी पडतां मिथ्यात्वे न पहोचे तेटलो वचमांनो काळ जघ० १ समय ने उ० ६ आवलिका प्रमाण जे श्रद्धान गुण होय ते पतित थतो श्रद्धागु सास्वादनसम्यक्त्व, ए पण आखा भवचक्रमां ५ वारज अने एक भवमां वेवार प्राप्त थाय.

१ ए प्रमाणे ५ प्रकारनु सम्यक्त्व जाणवुं अथवा बीजी रीते पण १-२-३-४ ने ५ प्रकारनुं सम्यक्त्व छे ते आ प्रमाणे—

२ श्री सर्वज्ञोप्र कहेला तत्त्व उपर प्रतीति राखवी ते तत्त्वश्रद्धान रूप १ प्रकारनुं सम्यक्त्व कहेवाय.

गुर्वादिकना उपदेशादि प्रयत्न विना स्वाभाविक रीते कर्मनो विनाश थतां जे सम्यक्त्वगुण प्रगटे ते नैसर्गिकसम्य०, १ अने गुर्वादिकना उपदेश आदि सम्यक् प्रयत्नथी थयेलुं सम्यक्त्व अधिगम सम्य०२ एम बे प्रकारे अथवा सम्यक्त्वनी करणी देवपूजा-यात्रादि व्यवहारप्रवृत्ति के जे सम्यक्त्वगुणने उत्पन्न करवामां कारणरूप छे ते व्यवहारसम्य०१ अने ज्ञानादिमय आत्मानो विशुद्धे नैश्चयिकसम्य०२ एम बे प्रकारे अथवा सर्वज्ञे कह्युं ते सत्य

छे एम माने पण परमार्थ न जाणे तेने द्रव्यसम्य०,१ अने परमार्थ जाणवा पूर्वक श्रीसर्वज्ञनुं वचन सत्य माने तेने भावसम्य०,२ एम बे प्रकारे अथवा सम्यक्त्वमोहनीय पुद्गलना उदयथी प्राप्त थयेलुं क्षयोप० सम्य० पौद्गलिक होवाथी द्रव्यसम्य०,१ ने उपशम तथा क्षायिक सम्य० भावपरिणतिरूप अपौद्गलिक होवाथी भावसम्य०२ एम बे प्रकारे, ए प्रमाणे बे प्रकारनुं सम्यक्त्व, त्रण अथवा चार आ रीते छे.

३ श्री सर्वज्ञोक्त सम्यक्त्वनी करणीओ देवदर्शन–देव–पूजा–यात्रा–शासनप्रभावना इत्यादि करवाथी कारकसम्य०,१ क्रिया कंइ पण न करे छतां सर्वज्ञोक्त तत्त्वपर प्रेम भाव होय ते रोचकसम्य०,२ ने पोताने श्रद्धा न होय छतां देशना लब्धि इत्यादिवडे बीजा जीवने सम्यक्त्व पमाडे ते दीपकसम्य०३ अभविने पण होय, ए प्रमाणे ३ प्रकारनुं सम्यक्त्व छे. अथवा उपशम–क्षयोपशम–ने क्षायिक एम ३ प्रकारनुं सम्य० प्रथमज कहुं छे.

४ तथा उपशमादि ३ मां सास्वादन गणतां ४ प्रकारनुं सम्य०,५ अने क्षयोपशमसम्यग्दृष्टिने क्षायिक सम्य० प्राप्त थतां क्षयोपशमना अन्त्य समये वेदक सम्यक्त्व होय ते गणतां ५ प्रकारनुं पण सम्यक्त्व थाय.

२ मिथ्यात्व--असत्य छतां असलथी ए वात चाली आवी माटे सत्य एम मानवुं ते अभिग्रह मिथ्यात्व,१ सर्व धर्म सत्य छे, कोइने सारो खोटो न कहेवाय एम मानवुं ते अनभिग्रह मिथ्यात्व,२ में जे वात मानी तेज सत्य अथवा ते सत्यज छे एम मानवुं ते अभिनिवेशिकमिथ्या०–(कदाग्रही मिथ्यात्व),३ सर्वज्ञोक्त वचनमां संदेह करवो–(जेम कहुं छे तेमज हशे के बीजी रीते हशे इत्यादि) ते [१]सांशयिकमिथ्या०,४ अने असंज्ञि जीवोने जे अ-

१ कोइ पदार्थमां जाणवानी जिज्ञासावडे जे सर्व थाय

स्पष्ट मिथ्यात्व छे ते अव्यक्तमिथ्या०, अथवा अनाभोगमिथ्या०५ ए प्रमाणे मिथ्यात्व-(मिथ्यादृष्टिपणुं) पांच प्रकारनुं छे.

३ मिश्र-जे पदार्थ जोयो-सांभळयो-के अनुभव्यो नथी ते पदार्थ उपर रुचि के अरुचि भाव न होय तेम सर्वज्ञोक्त तत्त्वपर जे रुचि अने अरुचि बन्ने न होय ते मिश्रदृष्टिपणुं १ ज प्रकारनुं छे. आ मिश्र० फक्त अन्तर्मु०ज रहे छे, त्यारबाद जीव मिथ्यात्वे वा सम्यक्त्वे जाय छे. ॥ इति दशमं दृष्टिद्वारम्. ॥१०॥

॥ ११ दर्शनद्वारम्. ॥

दर्शन एटले सामान्य उपयोग अर्थात् घटादि पदार्थनो "आ कांइ छे" एवो प्रथम जे सामान्यबोध थाय ते दर्शन, चक्षु-अचक्षु-अवधि-ने केवळ एम ४ प्रकारनुं छे ते आ प्रमाणे—

१ चक्षु इन्द्रियद्वारा देखेला पदार्थनो जे सामान्य बोध ते चक्षुदर्शन.

२ चक्षु इन्द्रिय सिवाय शेष ४ इन्द्रिय अने मनथी थतो सामान्यबोध ते अचक्षुदर्शन, अथवा इन्द्रिय अने मन विना पण जीवनी जे दर्शनलब्धि छे ते पण अचक्षुदर्शन, (आ बीजो अर्थ ग्रन्थोमां के सिद्धान्तमां स्पष्ट उपलब्ध नथी परन्तु जीवने पूर्वभवमांथी आवतां मार्गमां अने अपर्याप्तावस्थामां इन्द्रिय-मन विना पण उक्त प्रकारनुं अचक्षु दर्शन गणेलुं छे, माटे अहिं तेवा प्रकारनो बीजो अर्थ पण लख्यो छे.)

ते संशय न कहेवाय. कारणके तर्क, तथा संशय. शंका ए बे भिन्न छे. तर्क जिज्ञासारूप छे, अने संशय ते अविश्वासरूपछे.

३ अवधिज्ञानीने अवधिज्ञानवडे प्रथम जे सामान्यबोध थाय ते अवधिदर्शन. सिद्धान्तमां विभंगज्ञानिने पण होय छे.

४ केवळ ज्ञानवडे प्रथम विशेष उपयोग थया बाद जे सामान्य उपयोग थाय ते केवळदर्शन.

दरेक पदार्थमां सामान्य अने विशेष ए बे धर्मो रहेला छे, त्यां आत्मानो उपयोग गुण जे समये पदार्थना सामान्य धर्म उपर प्रवर्तती होय ते समये आत्मा दर्शन उपयोगवाळो गणाय अने विशेष धर्म उपर प्रवर्ततो होय त्यारे ज्ञानोपयोग कहेवाय, ते आगळ ज्ञानद्वारमां कहेवाशे. पुनः घट पदार्थमां घटत्व—अने वर्णत्व ए सामान्य धर्म, अने अमुक स्थाननो, अमुकनो बनावेलो, अमुक वर्णनो, अमुक उपयोगमां आवनारो इत्यादि अनेक विशेष धर्मो छे. तथा आ दर्शननुं बीजुं नाम निराकार उपयोग पण छे. ॥ इत्येकादशं दर्शनद्वारम्. ११

॥ १२ ज्ञानद्वारम्. ॥

आत्मानो पदार्थ प्रत्ये जे विशेष उपयोग ते ज्ञान. अथवा दरेक पदार्थमां सामान्य धर्म अने विशेषधर्म ए बे धर्मो छे. त्यां आत्मानो उपयोग जे समये पदार्थना विशेष धर्म प्रत्ये प्रवर्ते ते समये आत्मा ज्ञान उपयोगवाळो कहेवाय. तेमां छद्मस्थ जीवने प्रथम अन्तर्मु० सुधी सामान्य उपयोग ने त्यारबाद अन्तर्मु० ज्ञानोपयोग, अने श्री सर्वज्ञने केवळज्ञान उत्पत्तिसमये केवळज्ञान अने बीजे समये केवळदर्शन त्रीजे समये केवळज्ञान ४ थे समये केवळदर्शन ए प्रमाणे एकेक समयने अन्तरे दर्शनोपयोगने ज्ञानोपयोग परावर्त्तमान थया करे छे पुनः अहिं ज्ञान ने सम्यग्ज्ञान ग्रहण करवुं

पण विपरीतज्ञान नहिं, कारणके विपरीत—अयथार्थ ज्ञान माटे तो १३ मुं अज्ञानद्वार आगळज कहेशे, त्यां सर्वज्ञोक्त तत्व उपर प्रतीतिपूर्वक सम्यग्दृष्टिनुं जे ज्ञान ते ज्ञान कहेवाय ते पांच प्रकारनुं आ प्रमाणे छे—

१ मन अने इन्द्रियोद्वारा थतुं अक्षरोपलब्धि रहित जे यथार्थ ज्ञान ते मतिज्ञान।

२ मन अने इन्द्रियोद्वारा थतुं अक्षरोपलब्धिरूप (अथवा अर्थवाचक) यथार्थज्ञान श्रुतज्ञान।

३ मन अने इन्द्रियोनी अपेक्षाविना आत्मसाक्षात् थतु रूपी पदार्थनुं यथार्थज्ञान ते अवधिज्ञान.

४ मन अने इन्द्रियो विना आत्मसाक्षात् मनःपणे परिणमेला पुद्गलोनुं ज्ञान ते मनःपर्यवज्ञान (आ ज्ञान यथार्थ ज होय छे.)

५ मन अने इन्द्रियो विना सर्व द्रव्य अने सर्व पर्यायनु एक समयमां जे ज्ञान थवुं ते केवळज्ञान.

ए पांच ज्ञानमां प्रथम मतिज्ञानी द्रव्यमां सर्व द्रव्यने सामान्यथी जाणे छे, क्षेत्रथी लोक अने अलोक सर्व क्षेत्र (मां रहेला पदार्थोने) सामान्यथी जाणे छे. काळथी त्रणे काळने सामान्यथी जाणे, अने भावथी अनंतमा भाग जेटला अनन्त पर्याय जाणे.

श्रुतज्ञानी द्रव्यथी अभिलाप्य-(वचनगोचर) द्रव्योने जाणे, अने देखे, क्षेत्रथी लोकालोक सर्व क्षेत्रने, काळथी त्रणे काळने, अने भावथी अभिलाप्य पर्यायो जे अनंतमा भाग जेटला अनंत छे ते सर्व जाणे--देखे (अथवा कर्मग्रंथटीका वगेरेमां सर्व द्रव्य—सर्वक्षेत्र—सर्वकाळ—ने सर्व भाव जाणे देखे एम पण कह्युं छे.)

अवधिज्ञानी द्रव्यथी सर्वरूपीद्रव्य, क्षेत्रथी असंख्य लोक

प्रमाण, काळथी असंख्यकाळ, ने भावथी अनंतमा भाग जेटला अनंत पर्यायोने जाणे अने देखे.

॥ १३ अज्ञानद्वारम्. ॥

अज्ञान एटले ज्ञाननो अभाव एवो अर्थ नथी पण अ एटले अयथार्थ-विपरीत ज्ञान ते अज्ञान ए अज्ञान मिथ्यादृष्टि जीवने मानेलुं छे. कारणके मिथ्यादृष्टि जीव कोइपण पदार्थना स्वरूपने सर्वज्ञोक्त वचनानुसारे जाणतो अथवा ओळखतो नथी पण स्वकल्पनावडे निर्णय करेला स्वरूपे ओळखे छे, अने पोते सर्वज्ञ नथी माटे कोइ पदार्थमां कोइ स्वरूप उलट रीते पण स्वीकाराय अने कोइ स्वरूप सम्यग् रीते पण स्वीकाराय छतां स्वकल्पितस्वरूप होवाथी बन्नेस्वरूपे स्वीकार करवो ते अयथार्थ छे माटे मिथ्यादृष्टिनुं ज्ञान ते अज्ञान छे. जेमके नाडी परीक्षामां अनुभव विनानो वैद्य रोगनी यथार्थ चिकित्सा करी शके नहिं. तेम स्वकल्पित स्वरूपवडे पदार्थनुं यथार्थ ज्ञान थाय नहिं, ते अज्ञान ३ प्रकारनुं छे ते आ प्रमाणे–

१ मन अने इन्द्रियोवडे थतुं (अक्षरोपलब्धि विनानुं) अयथार्थ ज्ञान ते मति अज्ञान.

२ मन अने इन्द्रियोवडे थतुं अक्षरोपलब्धिरूप अयथार्थज्ञान ते श्रुतअज्ञान.

३ मन अने इन्द्रियो विना आत्म साक्षात्रूपी पदार्थनुं अयथार्थ ज्ञान ते विभंगज्ञान. अहिं पूर्वाचार्यो विभंगने अज्ञान शब्द नहिं जोडतां ज्ञान शब्द जोडे छे तेनुं कारणके विभंग शब्दज अयथार्थ शब्दनो वाचक छे, अर्थात् विभंग एटले उलट भांगावाळुं एटले अय थार्थ एवुं (अवधि) ज्ञान ते विभंगज्ञान आ ज्ञान स्वरूपे अवधि अज्ञान छे.

अहिं अज्ञानी जीव घट पदार्थने देखी पट कहे अथवा ओ-ळखे छे एम नथी पण घट पदार्थमां जेटला सत् धर्मो अने जेटला असत् धर्मो छे तेटला सर्व धर्मोए करीने युक्त नथी मानतो पण केटलाक धर्मोने माने छे, वळी केटलाक धर्म माने तेमां जे धर्म जे रूपे रहेलोछे ते रूपेज माने एवो पण नियम नथी. माटे घटने घट माने तोपण मिथ्यादृष्टिनुं ज्ञान अज्ञान गणाय छे. आ ३ अज्ञान-नो द्रव्य-क्षेत्र-काळ-ने भाव ए चार प्रकारनो विषय अज्ञानमां ग्रहण थयेला द्रव्यादि जेटलो अनियमित प्रमाणे जाणवो. ॥ इति त्र-योदशमज्ञानद्वारम्. ॥ १३ ॥

॥ १४ योगद्वारम्. ॥

योग एटले आत्मानो पौद्गलिक व्यापार. ते ४ मनयोग ४ वचनयोग अने ७ काययोग मळी १५ प्रकारनो छे, त्यां सत्य-असत्य-मिश्र-ने व्यवहार ए नामे ४ मनयोग तथा ४ वचनयोग छे, अने औदा०-औदा०मिश्र-वैक्रिय-वैक्रियमिश्र-आहारक-आहारकमिश्र अने तैजसकार्मण ए नामे ७ प्रकारनो काययोग छे. तेनुं स्वरूप आ प्रमाणे—

काययोगद्वारा मनोवर्गणानां पुद्गलो ग्रहण करी मन (चिंत-वन)पणे परिणमावी अवलंबीने विसर्जन करवां ते मनोयोग. एमां मन ते पुद्गल द्रव्यनो समुदाय छे, अने ते पुद्गल समुदाय छे, अने ते पुद्गल समुदायने काययोगथी ग्रहण--परिणमन-अवलंबन-ने विसर्जनरूप व्यापार ते काययोग विशेषनुं नाम मनोयोग छे.

काययोगवडे भाषा वर्गणानां पुद्गलो ग्रहण करी भाषापणे परिणमावी-अवलंबी-ने विसर्जन करवारूप आत्मानो व्यापार ते

वचनयोग. आ पण काययोग विशेषज छे.

औदारिकादि शरीरना आलंबनवडे आत्मानो जे व्यापार ते काययोग. (मनोयोगना ४ प्रकार)

१ मोक्षमार्गने अनुकूळ एवो मनोव्यापार ते सत्य मनयोग. २ मोक्षमार्गने प्रतिकूळ एवो मनोव्यापार ते असत्य मनोयोग, ३कंइक सत्य अने कंइक असत्य एवो मनोव्यापार ते मिश्र मनोयोग, ४अने मोक्षमार्गने अनुकूळ नहिं, तेम प्रतिकूळ पण नहिं एवो, अथवा जेमां चिंतवनना वस्तु स्वरूपनो निर्णयभाव न होय-(अमुक आ रीते छे, अथवा आ रीते नथी एवा निर्णय विनानुं चिंतवन) ते असत्याऽमृषा अथवा व्यवहार मनोयोग छे.

ए प्रमाणे चारे अर्थ वचनयोगना संबंधमां उच्चार करवा पूर्वक विचारवा.(१)अहिं सत्यमनोयोग अने सत्य वचनयोगना १०-१० भेद छे तेनुं स्वरूप वचनयोगद्वारा (सुगम समजातुं होवाथी) दर्शावाय छे—

" जणवय सम्मय ठवणा, नामे रूवे पडुच्च सच्चे अ ।
ववहार भाव जोगे, दसमे ओवम्मसच्चे अ ॥ १ ॥"

अर्थः—जनपदसत्य, सम्मतसत्य, स्थापनासत्य, नामसत्य, रूपसत्य, प्रतीत्यसत्य, व्यवहारसत्य, भावसत्य, योगसत्य, अने १० मुं उपमासत्य. १त्यां जे देशमां जे भाषा बोलाती होय ते देशमां ते भाषाथी बोलायलो शब्द सत्य कहेवाय, जेम गुजरातमां पाणीने पाणी कहे छे, अने बीजा कोइ देशमां पाणीने पिच्च कहे छे तो ते पाणीने ओळखावनार पिच्च शब्द असत्य नथी पण जनपद-(देश) सत्य छे.

२ अनेक वस्तुमां तेवा गुण होवा छतां पण पंडितजनोए अमुकनुज नाम अमुक ठराव्युं होय, जेम " पंक " एटले कादवमां

"ज" एटले जन्मेली घास विगेरे अनेक वस्तु छतां कमळनेज "पं-कज" नामथी ओळखवानो व्यवहार ठराव्यो छे ते **सम्मतसत्य.**

३ अमुक वस्तु सरखा चितरेला अथवा कोतरेला आकारवाळी बीजी वस्तुने पण ते वस्तु कहेवी. जेम चितरेला अथवा कोतरेला सिंहना आकारवाळा काष्टादिने " आ सिंह छे " एम कहेवुं ते **स्थापनासत्य.** आ स्थापना सत्य अतदाकार वस्तुमां पण होइ शके छे, जेम घोडानो आकार नहिं छतां नाना बाळको लाकडीने " आ मारो घोडो छे " एम कहे छे ते पण स्थापना सत्य छे, पण असत्य नहिं.

४ तेवा गुण नहिं होवा छतां बीजी वस्तुने तेवा नामथी बोला-ववी, जेम सिंहनो चाकर नहिं छतां सिंहदास नाम पाडवुं, निर्ध-न छतां लक्ष्मीधर नाम कहेवुं इत्यादि **नामसत्य** छे.

५ तेवा गुणवाळो नहिं छतां वेष उपरथी तेवा नामे बोलाववो जेम साधुना गुण नहिं छतां साधुनो वेष पहेरेलाने " आ साधु छे " एम कहेवुं ते **रूपसत्य.**

६ जे कथन अमुकनी अपेक्षाए कहेवुं, जेम अनामिका आंगळी कनिष्ठाथी मोटी अने मध्यमाथी नानी छतां मोटी या नानी कोइ एकज अपेक्षाए कहेवी ते **प्रतीत्यसत्य.**

७ लोक रूढि प्रमाणे बोलवुं ते जेम वासणमांथी पाणी झरवा छतां वासण गळे छे, पर्वतपर घास बळवा छतां पर्वत बळे छे, ने कन्या-ने पेट होवा छतां गर्भ नहिं धारण करवानी अपेक्षाए अनुदरा (उदर विनानी) कहेवी इत्यादि **व्यवहारसत्य.**

८ कोइ वस्तुना संबंधथी अमुक वस्तुने ते वस्तुना संबद्ध नाम-थी ओळखवी जेम छत्र धारण करनारनी पासे छत्र होय न होय

तोपण छत्री, दंड धारण करनारनी पांसे दंड होय न होय तोपण दंडी कहेवो इत्यादि योगसत्य कहेवाय.

९ बाहुल्यतानी अपेक्षाए कहेवुं ते जेमके पोपटमां पांचे वर्ण–(भाव–वर्णादिपर्याय) छे छतां लीलो कहेवो. भ्रमर पांचे वर्ण-युक्त छे छतां काळो कहेवो इत्यादि अल्पत्वनी अविवक्षाए भावसत्य

१०केटलाएक सरखा धर्मवाळी वस्तु साथे बीजी वस्तुनी सरखा-मणी करवी. जेम मोटा तळावने समुद्र जेवडु कहेवुं, चंद्रमा सरखा कंइक गोळ अने कान्तिवाळा मनुष्यना मुखने चंद्रमुख कहेवुं इ-त्यादि उपमासत्य. ए प्रमाणे १० प्रकारनां सत्य कह्यां.

(२) तथा १क्रोध२मान३माया४लोभ५प्रेम६हास्य७भय-अने८द्वेषथी उत्पन्न थयेली असत्यभाषा ते क्रोध निःसृत, माननिःसृत इत्या-दि कहेवाय.९अने बनावटी कथावार्ताओ करवारूप भाषा कथा-निःसृत,१०अने खोटुं कलंक आपवारूप उपधाननिःसृत ए रीते १० प्रकारना असत्ययोग छे.

३ पुनः मिश्रयोग १० प्रकारनो ते आ प्रमाणे—१ "आजे आ नगरमां दशेक बाळक जन्म्या छे." इत्यादि उत्पत्तिनी अनिश्चित संख्या कहेवी ते उत्पन्नमिश्रित २ दशेक मरण पाम्या छे इत्यादि विनाश संख्या कहेवी ते विगतमिश्रित, ३ दशेक जन्म्या, अने दशेक मरण पाम्या. इत्यादि उभयसंख्या कहेवी ते उत्पन्नविगत मिश्रित, ४ शंखादि घणा जीवता अने थोडा मरेला देखी सर्व स-मुदायमां "आ जीव राशि छे." एम कहेवुं जीवमिश्रित, ५ घणा मरे-ला अने थोडा जीवता देखीअ "जीवराशि" कहे ते अजीवमिश्रित, ६आ राशिमां आटला जीवता छे ने आटला मरण पाम्या छे एम आसरे संख्या कहे ते जीवाजीवमिश्रित, प्रत्येक ७जीवमिश्रित साधारण वनस्पतिजीवराशिने साधारणराशि कहे छे ते साधारण

मिश्रित,८अनंतकायमिश्रित प्रत्येक जीवराशिने "आ प्रत्येक जीवराशि छे" एम कहे ते प्रत्येकमिश्रित,९रात्री छतां शीघ्रता माटे कहेवुं के "जलदी उठ सूर्य उग्यो" इत्यादि अद्धामिश्रित,१०उतावळने अंगे दिवस वा रात्रिना एक भागने बीजो भाग कहीये जेम रात्रिनो प्रथम प्रहर छतां मध्यरात थइ कहे ते अद्धाद्धामिश्रित.

(४)तथा असत्याऽमृषा एटले व्यवहार वचन योगना पण १२ भेद छे ते आ प्रमाणे–१" हे देवदत्त ! " इत्यादि अन्यने बोलाववा रूप आमंत्रणी, २"तुं आ कर " इत्यादि आज्ञा करवा रूप आज्ञापनी३"अमुक आप " इत्यादि मांगणी करवा रूप याचनी,४प्रश्न करवो ते पृच्छिनी,५उपदेश आपवा रूप प्रज्ञापनी, ६कोइ कार्यथी निवृत्त (प्रतिषेध) करवा रूप प्रत्याख्यानी,७अनुमति (मत–अभिप्राय) जापवा रूप इच्छानुकूलिका,८कोइए अभिप्राय पूछवाथी " तने जे ठीक लागे ते " इत्यादि कहेवुं ते अनभिगृहिता.९अमुकज करवुं, ने अमुक न करवुं इत्यादि निर्णयात्मक सलाह आपवी ते अभिगृहिता. १०द्वचर्थी वा अनेक अर्थी वचन बोलवुं के जेथी निर्णयात्मक भावार्थ न नीकळे ते सांशयिक,११प्रगट रीते जेनो अर्थ समजी शकाय तेवी अथवा स्पष्ट अक्षरो वाळी (पण अर्थ शून्य) भाषा बोलवी ते व्याकृत (–व्यक्त)१२अने गंभीर अर्थवाळी अथवा अस्पष्ट अक्षरवाळी भाषा ते अव्याकृत, आ छेल्ली भाषा द्वीन्द्रियादि जीवोने होय छे अने रे–लोल–लाल इत्यादि कविताना अलंकारी अर्थ विनाना शब्दो तथा पारणुं झुलावतां इत्यादि कार्यमां पथ हललल इत्यादि अर्थ विनाना बोलाता शब्दो तो व्याकृत वचन योग

ए प्रमाणे सत्यना १०, असत्यना १०, मिश्रना १०, व्यवहारना १२ भेद मळी ४२ मनोयोग ने ४२ वचनयोग थाय छे.

तथा कायानो योग ते आ प्रमाणे—पूर्व भवमांथी परभव-मां जवाने कार्मण शरीर कारण भूत छे, ने कार्मण शरीरनी साथे तैजस शरीर सदाकाळ रहेलुं होय छे माटे कार्मण शरीरनी सहाय थी (पूर्वभवथी परभवमां जवारूप) आत्मानो जे व्यापार ते कार्मण काययोग, अथवा भवधारणीय शरीरव्यापारना अभावे मात्र तैजसकार्मण कायाद्वारा आत्मानो परभवगमन—परभवोत्पत्ति प्रथमसमये आहारग्रहण—तथा केवलिसमुद्घातना ३—४—५ समये प्रवर्तन रूप जे व्यापार ते कार्मण काययोग अथवा तैजस कार्मण काययोग.

प्रश्नः—तैजस समुद्घात वखते, आहार पचन समये तैजस कायनो व्यापार प्रगट छे, ने कार्मणकायनो व्यापार छे नहिं तो ते वखते एकलो तैजसयोग केम न कहेवाय ?

उत्तर—जे वखते तै० समुद्घातमां, अने आहार पचन व्यापारमां जीव वर्ते छे ते वखते आत्मानुं औदा० शरीर संपूर्ण रचायलुं होवाथी औदा० शरीरना आलंबनथी तैजस परमाणुओ वडे पूर्वोक्त कार्य करे छे, माटे प्रयत्नमां औदारिक काय मुख्य छे,

प्रश्नः—केवळी समु० ना ३—४—५ समये तै० का० काययोग वडे आत्मा शुं करे छे ? नथी परभवमां जतो, नथी आहार पचन करतो, के नथी आहार ग्रहण करतो, त्यारे तैजस वा कार्मण द्वारा आत्मा ते वखते कइ जातनो व्यापार करे छे ? के जेथी ते वखते तै० का० काययोग कही शकाय. ?

उत्तर—सयोगी आत्मा सदाकाळ योग प्रवृत्ति वाळो छे, त्यां जे वखते जे शरीरनुं साधन मळे ते वखते ते शरीरद्वारा योग प्रवृत्तिवाळो होय, अहिं समु० वखते औदा० शरीरथी घणे अंशे छूटो पडी गयेलो आत्मा तैजस कार्मण वडे सर्वांशे व्याप्त होवा-

थी योग प्रवृत्तिमां ते वखते ए बे शरीरज आलंबन रूप छे, माटे ए काययोगतो ते वखते संभवे छे, अने ते योग कइ जातनो व्यापार करे छे ? ते संबन्धमां तो एज समजाय छे के कार्मण शरीरना आलंबनथी आत्मा स्वप्रदेशोनी विचलतामां वर्ते छे, अने ते विचलता वडे कर्मप्रदेशोनुं ग्रहण करे छे, अथवा ते बे शरीरना आलंबन वडे ज ते वखते मंथनकरण--अन्तरपूर्ति--अन्तर संहरण रूप व्यापार करे छे. ॥ इति चतुर्दशं योगद्वारम् ॥ १४ ॥

॥ १५ उपयोगद्वारम्. ॥

उप एटले समीपमां युज्यते-जोडाय ते उपयोग, अर्थात् विषयदेशमां प्राप्त थयेला पदार्थोनी परिछित्तिमां (-वस्तु स्वरूपावलोकनमां) जोडाय एवो आत्मानो गुण ते उपयोग. ते बे प्रकारनो छे, सामान्य उपयोग एटले दर्शन, अने विशेष उपयोग ते ज्ञान. त्यां दर्शनोपयोग चक्षुदर्शन-अचक्षुदर्शन- अवधिदर्शन-ने केवळदर्शन एम ४ प्रकारे छे, तथा ज्ञानोपयोग पण बे प्रकारे छे. यथार्थ ज्ञानोपयोग अने अयथार्थ ज्ञानोपयोग. त्यां यथार्थज्ञानोपयोगनी पूर्वर्षिओए ज्ञान एवी संज्ञा राखी छे, अने अयथार्थ ज्ञानोपयोगनी अज्ञान एवी संज्ञा राखी छे. त्यां ज्ञानना ५ प्रकार मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान-मनःपर्यवज्ञान-ने केवळज्ञान ए प्रमाणे छे, अने मतिअज्ञान-श्रुतअज्ञान-ने विभंगज्ञान (-वस्तुतः अवधिअज्ञान) ए प्रमाणे अज्ञान ३ प्रकारे छे, मनःपर्यव ज्ञान सम्यग्दृष्टिनेज (मुनिने ज) होय छे माटे मनः पर्यव अज्ञान होतुं नथी, अने केवळ ज्ञानीने तो अज्ञान न होय ए स्वभाविक ज छे.

माटे ज्ञान पांच अने अज्ञान ३ छे, ए प्रमाणे ५ ज्ञान-३ अज्ञान-ने ४ दर्शन मलीने १२ उपयोग छे. तेमां अवधिद्विक-मनः पर्यव -विभंग-ने केवलद्विक ए ६ उपयोगमां आत्मा इन्द्रिय अने मन-नी सहाय विना स्वतंत्र रीते प्रवर्ते छे, माटे प्रत्यक्ष अथवा साक्षात् उपयोग ६ छे. अहिं प्रत्यक्षमां प्रति-समीपे अने अक्ष-जीव ए-वो अर्थ होवाथी प्रत्यक्ष एटले आत्मसाक्षात् कहेवाय छे, अने आत्मसाक्षात् नहिं ते परोक्ष उपयोग मति २-श्रुत २-चक्षुद०-अचक्षुद० ए प्रमाणे ६ प्रकारे छे. ए ६ उपयोगमां आत्माने इन्द्रिय अने मननी सहाय अवश्य लेवी पडे छे अने इन्द्रियोद्वारा ज जाणी देखी शके छे, माटे ए ६ उपयोग आत्माने साक्षात् भावे नथी. जेम निरोग चक्षुवालो पुरुष घटादि पदार्थने प्रगट रीते अन्य साधननी सहाय विना देखी शके छे, अने हीनतेजचक्षुवालो पुरुष चस्मा विगेरे अन्य साधनथी घटादि पदार्थ देखी शके छे तेम आत्मा इन्द्रियो अने मननी सहायथी देखी जाणी शके तो ते उपयोग परोक्ष उपयोग कहेवाय, अने इन्द्रियमननी सहाय विना स्वतंत्र देखी जाणी शके तो ते उपयोग प्रत्यक्ष उपयोग कहेवाय. ए वास्तविक रीत कही, पण व्यवहार रुढीमां तो इन्द्रियोथी अनुभवेल घटादि स्वरूपने प्र-त्यक्ष ज्ञान-(उपयोग) कहे छे, अने अनुमानादिप्रमाणथी निर्णय करेला स्वरूपने फक्त मनोविषयिक ज्ञानने परोक्षज्ञान कहे छे, ए व्यवहार (प्रत्यक्षने) पण शास्त्रमां व्यवहारप्रत्यक्षना नामथी स्वी-कारेल छे. अने अनुमानादि तो बन्ने रीते परोक्ष ज छे. अहिं १२ उपयोगनुं स्वरूप प्रथम दर्शनद्वारमां ज्ञानद्वारमां कहेवाइ गयुं छे, माटे पुनः कहेवाशे नहिं. ॥ इति पञ्चदशमुपयोगद्वारम्. ॥ १५ ॥

॥ १६ उपपातद्वारम्. ॥

कया दंडके एक समयमां केटली जीव संख्या उत्पन्न थाय एम कहेवुं ते उपपातद्वार, अने कया दंडकमां केटलाकाळ सुधी कोइपण जीव आवी उत्पन्न थाय नहिं ? एम कहेवुं ते उपपातविरह कहेवाय.

॥ १७ च्यवनद्वारम्. ॥

कया दंडके एक समयमां केटला जीव मरण पामे तेनी संख्यानो नियम कहेवो ते च्यवनद्वार, अने कया दंडकमां केटला काळसुधी कोइपण जीव मरण न पामे ते संबंधि काळ नियम दर्शाववो ते च्यवनविरह कहेवाय. ॥

॥ १८ स्थितिद्वारम्. ॥

कया दंडके जीवोनुं केटलुं आयुष्य होय ते आयुष्यकाळनो नियम दर्शाववो ते स्थितिद्वार.

॥ १९ पर्याप्तिद्वारम्. ॥

पर्याप्ति एटले जीवनी आहार ग्रहण करवादिकनी शक्ति, अथवा ते शक्तिनी समाप्ति ते पर्याप्ति कहेवाय, ते पर्याप्ति आहार–शरीर–इन्द्रिय–उच्छ्वास–भाषा ने मन ए प्रमाणे ६ प्रकारनी छे, तेनुं संक्षिप्त स्वरूप आ प्रमाणे—

आहारपर्याप्ति--आहार ग्रहण करी आहारपणे परिणमावी खल-रस जुदां करवानी शक्ति **आहारपर्याप्ति** आ पर्याप्ति उत्पत्ति स्थाने आवेला जीवने प्रथम समये ज प्रगट थाय छे, अहिं ग्रहण करेल आहारनो केटलोक भाग देहपणे परिणमे नहिं एवो होय तेनो त्याग करे छे, अने देहपणे परिणमवा योग्य आहारने देहपणे परिणमावे छे, त्यां देहपणे परिणाम न पामे एवा आहारने खलरूप-(कूचारूप) कही शकाय, अने शेष आहारने रसरूप कही शकाय, अन्यथा मळ-मूत्रमेज खलरस मानीये तो वैक्रिय अने आहारकनी पर्याप्तिमां खलरस पृथक्करणनो असंभव छे, तो तेमां ए आहार पर्याप्तिनो अर्थ केम समीचीन थाय ? पुनः आ पर्याप्ति एकज समयमां समाप्त थाय छे.

शरीर पर्याप्ति—ग्रहण करेला आहारने शरीरपणे परिणमाववानी शक्ति ते दरेक जीवने अन्तर्मुहूर्तकाळे प्रगट थाय छे.

इन्द्रियपर्याप्ति—ग्रहण करेला आहारमांथी इन्द्रिय योग्य पुद्गलोने अभ्यन्तर निर्वृत्ति इन्द्रियपणे परिणमावी इन्द्रियद्वारा विषय जाणवानी शक्ति प्राप्त थाय ते औदा० शरीरीने अन्तर्मु०काळे अने आहा० तथा वै० शरीरीने एक समये प्रगट थाय छे.

उच्छ्वास पर्याप्ति—श्वासोश्वास योग्य पुद्गलो ग्रहण करी, श्वासोच्छ्वासपणे परिणमावी, अवलंबीने विसर्जन करवानी शक्ति. ते औदा० शरीरने अन्तर्मुहूर्त्त अने आहा० वै०शरीरीने १ समये प्रगट थाय छे.

भाषापर्याप्ति—भाषायोग्य पुद्गलो ग्रहण करी, भाषापणे परिणमावी-(भाषारूप बनावी) अवलंबीने विसर्जन करवानी शक्ति तेनो काळ इन्द्रिय पर्याप्तिवत्

मनःपर्याप्ति—मन योग्य पुद्गलो ग्रहण करी, मनपणे परिणमावी अवलंबीने विसर्जन करवानी शक्ति तेनो काळ इन्द्रिय पर्याप्तिवत्.

ए ६ पर्याप्तियोमां जे जीवने जेटली पर्याप्तियो पूर्ण करवा योग्य होय छे, तेटली पर्याप्तियो ते जीव उत्पत्तिसमये समकाळे प्रारंभे छे, पण पूर्ण अनुक्रमे करे छे, कारणके प्रथमसमयगृहीत आहारना उपष्टंभथी-(आलंबनथी) जीवने आहारपर्याप्तिरूप शक्ति सर्वांशे प्रगट थइ, अने शरीरपर्याप्त्यादिरूप शक्तियो देशांशे प्रगट थइ छे, ए प्रमाणे प्रारंभ समकाळे अने समाप्ति अनुक्रमे होयछे.

तथा जे जीवने जेटली पर्याप्तियो छे, ते जीव तेटली पर्याप्तियो पूर्ण करे ज एवी लब्धिवाळो जीव लब्धिपर्याप्त कहेवाय. ते लब्धिपर्याप्तपणुं भवना प्रथम समयथी भवना अन्त्यसमयपर्यन्त होय. एनुं आयु उ० ३३ सागर होय.

तथा जे जीवने जेटली पर्याप्तियो छे ते जीव तेटली पर्याप्तियो पूर्ण नहिज करे एवी लब्धिवाळा जीवो लब्धिअपर्याप्त कहेवाय, ए लब्धि अपर्या०पणुं पण भवना प्रथम समयथी भवना अन्त्य समय सुधी होय छे. आ जीवोनुं आयु उत्कृष्ट अन्तमु० होय.

तथा जे जीवने जेटली पर्याप्तियो छे, ते जीवे तेटली पर्याप्तियो ज्यां सुधी पूर्ण नथी करी पण करशे एवो जीव करणअपर्याप्त, अने पूर्ण कर्या बाद करणपर्याप्त कहेवाय. त्यां करण अपर्याप्तपणुं भवना प्रथम समयथी अन्तमु० पर्यन्त, अने करणपर्याप्तपणुं अन्तमु०न्यून स्वस्वपर्याप्तायुष्य जेटला काळवाळुं छे. पर्याप्ति संबंधि विशेष वर्णन प्रथम नवतत्त्व विस्तरार्थमां विस्तार पूर्वक करेल होवाथी अहिं विशेष वर्णन कर्युं नथी.

॥ किमाहारद्वारम्. ॥

किम् एटले कइ दिशिनो (दिशिथी आवेलो) आहार एटले आहार होय ? ते संबंधि जे निर्णय कहेवो ते किमाहार कहेवाय. त्यां लोकने अन्ते (किनारे) रहेला सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्व्यादि ५ तथा सूक्ष्मपर्याप्त पृथ्व्यादि ५ तथा बादरपर्याप्तवायु अने बादरअपर्याप्त-वायु ए १२ जीवभेदने ३-४-५ दिशिनो आहार होय, अने ए १२ सहित सर्व जीवभेदो जे लोकनी अदरना भागमां-(लोकनो दशे दिशाए फरतो अन्त्य किनारो छोडीने अंदरना सर्व भागमां) रहेला छे तेओने सर्वने छ ए दिशिथी आवेलो आहार होय छे.

शंकाः—जीव जे आकाश प्रदेशोमां अवगाह्यो छे तेज आ-काश प्रदेशमां रहेला आहारने ग्रहण करे छे तो छए दिशाथी आ-वेलो आहार ग्रहण करे ते केवी रीते ?

उत्तरः—ए वात सत्य छे, परन्तु जीव जे आकाश प्रदेशोमां अवगाह्यो छे ते आकाश प्रदेशमां आहार ग्रहण समये ६ ए दिशि-थी आवता पुद्गलोने ग्रहण करे छे, माटे ६ दिशिथी आवेला पुद्-गलो ग्रहण करे एम कही शकाय.

ए आहार ग्रहण व्याघातभावी अने निर्व्याघातभावी एम बे प्रकारनुं छे, त्यां अलोकाकाशवडे आहार पुद्गलोने आवतां जे स्खलना थाय अर्थात् न आवी शके ते व्याघात कहेवाय अने ते व्याघातना कारणथी जीव सर्व दिशिथी आहार न ग्रहण करी शके पण ओछी दिशिथी आहार ग्रहण करे ते व्याघातभावीआ-हार कहेवाय, प्रथम जे ३-४-ने ५ दिशिथी जे आहार ग्रहण कर्युं ते व्याघातभावी आहार ग्रहण जाणवुं. अने तेवा व्याघातना अभावे सर्वदिशिथी एटले छए दिशिथी जे आहारनुं ग्रहण थाय ते निर्व्याघातभावीआहार कहेवाय.

प्रश्नः—दिशाओ १० छतां ६ दिशिथी आहार ग्रहण केम कह्युं?

उत्तरः—विदिशाने पडखे रहेली दिशामां अन्तर्गत गणतां ६ दिशा पण कही शकाय, माटे अत्रे ६ दिशिथी आहार ग्रहण कह्युं, पुनः वास्तविक रीते क्षेत्रविदिशा एकेक आकाश प्रदेशनी श्रेणिरूप होवाथी आहार्य पुद्गल स्कंध एक प्रदेशात्मक श्रेणिमां अवगाहे नहिं पण जघन्यमां जघन्यथी अंगुलना असंख्यातमा भाग जेटला क्षेत्रमां अवगाहे छे, अने तेटला अवगाहमां विदिशि प्रदेशो करतां दिशि प्रदेशो असंख्यगुणा संभवे छे, माटे विदिशिने दिशिमां अंतर्गत गणवापूर्वक ६ दिशिनो आहार कह्यो.

प्रश्नः—आ किमाहारद्वारमां आहार्य पुद्गलो कइ वर्गणानां अंगीकार करवां?

उत्तरः—तैजस अने कार्मण वर्गणा वर्जीने शेष औदा०—वैक्रिय—ने आहारक ए ३ भवधारणीय शरीर वर्गणाना पुद्गल स्कंधोनो अहिं आहार अंगीकार करवो, अने कार्मण पुद्गलनो आहार तो जीवने सयोगिपणा सुधी प्रति समय होय छे, माटे आ किमाहार प्रसंगे ते तै० का० नो आहार अंगिकार न करवो. ए आहार्य पुद्गल स्कंध पण कमीमां कमी अभव्यथी अनंत गुण परमाणुओनो बनेलो होय छे, कारणके तेथी कमी परमाणुओवाळा स्कंधो जीव ग्रहण करी शकतो नथी. पुनः ग्रहण कराता आहारमांथी असंख्यातमा भाग जेटलो आहार आहारपणे परिणमे छे, ने बीजो सर्व आहार गाये ग्रहण करेला घासमांथी जेम केटलोक घास पडी-जाय छे तेम तेज समये विनाश पामी जाय छे, अने आहारपणे परिणमता आहारमांनो अनंतमो भाग जीवना आस्वादनमां आवे छे, अने शेष भाग जीवने आस्वादनमां आव्या

विनाज देहने–इन्द्रियपणे परिणमी जाय छे. वळी आ आहार सचित्त–अचित्त–ने मिश्र–एम ३ प्रकारनो, तथा ओज अने लोम एम बे प्रकारनो छे, (अहिं कवलाहारने दिशिआहार साथे योग्य संबंध नहिं होवाथी कवलाहारने दिशिआहारमां गण्यो नथी, अने ए संबधि शास्त्रमां उल्लेख नथी.) पुनः आभोगिकने अनाभोगिक एम भेद पण छे, ते भेदो संबंधि विशेष वर्णन ग्रन्थान्तरथी जाणवु.

तथा प्रसंगे निराहारीपणुं जीवने क्यारे होय छे ? ते पण कहेवाय छे. त्यां परभवमां वक्रगतिए जतां बे त्रण चार ने पांच समय लागे ते वखते प्हेलो ने छेल्लो समय वर्जी मध्य समयोमां अनाहारीपणुं होय छे, माटे बे समयनी एक वक्रगतिमां अनाहारीपणुं नथी पण त्रण समयात्मक द्विवक्रगतिमां, चार समयात्मक त्रिवक्रगतिमां, ने पांच समयात्मक चतुर्वक्रगतिमां अनुक्रमे १–२–३ समय निराहार छे, ने केवलि समुद्घात वखते ३–४–५ नबरवाळा समयोमां अनाहारीपणुं छे, ने अयोगी तथा सिद्धजीवो सदाकाळ अनाहारी छे. ॥ इति किमाहारद्वारम्. ॥२०॥

॥ २१ संज्ञाद्वारम्. ॥

सं–सम्यक् प्रकारे ज्ञान–जाणवुं ते संज्ञा. ३ प्रकारनी छे, त्यां प्रथम हेतु–कारण–निमित्त एटले इष्ट अने अनिष्टनी प्राप्तिपरिहार रूपकारणना उपदेश–कथनवाळी. ते हेतूपदेशिकी संज्ञा. आ संज्ञा व्यक्त (वा बुद्धिपूर्वक–अभिसंधिज) अने अव्यक्त (वा अनभिसंधिज) एम बे प्रकारनी छे, त्यां एकेन्द्रियोने अनभिसंधिज हेतूपदेशिकीसंज्ञा छे, कारणके तेओनी आहारादिकमां प्रवृत्ति स्पष्ट

जीवोनी कंइक बुद्धिपूर्वक इष्टमां प्रवृत्ति अने अनिष्टथी निवृत्ति होवाथी ए जीवो अभिसंधिज हेतूपदेशिकी संज्ञावाळा छे, पण मनःपर्याप्तियुक्त नहिं होवाथी संज्ञीवत् अति स्पष्ट बुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति निवृत्तिवाळा नथी छतां पण हेतूपदेशिकी संज्ञावडे द्वीन्द्रियादि जीवो संज्ञी अथवा मनवाळा गणायछे, ने एकेन्द्रियो (हेतु०वडे) असंज्ञि–मनविनाना गणाय छे. परन्तु शास्त्रव्यवहारमांतो हेतूप० संज्ञावडे संज्ञी एवा द्वीन्द्रियादिकोने पण विशिष्ट मनोविज्ञानमां कारणरूप मनःपर्याप्तिना अभावे असंज्ञिज गण्या छे. पुनः ए हेतूप० संज्ञा वर्तमानकाळ विषयिक छे, पण भूत भविष्यना विचारथी विकल–(रहित) छे, ते कारणथी जेम हेतूप० संज्ञावडे संज्ञि छतां पण अल्पधनवाळो धनवान् न कहेवाय, अने अल्परूपवाळो रूपवान् न कहेवाय तेम द्वीन्द्रियादि जीवो हेतूप० संज्ञावडे अल्प विचारवाळा छतां संज्ञि न कहेवाय.

तथा मनःपर्याप्तिद्वारा मनोवर्गणा ग्रहण करी मनपणे परिणमाव्याथी विशिष्ट मनोविज्ञान लब्धिवडे अतिव्यक्त अने त्रणे काळनी विचारशक्ति ते दीर्घकालिकी संज्ञा मनःपर्याप्त जीवने एटले गर्भज पर्या० तिर्यंच गर्भज पर्या० मनुष्य सर्व देव अने सर्व नारकने होय छे. शास्त्रमां संज्ञि असंज्ञिपणानो व्यवहार आ दीर्घकालिकी संज्ञाने अगेज प्रवर्ते छे, कारणके जे जीवो दीर्घका० संज्ञावाळा होय ते संज्ञि अने दीर्घका० संज्ञा विनानां जे जीवो होय ते सर्व असंज्ञि कहेवाय छे.

तथा दृष्टि–सम्यक्दर्शनादि संबंधि वाद्–कथन तेना उपदेश–अपेक्षावडे जे संज्ञा ते दृष्टिवादोपदेश संज्ञा. अर्थात् दृष्टिवादना एटले श्रुतज्ञानना उपदेशवडे–क्षयोपशमवडे जे सम्यग्ज्ञान ते दृष्टिवादोपदेश संज्ञा. तात्पर्य ए छे के क्षयोपशमजन्य सम्यग्ज्ञान

युक्त एवो सम्यग्दृष्टिजीव दृष्टिवादोप० संज्ञावाळो गणाय छे, पण विशिष्ट श्रुतज्ञानना क्षयोपशमरहित एवा नारक-देव-मनुष्योने तिर्यंचो सम्यग्दृष्टि छतां पण दृष्टिवादसंज्ञावाळा गणाय नहिं. कारणके जो के केटलाएक देवोमां अने तीर्थंकर थनारा नारकोमां अने क्वचित् ग० तिर्यंचोमां विशिष्ट श्रुतज्ञान सद्भावे दृष्टिवादो प० संज्ञा हशे छतां ते ज्ञान विशेषतः हितमां प्रवृत्ति अने अहित-मां निवृत्तिवाळु नहिं होवाथी तेओने अहिं दृष्टिवादो० संज्ञा न गणी होय तेम संभवे छे, (केटलोक भावार्थ श्रीनंदिसूत्रमांथी कह्यो छे.)

जेने हेतूप० संज्ञा छे तेने दीर्घका० ने दृष्टिवादो० संज्ञा नथी, जेने दीर्घका० संज्ञा छे तेने हेतू० संज्ञा नथी, अने दृष्टिवादो० संज्ञा होय ने न पण होय. अने जेने दृष्टिवादो० संज्ञा छे तेने हेतू० नथी पण दीर्घ० संज्ञा अवश्य छे. श्रीसर्वज्ञने ए त्रणमांनी कोइपण संज्ञा न होय. ॥ इति संज्ञासंवेधः ॥

॥ २२ गतिद्वारम्. ॥

अमुक दंडकमांनो जीव मरण पामीने कया कया दंडकमां जाय-(उपजे) ए संबंध कहेवो ते गति. ॥ इति गतिद्वारम्. ॥

॥ २३ आगतिद्वारम्. ॥

अमुक दंडकमां कया कया दंडकना जीवो मरण पामी आ-वीने उत्पन्न थाय ए संबंध कहेवो ते आगति. ॥इत्यागतिद्वारम्.॥

अहिं गति-आगतिने प्रसंगे जीवोने परभव गमननो विधि

कहेवाय छे.–जीवो परभवमां जतां बे प्रकारनी गति करे छे, त्यां रमण समुद्घातपूर्वक उपजनार जीवनी इलिकागति होय छे, कारणके येळ जेम शरीरना अग्रभागने आगळ फेंक्या बाद शरीरना पश्चात् भागने उपाडी आगळ फेंके छे, तेम मरण समुद्घातने प्राप्त थयेलो जीव उत्पत्ति स्थाने आत्मप्रदेशो फेंक्या बाद अन्तर्मु० काळे पूर्वभवसंबंधि शरीरमांथी आत्मप्रदेशो संकोची लइ उत्पत्ति स्थाने लावी मूके छे, आ इलिकागति वा मरणसमुद्घात ऋजुगतिए अने वक्रगतिए पण होय छे, त्यां जीवनुं उत्पत्तिक्षेत्र समश्रेणिए होय त्यारे ऋजुगति थाय छे, अने विषम श्रेणिए होय त्यारे वक्रगति थाय छे, तथा दडो अथवा तोपमांथी छूटेलो गोळो जेम सर्वपिंडात्मकरूपे चाल्यो जाय छे तेम शरीरमांथी छूटेलो आत्मा पिंडितरूपे–(दीर्घ श्रेणिरूपे नहिं) परभवमां चाल्यो जाय ते कंदुक–(दडासरखी) गति कहेवाय. आ कंदुक गति प्रायः ऋजुगतिमां संभवे छे. ने वक्रगतिमां होय छे के नहिं ते श्री बहुश्रुतथी जाणवुं.

तथा मस्तक भागमांथी निकळेलो आत्मा देवलोकमां जाय, उदरथी निकळेलो आत्मा मनुष्यगतिमां जाय, पगथी निकळेलो आत्मा नरकगतिमां जाय, अने सर्वांगथी निकळेलो आत्मा मोक्षे जाय.

॥ २४ वेदद्वारम् ॥

वेद एटले नोकषायमोहनीयकर्मना उदयथी उत्पन्न थयेल विषयाभिलाष ते पुरुषवेदादि भेदे ३ प्रकारनो छे. त्यां पुरुषनो (स्त्रीप्रत्ये) विषयाभिलाष ते पुरुषवेद, स्त्रीनो (पुरुषप्रत्ये) जे विषयाभिलाष ते स्त्रीवेद, तथा नपुंसकनो (स्त्री ने पुरुष उभय प्रत्ये) विषयाभिलाष ते नपुंसकवेद कहेवाय. एमां पुरुष पणु

स्त्रीपणुं ने नपुं० पणुं निर्वृत्यादि भेदे त्रण त्रण प्रकारनुं छे, ते आ- प्रमाणे लिंग–दाढी–मूछ इत्यादि युक्त देहाकृतिवाळो निर्वृत्तिपुरुष (आकार पुरुष), योनि–स्तन इत्यादि युक्त देहाकृति वाळी निर्वृति स्त्री, अने पुरुषाकारनां केटलांक लक्षण होय ने केटलांक न होय तेमज स्त्री पणानां पण केटलांक लक्षण होय ने केटलांक लक्षण न होय ए प्रमाणे उक्त लक्षणोना भावाभाव युक्त देहाकृति वाळा जीवो निर्वृति नपुसक कहेवाय. तथा स्त्रीउपर विषयाभि- लाषी जीव वेद पुरुष, पुरुष प्रत्ये विषयाभिलाषी जीव वेद स्त्री ने उभयाभिलाषी जीव वेद नपुंसक कहेवाय. तथा पुरुष नहिं छतां जेणे पुरुषनो वेष पहेर्यो होय ते नेपथ्य पुरुष, स्त्री नहिं छतां स्त्रीनो वेष पहेर्यो होय ते नेपथ्य स्त्री, अने नपुंसक नहिं छ- तां नपुंसक नो (–हीझडा वगेरे सरखो) वेष पहेर्यो हो ते नेप- थ्य नपुंसक कहेवाय. ए प्रमाणे ९ भेद छे.

तथा पुरुषादि आकृतिनो द्रव्य वेद अने विषयाभिलापने भाववेद तरीके गणाय छे. पुनः एक जीवने एकज भवमां पुरु- षने ३ द्रव्य वेद अने ३ भाववेद थइ शके, नपुंसकने एकज भवमां नपुं ने स्त्री ए बे वेद द्रव्यने २ भाववेद होय, ने स्त्रीने आखा भ- व सुधी १ द्रव्यवेदने १ भाववेद होय ए वात द्रव्यवेदाश्रयि भाववे- द गणवानो पद्धतिए कही, अने द्रव्यवेदना आश्रय विना केवळ भाववेद गणतां स्त्री–पुरुषने नपुंसकने दरेकने ३–३ भाववेद अ- न्तर्मुहूर्त अन्तमुहूर्त्ते परावृत्ति पाम्या करे छे.

पुरुष वेद घासना अग्नि समान छे, कारणके घासनो अग्नि एकदम भडको थइ तुर्त समी जाय छे, तेम पुरुषवेद एकदम जागृत थइ स्त्रीना संगमथी तुर्त शमी जाय छे, तथा स्त्रीवेद बकरीनी लींडीयोना अग्नि सरखो छे, कारण के बकरीनी लींडीयोनो अग्नि

सळग्या बाद एकदम होलवाय नहिं तेम स्त्रीवेद पण जागृत थतां पुरुषना संगमथी पण शीघ्र उपशमे नहिं. तथा नपुंसकवेद नगर दाहना अग्नि सरखो छे, कारणके द्वारिका नगरीनो दाह जेम ६ मास सुधी शान्त न थयो तेम नपुंसकवेद संगमथी शान्त न थाय अथवा नपुंसकपणाथी संगम थइ शके नहिं ने तेथी विषयेच्छा जागृत ने जागृत रहे छे. ए नपुंसक वेदना १६ भेद छे तेनो विस्तार नवतत्व विस्तरार्थमां कह्यो छे. त्यांथी जाणवो.

अवतरण—हवे चोवीश दंडके २४ द्वार उतारतां प्रथम २४ दंडके शरीर द्वार उताराय छे.

॥ मूळ गाथा ५ मी, ॥

चउ गब्भतिरियवाउसु, मणुआणं पंच सेस ति सरीरा ।
थावरचउगे दुहओ. अंगुल असंखभागतणू ॥ ५ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

चत्वारि गर्भजतिर्यग्वायुषु, मनुष्याणां पंच शेषेषु त्रीणि शरीराणि ।
स्थावरचतुष्के द्विधा, अंगुलासंख्येयभागतनुः ॥ ५ ॥

॥ शब्दार्थ ॥

चउ—चार
गब्भतिरिय—गर्भजतिर्यंच
वाउसु—वायुकायमां (ने)
मणुआणं—मनुष्योने
पंच—पांच (शरीर)
शेष—बाकीना दंडकोमां
ति—त्रण
सरीरा—शरीर छे.
थावरचउगे—४ स्थावरमां (ने)
दुहओ—बन्ने प्रकारे
अंगुल—अंगुलनो
असंख—असंख्यातमो
भाग—भाग
तणू—शरीर छे.

गाथार्थः—गर्भजतिर्यंज अने वायुकायने ४ शरीर छे, मनुष्योने ५ शरीर छे, अने बाकीना (२२) दंडके त्रण त्रण शरीर छे. ॥ चार स्थावरनुं शरीर अंगुलनो असंख्यातमो भाग छे.

विस्तरार्थः—अहिं २४ दंडकमां प्रथम शरीर द्वार उतारतां गर्भजतिर्यंच अने वायुकायने औदा०–वै०–तै० ने कार्मण ए ४ शरीर होय छे, ए सामान्यथी कह्युं अने विशेपतः आ प्रमाणे—

एक ग० तिर्यंचने २–३–के ४ शरीर होय छे, त्यां पूर्व भवमांथी आवता ग० ति० ने रस्तामां तैजस तथा कार्मण ए बे शरीर होय, त्यार बाद उत्पत्ति स्थाने उत्पन्न थवाना प्रथम समयथीज औदा० शरीर नामनो उदय होवाथी औदा० शरीर सहित ३ शरीर होय अने कोइ लब्धिपर्याप्त गर्भज तिर्यंचे तप आदि करवाथी वै० लब्धि उत्पन्न करी होय ने वैक्रिय शरीरनी रचना करे तो ते वखते वधुमां वधु ४ मुहूर्त्त सुधी वै० शरीर सहित ४ शरीर होय, पण आहा० शरीर तो फक्त चौदपूर्वधर लब्धिवंत मुनि मात्रने ज होवाथी गर्भज ति० ने ए शरीर कोइपण काळे न होय पुनः युगलिक तिर्यंचने रस्तामां आवतां बे अने उत्पत्ति स्थाने आव्याबाद त्रण शरीर होय पण तेओने व्रत तप आदिना अभावे वै० लब्धिना अभावथी वै० शरीर न होय तथा दंडक प्रकरणमां अनधिकारी एवा संमू० तिर्यंच पंचेन्द्रियने पण रस्तामां २, अने स्वस्थाने औदा० शरीर सहित ३ शरीर होय.

तथा वायुकायमां पण सर्व जीवने चार शरीर न होय पण रस्तामां आवताने तै० का० ए बे, स्वस्थाने औदा० सहित ३, ने केटलाएक लब्धि पर्याप्त बादर वायुकानेज विना व्रतादिके पण तथा स्वभावे वैक्रिय शरीर सहित अन्तर्मु० काळ सुधी ४ शरीर होय ने त्यार बाद पुनः ३ शरीर वाळो ज होय, ने वै० ल-

ब्धि वाळा ल० पर्या० बा० सिवायना सर्व वायुकायी जीवोने रस्तामां बे अने स्वस्थाने औदा० सहित ३ शरीर ज होय,

तथा गर्भजमनुष्यमां पण रस्तामां आवनारने तै० ने कार्मण ए बे शरीर अने स्वस्थाने ३ शरीर तो दरेक गर्भज मनुष्यने अने दंडकमां अनधिकारी संमू० मनुष्यने पण होय. तथा केटलाएक गर्भज ल० पर्या० मनुष्य के जेओ ए व्रत तप आदि वडे वै० शरीर रचना वखते ४ मुहूर्त्त सुधो एकज जीव आश्रयि ४ शरीर होय अथवा जेओ ए चौदपूर्वनो अभ्यास करी आहा० लब्धि प्राप्त करी होय तेओने आहा० शरीर रचना वखते अन्तर्मु० काळ सुधी ४ शरीर एक मनुष्य आश्रयि होय छे. पण एक मनुष्य आश्रयि ५ शरीरनो संभव नथी. कारणके वै० अने आहा० शरीर समकाळे होय नहिं, माटे मनुष्यमां एक मनुष्य आश्रयि समकाळ २-३ ने ४ शरीर होय अने सर्व मनुष्य आश्रयि तथा एक मनुष्यने भिन्नकाळ आश्रयि ५ शरीर होय.

तथा देव अने नारक संबन्धि १४ दंडकने विषे एक जीव आश्रयि रस्तामां आवतां तै० ने का० ए बे, अने स्वस्थाने वै० शरीर होय छे वळी ए जीवो उत्तर वै० पण रचे छे ते पण वैक्रियज नाम वाळुं होवाथी एक जीवने समकाळे ४ शरीर न गणाय. अने ए जीवोने औदा०[1] शरीर तथा आहा० शरीर कोइपण काळे संभवतुं नथी.

तथा शेष ७ दंडकोने विषे दरेक वा सर्व जीव आश्रयि रस्तामां बे अने स्वस्थाने औदा० सहित ३ शरीर होय, इतिशरीरद्वारम्

१ देवो उत्तर वैक्रिय करती वखते सिंह-मनुष्य आदि औदा० शरीर सरखां रूप रचे छे पण ते शरीर औदारिक न जाणवां, पण वैक्रिय वर्गणाओने ज औदा० सरखी देखाववाळी करेली जाणवी.

हवे बीजुं अवगाहनाद्वार कहे छे ते आ प्रमाणे थावरच-उगे-एटले पृथ्वि-अप्-अग्नि-ने वायु ए चार स्थावर (ना दरेक भेद)नां शरीर दुहओ एटले जघन्यथी अने उत्कृष्टथी एम बन्ने प्रकारे अंगुलअसंखभागतणु एटले अंगुलना असंख्यातमा भागनुं शरीर होय. ए प्रमाणे सामान्यथी चारेनुं अंगुलनो असं०मो भाग शरीर कह्युं तोपण परस्पर नानुं मोटुं छे छतां अंगुलना असं०मा भागथी वधीने संख्या०मा भाग जेवडुं नथी, त्यां शरीरनी अवगाहनानो परस्पर तफावत आ प्रमाणे.

सूक्ष्ममां.		वादरमां.	
सू० वनस्पतिनुं	अल्प	बादरवायुनुं	अल्प
सू० वायुनुं	असं०गुण	वादरतै०नुं	असं०
सू० तैजसनुं	,,	बादरअप्०नुं	,,
सू० अप्०नुं	,,	वादरपृथ्वीनुं	,,
सू० पृथ्वीनुं	,,	वादरनिगोदनुं	,,
		वादरप्रत्ये०वन०नुं	,,

अवतरण—अहिंथी ६-७-८-९-१० गाथाओ सुधीमां दंडकमां अवगाहनाद्वार कहेवाय छे.

सव्वेसिंपि जहन्ना, साहाविय अंगुलस्सऽसंखंसो ।
उक्कोस पणसयधणु, नेरइया सत्तहत्थ सुरा ॥ ६ ॥

(संस्कृतानुवादः)

सर्वेषामपि जघन्या स्वाभाविकाऽङ्गुलस्यासंख्येयांशः ।
उत्कर्षतः पंचशतधनूंषि, नैरयिकाणां सप्तहस्तसुराः ॥ ६ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

सव्वेसि–सर्व दंडकोने.
ऽपि–पण.
जहन्ना–जघन्य (अवगाहना)
साहाविय–स्वाभाविक–(मूळ शरीरनी)
अंगुलस्स–अंगुलनो.
ऽसंखंसो–असंख्यातमो भाग
उक्कोस–उत्कृष्ट (अवगाहना).
पणसय–पांचसें.
धणू–धनुष्य.
नेरइया–नारकजीवो(नी).
सत्तहत्थ–सात हाथ.
सुरा–देवो(नी).

गाथार्थः—सर्व पण दंडकोना स्वाभाविक–(मूळ शरीरनी जघन्य (अवगाहना) अंगुलनो असंख्यातमो भाग छे; अने नारकजीवोनी उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष्य तथा देवोनी ७ हाथ प्रमाण छे. (अहिं अवगाहना एटले शरीरनी उंचाइ अथवा लंबाइ जाणवी.)

विस्तरार्थः—पूर्व गाथामां पृथ्व्यादि चार जीवोनुं जघ० अने उ० शरीर कह्युं, ने हवे आ गाथामां शेष सव्वेसिंपि–सर्व दंडकनुं मात्र जहन्ना एटले जघ० साहाविय–मूळ शरीर अंगुलस्सऽसखंसो एटले अंगुलना असंख्यातमा भागनुं छे अने उत्कृष्ट शरीर दरेक दंडकमां भिन्न भिन्न छे ते कहे छे.

नेरइया एटले नारक जीवोनुं शरीर उक्कोसा–उत्कृष्टथी पणसयधणू–५०० धनुष्य छे. अहिं धनुष्यनु प्रमाण ४ हाथनु छे. माटे नारकनु शरीर २००० हाथ एटले ०। कोश जेटलुं उंचुं छे. ए पण सामान्यथी कह्युं अने विशेषतः आ प्रमाणे—

नारकनु.	जघ० शरीर.	उ० शरीर.
रत्नप्रभामां.	३ हाथ.	७॥। ध० ६ अंगुल.
शर्कराप्रभामां.	७॥। ध० ६ अं०	१५॥ ध० १२ अं०

वालुकाप्रभामां.	१५॥ ध० १२ अं०	३१ ध०
पंकप्रभा.	३१ ध०	६२॥ ध०
धूमप्रभा.	६२॥ ध०	१२५ ध०
तमःप्रभा.	१२५ ध०	२५० ध०
तमःतमःप्रभा.	२५० ध०	५०० धनु०

सत्तहत्थसुरा—एटले देवोनुं मूळ शरीर उत्कृष्टथी ७ हाथनुं होय छे, एटलुं शरीर भवनपति–व्यन्तर ज्योतिषी–तथा सौधर्म अने इशान कल्पना दरेक देव अने देवीनुं सर्वनुं जाणवुं. एमां कोइपण देव के देवी ७ हाथथी नानां होयज नहि. त्यांथी आगळना देवोनुं शरीर आ प्रमाणे.

देवोनुं.	जघ० श०	उ० शरीर.
३–४ कल्पे.	६ हा०	७ हाथ.
५ मे कल्पे.	५ $\frac{४}{११}$ हा.	६ हाथ.
६ ठे ,,	५ हा०	५ $\frac{४}{११}$ हा०
७ मे ,,	४ $\frac{१}{११}$ हा०	५ हाथ.
८ मे ,,	४ हाथ.	४ $\frac{१}{११}$ हा०
९ मे ,,	३ $\frac{३}{११}$ हा०	४ हा०
१० मे ,,	३ $\frac{२}{११}$ हा०	३ $\frac{३}{११}$ हा०
११ मे ,,	३ $\frac{१}{११}$ हा०	३ $\frac{२}{११}$ हा०
१२ मे ,,	३ हा०	३ $\frac{१}{११}$ हा०

१ ले ग्रैवेयके.	२ ८/११ हा०	३ हा०
२ जे ,,	२ ७/११ हा०	२ ८/११ हा०
३ जे ,,	२ ६/११ हा०	२ ७/११ हा०
४ थे ,,	२ ५/११ हा०	२ ६/११ हा०
५ मे ,,	२ ४/११ हा०	२ ५/११ हा०
६ ठ्ठे ,,	२ ३/११ हा०	२ ४/११ हा०
७ मे ,,	२ २/११ हा०	२ ३/११ हा०
८ मे ,,	२ १/११ हा०	२ २/११ हा०
९ मे ,,	२ हा०	२ १/११ हा०
४ अनुत्तरे.	१ हाथ.	२ हा०
१ सर्वार्थे.	१ हाथ.	१ हाथ०

ए प्रमाणे जघ० उत्कृष्ट कह्या छतां पण सर्व देवो प्रारंभमां उपजती वखते तो अंगुलनी असंख्यातमा भागनी जघ० अवगाहनावाळा होय, पण त्यारबाद अन्तर्मु० मात्रमां वृद्धि पामीने दर्शावेली जघ० अथवा उ० अवगाहनावाळा होय. तथा नारको पण उपजती वेळाए अंगु०ना असं० भाग जेटला होइ अन्तर्मु० मात्रमां वृद्धि पामी पूर्वोक्त जघ० वा उ० अवगाहनावाळा होय.

पुनः जे स्थाने जे देवो अथवा जे नारको जेटला उंचा शरीरवाळा कह्या छे ते स्थाने उत्पन्न थयेला ते उत्पन्न थनारा सर्वदेवो-ने नारको तुल्य उंचाइवाळा होय पण कोइ एक नारक पण अधिकथा न्यून उंचाइवाळो न होय.

अवतरण—पूर्वगाथावत्.

गब्भतिरि सहस जोयण, वणस्सई अहियजोयणसहस्सं ।
नरतेइंदि तिगाऊ, बेइंदिय जोयणे बार ॥ ७ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

गर्भजतिर्यंचः सहस्रयोजनाः, वनस्पतिरधिकयोजनसहस्रः ।
नरत्रीन्द्रियास्त्रिगव्यूता, द्वीन्द्रिया योजनानि द्वादश ॥ ७ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

गब्भतिरि—गर्भजतिर्यंच.
सहस—हजार.
जोयण—योजन.
वणस्सइ—वनस्पति.
अहिय—कंइकअधिक.
जोयणसहस्सं—१००० योजन.
नर—मनुष्य.
तेइंदि—त्रीन्द्रियजीव.
ति—त्रण.
गाउ—गाउ.
बेइंदिय—द्वीन्द्रिय.
जोयणे—जोजन.
बार—बार (१२)

गाथार्थः—गर्भजतिर्यंच (नुं शरीर) १००० योजन, वनस्पति (नुं शरीर) कंइक अधिक १००० योजन, मनुष्य अने त्रीन्द्रियजीवो (नुं शरीर) ३ गाउ, अने द्वीन्द्रिय (नुं शरीर) १२ योजन छे.

विस्तरार्थः—गब्भतिरि सहसजोयण एटले " ग० तिर्यंचनुं शरीर उत्कृ०थी १००० योजन लांबु होय छे" ए १००० यो०नुं शरीर ते गर्भज मच्छरूप जळचर तिर्यंच पंचेन्द्रियनुं होय छे पण दरेक गर्भजति०नुं नहिं ते सिवायना बीजा गर्भजतिर्यंच तथा दंडकमां अनधिकारी समु० ति० पंचे०नां शरीर आ प्रमाणे छे.

तिर्य०पंचे०नुं उ० शरीर.

गर्भज जळचरनुं–१००० यो०	समु० जळ०नु–१००० यो०
गर्भज स्थळचरनुं–६ गाउ.	समु०स्थळ०–२ थी ९ गाउ
गर्भज खेचरनुं–२ थी ९ धनु०	समु०खेचर०–२ थी ९ गाउ
गर्भज उरपरिसर्पनुं–१००० यो०	समु०उरप०–२ थी ९ यो०
गर्भजभुजपरि०नुं–२ थी ९ गाउ	समु०भुजप०–२ थी ९ ध०

वणस्सइ अहियजोयणसहस्सं एटले वनस्पति १००० योजनथी कंइक अधिक होय छे. एटली मोटी अवगाहनावाळी बादर प्रत्येक वनस्पतिकाय कमळ अने लता–(वल्लि) विगेरे १००० योज०[1]उंडा समुद्रोमां अने मानसरोवरादि जळाशयोमां होय छे, अने बीजी बादर वनस्पतियोना अंग विगेरेनी अवगाहना विस्तारवाळी होवाथी अहिं लखी नथी पण ग्रन्थान्तरथी जाणवी. तथा अहिं जे कंइक अधिकता कही ते पाणीनी सपाटीथी कमळ विगेरे जेटलुं उपर वधीने आवेल होय तेटली अधिकता जाणवी. पुनः ए अवगाहना कमळादिना स्कंधनी (नाळनी) छे छे पण मूळ पत्र–पुष्पादिकनी अवगाहना नहिं, तेओनी अवगाहना शास्त्रमां जुदी जुदी कही छे ते त्यांथी जाणवी.

नर तेइंदि तिगाउ एटले मनुष्य अने त्रीन्द्रिय ३ गाउना प्रमाणवाळा छे, त्यां दरेक मनुष्य अथवा दरेक त्रीन्द्रिय ३ गाउ प्रमाणना नथी पण भिन्न भिन्न प्रमाणवाळा छे ते आ प्रमाणे—

१ समुद्रादि जळाशयोनी उंडाइ उत्सेधांगुलने हिसाबे हजार जोजनथी घणी अधिक छे, अने जीवोनी उंचाइ उत्सेधांगुलने हिसावे छे माटे उतार तथा चढाववाळा जळाशयमां ज्यां उत्सेधांगुल प्रमाणे १००० योजन उंडाइ आवे त्यांनी कमळनाळ-लतादि १००० योजनवाळां वनस्पतिरूप जाणवां, अने वधु उंडाइमां रहेलां कमळ लतादि पृथ्विकायरूप जाणवां.

मनुष्यनुं.	जघ०शरीर.	उ० शरीर.
देवकुरु अने उत्तरकुरुक्षेत्रना युगलिकनु सदाकाळ, तथा भरत ने ऐरवत क्षेत्रना युगलिकोनु अवसर्पिणीना प्हेले आरे अने उत्सर्पिणीना ६ ट्ठे आरे.	अंगुलनो असंख्यातमो भाग (अपर्याप्ता मरण पामे ते अपेक्षाए.)	३ गाउ
हरिवर्ष अने रम्यक्क्षेत्रना युगलिकोनुं सदाकाळ अने भरत –ऐरव्रतना युगलिकोनु अवस०ना वीजा आरे अने उत्स० ना पांचमे आरे.	,,	२ गाउ.
हिमवंत–हिरण्यवंतक्षेत्रना युगलिकोनुं सदाकाळ अने भरतैरव्रत्तना युगलिकोनुं अवस० ना ३ जे आरे अने उत्स०ना ना ४ थे आरे.	,,	१ गाउ.
अन्तर्द्वीपना युगलिकोनु सदाकाळ अने भरत–ऐरव्रतना युग०मनुष्योनुं अव०ना ३ जे ने उत्स० ना ४ थे आरे.	,,	८०० धनुष्य.

सर्व महाविदेहमां सदाकाळ अने भरतैर[1]वत्तमां अव० ना ३–४ ने उत्स०ना ४–३ आरे.	”	५०० धनुष्.
भरत–ऐरवतमां अव०ना ५ मे अने उत्स०ना ६ ठ्ठे आरे.	”	७ हाथ.
भरत–ऐरवतमां अव०ना ६ट्ठे अने उत्स०ना १ ले आरे.	”	२ हाथ.

तथा दंडकमां अनधिकारी संमु०मनुष्यनुं जघ० शरीर उत्पति समये अंगुलनो नानो असं०मो भाग, अने उ० शरीर अंगु०नो मोटो असं०मो भाग जाणवो कारणके ए जीवो अपर्या० अवस्थामांज मरण पामे छे. अथवा मरण पामती वखते पण अनेक जीवो आश्रयि कोइ नानी अवगाहनाए मरण पामे तो कोइ मोटी अवगाहनाए मरण पामे एम मरण वखते पण अवगाहनानी विषमतानो अपेक्षाए जघ० वा उ० शरीर संभवे छे.

तथा त्रीन्द्रिय जीवोमां पर्या० त्रीन्द्रियनीज अने तेमां पण कानखजुरा विगेरे कोइकनीज ३ गाउनी लंबाइ बहारना द्वीपसमुद्रोमां जाणवी. बीजा कीडीआदि त्रीन्द्रियोनी एवडी मोटी अवगाहना संभवे नहिं. शास्त्रमां कोइस्थाने एकला कानखजुरानो अने

[1] भरत—ऐरवतमां अव०ना ३ जा आरामां केटलांक वर्ष सुधी अने उत्स०ना ४ था आरामां केटलांक वर्ष पछी युगल्किपणुं होय ते सिवाय न होय.

कोइस्थाने कानखजुरा विगेरेनी लंबाइ ३ गाउ [1]कही छे.

वेइंदिय जोयणे बार एटले द्वीन्द्रियजीवोनी लंबाइ १२ योजन छे, त्यां पर्या० द्वीन्द्रिय अने तेमां पण शंख विगेरेनी लंबाइ १२ योजन छे पण दरेक द्वीन्द्रियनी नहिं. एवा मोटा शंख विगेरे स्वयंभूरमणादि महासमुद्रोमां पेदा थाय छे पण आ मनु० क्षेत्रमां नहिं.

अवतरण—पूर्व गाथावत् (गाथाना ३ जा चरणथी उत्तर वै० देहनी अवगाहना कहेवाय छे.)

जोयणमेगं चउरिंदि–देहमुच्चत्तणं सुए भणियं ।
वेउव्वियदेहं पुण, अंगुलसंखंसमारंभे॥ ८ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

योजनमेकं चतुरिन्द्रिय-देहोच्चत्वं श्रुते भणितं ।
वैक्रियदेहः पुनरंगुलसंख्येयांश आरंभे ॥ ८ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

जोयणं–योजन
एगं–एक
चउरिंदि–चतुरिन्द्रियना
देह–शरीरनी
उच्चत्तणं–उंचाइ
सुए–श्रुतने विषे
भणियं–कह्युं छे.
वेउव्विय–वैक्रिय (–उत्तरवैक्रिय)
देहं–शरीर
अंगुल–एक अंगुलनो
संखंसं–संख्यातमो भाग
आरंभे–प्रारंभमां

---

१. आर्यसमाज मतना आचार्य संन्यासी दयानंद सरस्वति आ स्थाने जू पण त्रीन्द्रिय होवाथी जैनोनी मश्करी करे छे के "३ गाउ जेवडी मोटी जू तो जैनोना माथामांज पडती हशे" पण कुवानो देडको समुद्रनी वात शुं जाणे ? केवळ तेमां तेओनी शास्त्रनी अनभिज्ञता-द्वेषान्धता ईर्ष्यालुता ज सूचवे छे.

गाथार्थः—चतुरिन्द्रियजीवोना शरीरनी उंचाइ सिद्धांतमां १ योजन (–४ गाउ) कही छे, अने उत्तर वैक्रिय देह प्रारंभवेळाए (वायु विना सर्वने)अंगुलनो संख्यातमो भाग होय छे.

विस्तरार्थः—चतुरिन्द्रियनु शरीर १ योजननु कह्युं त्यां पर्या० भमरा विगेरे १ योजन अवगाहना वाळा वहारना द्वीप समुद्रोमां पेदा थाय छे.

तथा उत्तरवैक्रिय शरीर प्रारंभती वेळाए अंगुलनो संख्यातमो भाग होय एम कह्युं ते वायुकाय सिवायना ग० मनु०–गर्भ० ति०–देव–अने नारकने अंगे जाणवुं, कारणके वायुकायनु शरीर अंगुलना असं० मा भागथी अधिक होतुं नथी, माटे वायुकाय जीव ज्यारे वैक्रिय प्रारंभे त्यारे ते उ० वैक्रिय शरीर अंगुलना असंख्यातमा भाग जेटलु जाणवुं. अने देव नारकनु मूळ वैक्रिय आरंभमां अंगुलनो असंख्यातमो भाग होय, तेमज आहारक देहना संबन्धमां कंइपण कह्युं नथी छतां आहा० शरीर पण प्रारंभवेळाए अंगुलनो संख्यातमो भागज संभवे, कारण के ए पण उत्तर देह छे,

अवतरण–आ गाथामां उत्तर वै० नी उत्कृष्ट अवगाहना कहेवाय छे.

देवनर अहियलक्खं, तिरियाणं नव य जोयणसयाइं।
दुगुणं तु नारयाणं, भणियं वेउव्विय सरीरं ॥ ९ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

देवनराणामधिकलक्षं तिरश्चां नव च योजनशतानि ।
द्विगुणं तु नारकाणां, भणितं वैक्रियशरीरं ॥९ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

देव–देव	सयाइं–सो
नर–मनुष्य	दुगुणं—बे गणुं

अहिय-कंइक अधिक
लक्खं-१ लाख (योजन)
तिरियाणं—तिर्यंचोनुं
नव—नव
य—वळी
जोयण—योजन
तु—वळी
नारयाणं-नारकजीवोनुं
भणियं—कह्युं छे.
वेउव्विय-उत्तरवैक्रिय
सरीरं-शरीर

गाथार्थः—देव अने मनुष्यनुं (उत्तरवैक्रियशरीर) कंइक अधिक (-४ अंगुल अधिक) १ लाख योजन, तिर्यंचोनुं ९०० योजन, अने नारकोनुं उत्तरवैक्रिय शरीर बमणुं कह्युं छे.

विस्तरार्थः—देवनर अहिय लक्खं एटले देवनुं उत्तरवै० शरीर १ लाख योजन, अने मनुष्यनुं वै० शरीर १ लाख योजनथी कंइक अधिक कह्युं छे त्यां अधिकता ४ अंगुल जेटली जाणवी कारणके [१] देव भूमिथी ४ अंगुल अधर रहे छे, पण भूमि उपर पग राखता नथी अने १ लाख योजननुं बीजुं शरीर रचे छे, अने मनुष्य तो भूमि पर उभो रही देवना शीर्षनी (मस्तकनी) सपाटीए सरखा आवी रहे तेटलुं उत्तर शरीर० रचे छे माटे मनुष्यनुं उ० वै० शरीर १ लाख योजन ने ४ अंगुल अधिक होय छे. आवडुं मोटुं उत्तर वैक्रिय शरीर पद्मचक्रवर्तिना पापी अने मुनिओने वर्षाकाळमां पण देशनिकाल थवानो हुकम फरमावनार तथा मुनिओए बहु समजाव्या छतां पण उद्धताइ दर्शावी ३ पगलां जेटलीज जमीनमां रहेवानी रजा आपनार दुष्ट नमुचिने शिक्षा करवा माटे आचार्ये पोताना बे शिष्योद्वारा मेरुपर्वतपरथी बोला

---

१ वैक्रिय रूप विकुर्वनारा देवो अच्युतकल्पसुधीना जाणवा, अने ९ ग्रैवेयक तथा ५ अनुत्तरना देवो वैक्रिय विकुर्वणा करता नथी

वेला, अने वैक्रियादि अनेक लब्धिवाळा विष्णुकुमार मुनिए रची बे पगलां जंबूद्वीपने बे छेडे मूकी त्रीजा पगलानी जमीन मागता नहिं आपनार नमुचिनी छातीपर त्रीजुं पगलु मूकी संघने उपजेलो उपद्रव शान्त करी शासन प्रभावना करी.

'तिरियाणं नव य जोयणसयाइं' एटले तिर्यंचोनुं उत्कृष्ट वै० शरीर ९०० योजन जेटलुं होय छे. अने 'दुगुणं तु नारयाणं' एटले नारकजीवोनुं उ० उत्तरवैक्रिय शरीर पोताना मूळ वैक्रिय शरीर करतां बमणुं होय छे, जेमके ७ मी नारकीना नारकनुं मूळ वै० शरीर ५०० धनु० छे, तो तेओ १००० धनुष्यनुं उ० वै० शरीर रची शके छे,

तथा वायुकायना उ० उत्तर वै० शरीरनी अवगाहना अहिं कही नथी तोपण अंगु० ना असं० मा भाग जेटली जाणवी. ए प्रमाणे 'भणियं वेउव्विय सरीरं'—उत्तर वैक्रिय शरीरनुं प्रमाण कहुं

अहिं उत्तरवै० शरीर रचवानुं प्रयोजन आ प्रमाणे—देवो तीर्थंकर भगवानना कल्याणक आदि वखते मनुष्य क्षेत्रमां आववाने, परजीवना उपकार माटे अथवा अपकार माटे, स्वऋद्धिदर्शनार्थे, विषय सेवनार्थे इत्यादि अनेक कारणे वै० शरीर रचे छे. तथा मनुष्यो उपकार अने अपकार करवादि अनेक कारणे. नारको फक्त बीजा नारकने दुःख देवाने कुंथु आदि रूप विकुर्वे छे, वायुकाय स्वभावथी विकुर्वे छे, अने तिर्यंच पंचे० ने वै० शरीर रचवानुं पण तथाविध विशिष्ट कारण समजवुं

अवतरणः—आ गाथामां उत्तर वैक्रिय शरीर केटला काळ सुधी टके ? ते कहेवाय छे.

॥ मूळ गाथा १० मी. ॥

अंतमुहुत्तं निरए-मुहुत्त चत्तारि तिरिय मणुएसु ।
देवेसु अद्धमासो, उक्कोस विउव्वणाकालो ॥१०॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

अन्तर्मुहूर्तं नैरयिके, मुहूर्त्ताश्चत्वारि तिर्यग्मनुजेषु ।
देवेष्वर्धमास, उत्कृष्टो विकुर्वणाकालः ॥ १० ॥

॥ शब्दार्थः ॥

अंतमुहुत्तं-अंतर्मुहूर्त्त
निरए-नारकजीवोमां
मुहुत्त-मुहूर्त्त (२ घडी)
चत्तारि-चार
तिरिय-तिर्यंच (अने)
मणुएसु-मनुष्योमां
देवेसु-देवोमां
अद्धमासो अर्धमास
उक्कोस-उत्कृष्ट
विउव्वणा-विकुर्वणानो(-उत्तर वै० शरीरनो)
कालो-काळ

गाथार्थः—नारकजीवोमां (वै० श० उ० नो काळ) अन्तर्मु०, तिर्यंच अने मनुष्योमां ४ मुहूर्त्त (-८ घडी), अने देवोमां ०॥ मास उत्तर वै० शरीरनो उत्कृष्ट काळ कह्यो छे.

विस्तरार्थः—सुगम छे. विशेष ए के देवकृत वै० शरीरनो काळ ६ मास पण कह्यो छे. कारण के परमाधामीकृत पर्वतनी ६ मास स्थिति श्री सूयगडांग सूत्रमां कही छे.

अवतरण—आ गाथामां २४ दण्डके संघयण कहे छे.

॥ मूळ गाथा ११ मी. ॥

थावरसुरनेरइया, अस्संघयणा य विगल छेवट्ठा ।
संघयणछगं गब्भय, नरतिरिएसु वि मुणेयव्वं ॥११॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

स्थावरसुरनैरयिका असंहननाश्च विकलाः सेवार्त्ताः ।
संहननषट्कं गर्भजनरतिरश्चोऽपि ज्ञातव्यं ॥ ११ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

थावर–स्थावर
सुर–देव
नेरइया–नारक
असंघयणा–संघयण रहित
य–अने
विगल–विकलेन्द्रियो
छेवट्ठा–सेवार्त्त संघयण वाळा
संघयण–संघयण
छगं–छ
गप्भय–गर्भज
नर–मनुष्य
तिरिएसु–तिर्यंचमां
मुणेयव्वं–जाणवां

गाथार्थः—स्थावर–देव–अने नारको संघयण रहित छे, अने विकलेन्द्रियो सेवार्त्त संघयणवाळा छे, अने गर्भज मनुष्य तथा तिर्यंचोने छ ए संघयण जाणवां

विस्तरार्थः—हवे आ गाथामां २४ दंडके संघयणद्वार कहेवाय छे.

थावरसुरनेरइया असंघयणा—स्थावरना ५ दंडक, देवना १३ दंडक, अने नारकनो १ दंडक ए प्रमाणे १९ दंडक संघयण विनाना छे, कारणके देवोने नारकोने अने स्थावरोने हाडकां होय नही, अने हाडकां न होय तो हाडकांनी रचनारूप संघयण पण क्यांथी होय?

य विगलछेवट्ठा—वळी विकलेन्द्रियो छेदस्पृष्ठ संघयणवाळा होय छे, अहिं द्वीन्द्रिय–त्रीन्द्रिय–ने चतुरिन्द्रिय जीवोमां केटलाएकने हाडकांनो संभव छे, जेमके शंख–कोडा चंदनक इत्यादि द्वीन्द्रियोनुं शरीर हाड अने मांसयुक्त छे, शेष अळसीयां वि-

---

१ श्री जीवाभिगममां देवोने पण वज्रर्षभसंघयणवाळा, अने एकेन्द्रियोने छेदस्पृष्ट संघयणवाळा कह्या छे ते शक्तिनी अपेक्षाए पण हाड रचनानी अपेक्षाए नहिं. अने त्यांज नारकने असंघयणी कह्या छे.

गेरे द्वीन्द्रियोनुं शरीर हाड विनानुं छे, तथा केटलाएक त्रीन्द्रियोने तथा केटलाएक चतुरिन्द्रिय जीवोने हाडनो संभव छे, पण स्पष्ट रीते ओळखातां नहिं होवाथी नाम आपवां अशक्य छे, माटे ए प्रमाणे जे जे विकलेन्द्रियोने हाड होय ते ते विकलेन्द्रियोने संघयण होय, ने बीजाने न होय, तेमां पण ए जीवोने मात्र छेदस्पृष्ट संघयणज होय छे, कारणके तेओना हाडना बे छेडा संधिस्थाने मळेला होय छे, अथवा जेओने एकज आखुं हाडकुं पण ककडा न होय तो पण (सेवा वडे करीने पीडायलुं ए अर्थने अनुसारे) सेवार्त्त संघयण ज होय (अहिं छेदस्पृष्ट अने सेवार्त्त बन्ने नाम छेवट्ठा संघयणनां छे.)

संघयण छगं गब्भयनरतिरिएसु वि मुणेयव्वं—गर्भज मनुष्यने अने तिर्यंचोने ६ संघयण होय परन्तु एक जीवने एकज संघयण होय छे. माटे अनेक गर्भज मनुष्य वा तिर्यंचनी अपेक्षाए ६ संघयण होइ शके. अहिं कोइपण गर्भ० मनुष्य वा कोइ पण गर्भज तिर्यंच संघयण विनानो होय नहिं,

तथा दंडकमां अनधिकारी सम्मू० तिर्यंच अने सम्मू० मनुष्यने दरेकने सेवार्त्त संघयण श्री जीवाभिगमजीमां कह्युं छे.

—(०)—

अवतरण—आ गाथाना प्हेला चरणमां सर्व दंडकोने विषे संज्ञा कहेवाय छे, अने शेष त्रण चरणमां संस्थान कहेवाय छे.

॥ मूळ गाथा १२ मी ॥

सव्वेसिं चउ दह वा, सन्ना सव्वे सुरा य चउरंसा ।
नरतिरि छ स्संठाणा, हुंडा विगलिंदि नेरइया ॥१२॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

सर्वेषां चत्वारि दश वा संज्ञाः सर्वे सुराश्च चतुरस्त्राः (रंशाः)
नरतिर्यंचः षट् संस्थाना हुंडकाः विकलेन्द्रियनैरयिकाः॥॥१२॥

॥ शब्दार्थः ॥

सव्वेसिं–सर्वे दंडकोने	चउरंसा–समचतुरस्र संस्थानवाळा
चउ–चार	नर–मनुष्य
दह–दश	तिरि–तिर्यंच
वा—अथवा	छ–छ (६)
सन्ना—संज्ञाओ	संठाणा–संस्थानवाळा
सव्वे–सर्व	हुंडा–हुंडक संस्थानवाळा
सुरा–देव	विगलिंदि–विकलेन्द्रिय
य—अने	नेरइया–नारको

गाथार्थः—सर्वे दंडकने (–जीवोने) ४ अथवा १० संज्ञा होय छे, अने सर्व देवो समचतुरस्र संस्थानवाळा छे. मनुष्य अने तिर्यंचो ६ संस्थान वाळा, अने विकलेन्द्रिय तथा नारको हुंडक संस्थान वाळा छे.

विस्तरार्थः—आ गाथामां संज्ञाद्वार तथा संस्थान द्वार कहेवाय छे.

सव्वेसिं चउ दह वा सन्ना—सर्वे दंडकोमां चार अथवा १० संज्ञा होय छे. अहिं गर्भज मनुष्य सिवाय २३ दंडकमां आवेला सर्व संसारी जीव मात्रने ४ के १० संज्ञा होय छे, पण गर्भज मनुष्यमां दरेक गर्भज मनुष्यने ज्यां सुधी मोहनीय कर्मनो उदय छे, त्यां सुधी सर्व दशे संज्ञाओ होय, अने मोहनीयनो उपशम वा क्षय थतां वीतरागी जीवने फक्त वेदनीयजन्य, अथवा सर्वज्ञने आहारसंज्ञा पण न होय आहारसंज्ञा होय.

सव्वे सुरा य चउरंसा—सर्वे देवो समचतुरस्र संस्थानवाळा छे, ए मूळ वैक्रिय शरीरनी अपेक्षाए तेमज उत्तर वैक्रियनी अपेक्षाए पण समचतु० कर्मनो उदय होवाथी अन्य संस्थानवाळे

शरीर विकुर्व्यां छतां ते देवने समचतु० संस्थानज कहेवाय, अथवा देखवानी अपेक्षाए उत्तर वैक्रिय देव ६ संस्थानी गणाय पण तेवा व्यपदेशनी प्राधान्यता नथी.

नरतिरिय छसंठाणा—गर्भज मनुष्य अने गर्भज तिर्यंच ६ ए संस्थान वाळा होय, एम सामान्यथी कह्युं अने विशेषतः आ प्रमाणे—सर्व युगलिक मनुष्यो युगलिक तिर्यंचो सर्व तीर्थंकर-सर्व चक्रवर्ति-सर्व वासुदेव-सर्व वळदेव-सर्वप्रतिवासुदेव-इत्यादि उत्तम पुरुषो समचतुरस्र संस्थान वाळा छे, सामान्य केवलि विगेरे तथा सामान्य मनुष्यो ६ ए संस्थानवाळा छे. तेम युगलिक सिवा-यना तिर्यंच पंचेन्द्रियो पण ६ ए संस्थानवाळा छे, अहिं एक जीवने एक संस्थान भवपर्यन्त होय.

तथा दंडकमां अनधिकारी सम्मू० [1] तिर्यंच अने सम्मू० मनुष्यने श्री जीवाभिगममां हुंडक संस्थानी कह्या छे,

हुंडा विगलेंदिनेरइया—सर्व विकलेन्द्रियो अने सर्व नारको हुंडक संस्थान वाळा छे. एमां नारकोनुं हुंडकसंस्थान तो पांखो उखेडी लीधेला पक्षी सरखुं अत्यंत कुत्सित कह्युं छे,

---

अवतरण—आ गाथामां पण पृथ्व्यादि पांच स्थावरनां सं-स्थान कहेवाय छे.

॥ मूळ गाथा १५ मी. ॥

नाणाविह धय सूई, बुब्बुय वण वाउ तेउ अपकाया ।
पुढवी मसूर चंदा-कारा संठाणओ भणिया ॥ १३ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

---

१ सम्मू० तिर्यंचने छठ्ठा कर्मग्रंथना अभिप्रायथी श्री बृहत्संग्रहणीवृत्तिमां ६ संस्थानी कह्या छे—इति द्रव्यलोकः

नानाविधध्वजसूचीबुद्बुदाश्च वनवायुतेजसप्कायिकाः ।
पृथ्वीमसूरचंद्राकाराः संस्थानतो भणिताः ॥ १३ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

नाणाविह–नाना प्रकारनुं (–अनेकप्रकारनुं)
धय–ध्वजना आकारनुं
सूई–सोयना आकारनुं
बुब्बुय–परपोटाना आकारनुं
वण–वनस्पतिकायनुं
वाउ–वायुकायनुं
तेउ–अग्निकायनुं
अपकाया–अपकायनुं
पुढवी–पृथ्विकाय
मसूर–मसूरनी दाळ
चंदाकारा–अर्धचंद्रना आकार वाळी
संठाणओ–संस्थानथी (–आकारथी)
भणिया—कही छे.

गाथार्थः—वनस्पति कायनुं (संस्थान) अनेक प्रकारनुं, वायुकायनु ध्वजाने आकारे, अग्निकाय सोयने आकारे, अपकाय पाणीना परपोटाने आकारे, अने पृथ्विकाय आकार वडे मसूरनी दाळ अथवा अर्धचंद्रना आकारे कहेली छे.

विस्तरार्थः—आ गाथामां पृथ्विकायादि ५ स्थावरोनुं संस्थान कहे छे ते आ प्रमाणे—

वण वाउ तेउ अपकाया—वनस्पति–वायुकाय–अग्निकाय –ने जळकायनुं संस्थान अनुक्रमे नाणाविह धय सूइ बुब्बुय–अनेक प्रकारनुं–ध्वजा सरखुं, सोय सरखुं, ने परपोटा सरखुं छे, अर्थात् वनस्पतिनुं शरीर अनित्थंस्थ (–अमुक प्रकारनु छे एम नहि माटे अनियत) आकारवाळुं श्री तत्त्वार्थवृत्तिमां कहेल छे. कारण के कोइ वनस्पति केवा आकारनी ने कोइ वनस्पति केवा आकारनी होय छे माटे वनस्पतिनुं संस्थान अनेक आकारनुं कहेलु छे. तथा वायुनुं संस्थान एटले वायुकायी एक जीवना औ-

दा० शरीरनो आकार ध्वजा-पताका सरखो छे, अने उत्तरवैक्रिय शरीर रचे ते पण मूळ शरीरना आकारेज (एटले पताकाने आकारेज) रचे छे, तथा अग्निकायी एक जीवना औदा० शरीरनो आकार सोय सरखो छे, अने जळकायी एक जीवना औदा० शरीरनो आकार परपोटा सरखो अर्ध वर्तुल छे.

पुढवीमसूरचंदाकारा संठाणओ भणिया—आकारवडे पृथ्वी मसूर अने चंद्र आकारनी कही छे. अर्थात् पृथ्विकायी एक जीवना औदारिक एक शरीरनो आकार मसूरनी दाळ अथवा अर्धचंद्रना आकार वाळो छे. ए प्रमाणे शास्त्रमां जे संस्थानो कह्यां छे, ते एकेक शरीरने आश्रयि जाणवां, अने ते एकेक शरीर दृष्टिगोचर नहिं होवाथी ते संस्थानो पण दृष्टिगोचर थतां नथी, फक्त वनस्पति जीव महाकायावाळो होवाथी तेनुं अनेकविध संस्थान तो प्रत्यक्ष छे.

पुनः ए संस्थानो बादरस्थावरनी अपेक्षाए छे, अने सूक्ष्म जीवोमां सूक्ष्म वनस्पतिनुं संस्थान स्तिबुक आकारनुं एटले प्रायः घन गोळाकार छे. बीजा सूक्ष्मजीवोनो आकार बादरवत् छे के घन गोळाकार छे ते मारा जाणवामां नथी इति संस्थानद्वारम्

अवतरण—आ गाथाना प्हेला चरणमां सर्व दंडकने कषाय केटला होय ? ते, अने शेष त्रण चरणमां कया दंडके कइ लेश्या होय ? ते कहेवाय छे.

॥ मूळ गाथा १४ मी. ॥

सव्वे वि चउकसाया, लेस छगं गब्भतिरियमणुएसु ।
नारय तेऊ वाऊ, विगला वेमाणि य ति लेसा ॥१४॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

सर्वेऽपि चतुष्कषाया लेश्याषट्कं गर्भजतिर्यग्मनुजयोः ।
नारकतेजोवायुविकला वैमानिकाश्च त्रिलेश्याः ॥ १४ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

सव्वे–सर्व
ऽवि–पण
चउ–चार
कसाया–कषायवाळा
लेस–लेश्या
छगं–६ (छ)
गब्भतिरिय–गर्भजतिर्यंच
मणुएसु–मनुष्योमां

नारय—नारक
तेऊ—अग्निकाय
वाऊ—वायुकाय
विगला—विकलेन्द्रियो
वेमाणिय–वैमानिकदेवो
ति—त्रण
लेसा—लेश्यावाळा

गाथार्थः—सर्वे जीवो चारे कषायवाळा छे. गर्भज तिर्यंच अने मनुष्योमां ६ लेश्या, अने नारक–अग्निकाय–वायुकाय–विकलेन्द्रिय–तथा वैमानिक देवोने ३ लेश्या छे.

विस्तरार्थः—हवे आ गाथामां कषाय तथा लेश्याद्वार कहे छे.

सव्वेवि चउकसाया—सर्वे दंडको चार कषायवाळा छे. त्यां साते नारकना नारकोने एक बीजापर वैरभाव होवाथी क्रोधवाळा छे, तेमज मान–माया–अने लोभ कषायी पण छे तथा देवोमां पण परस्पर वैरभाव छे, एक बीजानी साथे युद्ध करे छे, कोइ कोइनी देवांगनाओ उपाडी जाय छे, इन्द्रो परस्पर विमानोना भाग माटे युद्ध करे छे, एक बीजानी प्रभुता सहन करता नथी, माटे देवमां पण चारे कषाय रहेला छे, तेमां ९ ग्रैवेयक अने ते करतां पण ५ अनुत्तरवासी देवोनो कषाय अतिमंद छे, त्यां परस्पर युद्ध–लडाइ–झगडा–इर्ष्या–अभिमान छे नहिं, परन्तु अ-

ल्प कषाय छे, पुनः अनुत्तरविमानवासी देवो अति वैराग्यवान, देवलोकने केदखाना तुल्य समजी मनुष्यमां आवी मोक्ष जवानी आकांक्षा वाळा, अने सदाकाळ द्रव्यानुयोगना चिंतवनमां अनुरक्त छे, तथा अति मंदकषायी छे, तथा गर्भज तिर्यंचोने तो कषाय प्रत्यक्ष देखीए छीए, तथा गर्भज मनुष्योमां वीतराग सिवायना सर्व कषायवाळा छे, परन्तु युगलिक तिर्यंचो बहु अल्प कषायवाळा छे, तथा उत्तरोत्तर गुणवृद्धिने प्राप्त थयेला एवा अवीतरागी मुनिमहात्माओ पण अल्पकषायवाळा छे. युगलिक तिर्यंचोमां सिंहादि हिंसक प्राणीओ पण अति दयार्द्र चित्तथी मृगनां बच्चांनी साथे वात्सल्य भाववाळा छे, पोतानां मात पिता साथे पण अल्प राग धारण करनार छे तो युगलिक मनुष्योनी तो वातज शी ? तथा स्थावरो अने विकलेन्द्रियो पण अस्पष्ट अथवा स्पष्ट कषायवाळा छे. तेमज सम्मू० तिर्यंच अने सम्मू० मनुष्यो पण चारे कषायवाळा छे. ॥ इति कषायद्वारम् ॥

लेसछगं गब्भतिरियमणुएसु—गर्भजतिर्यंच अने मनुष्य ए बे दंडकमां ६ ए लेश्या होय छे, त्यां एक ति० वा मनु० ने अन्तर्मु०[1] सुधी एकज लेश्या होय पण एक जीवने समकाळे बे लेश्या न होय, तथा मनुष्यमां अप्रमत्तने ३ शुभ लेश्या, अने श्रेणिगततथा सर्वज्ञने केवळ शुक्ल लेश्या छे.

नारय तेऊवाऊ विगला वेमाणिय तिलेसा—नारक—अग्नि—वायु—विकले०—वैमानिक—मां त्रण लेश्या छे एम सामान्यथी कह्युं अने विशेषतः आ प्रमाणे—

---

१ सर्वज्ञने शुक्ल लेश्या देशून पूर्वक्रोड वर्ष सुधी होय छे माटे ते सिवायना शेष काळमां सर्व तिर्यंच मनुष्योने माटे एज नियम छे.

रत्नप्रभा ने शर्करापभामां सर्वनारकोने कापोतलेश्या छे, अने वालुकाप्रभामां पल्योपमना असंख्यातमा भाग अधिक ३ पल्योपमना आयुष्यवाळा सुधीना नारकोने कापोतलेश्या छे, ने तेथी उपरांत आयुष्यवाळाने नीललेश्या छे, तथा पंकप्रभामां सर्व नारकने नील लेश्या छे, अने धूमप्रभामां पल्यो० ना असं० मा भाग अधिक १० सागरोपमना उत्कृष्ट आयुष्यसुधीना नारकोने नीललेश्या छे, अने तेथी उपरांत आयुष्यवाळा सर्वनारकोने नीललेश्या छे, अने तेथी उपरांत आयुष्यवाळा सर्व नारकोने कृष्णलेश्या छे, तथा छट्ठी अने सातमी नरकमां सर्वने कृष्णलेश्या छे. अहिं प्रथम पृथ्विथी बीजी पृथ्विमां अधिक मलिन लेश्या यावत् सातमी सुधी अधिक अधिकतर मलिन लेश्या जाणवी. ए लेश्याओ आयुष्यपर्यन्त अवस्थित जाणवी.

अग्नि–वायु–अने विकलेन्द्रियने प्रथमनी त्रण अशुभ कृष्ण–नील–ने कापोत लेश्या छे. पण एमांना एक जीवने एक अन्तर्मु० सुधी एकज लेश्या होय छे.

वैमानिक देवोमां—१–२ कल्पे तेजो लेश्या, ३–४–५ कल्पे पद्म लेश्या अने त्यार पछी ६ ट्ठा कल्पथी सर्वार्थ सुधी सर्वत्र सर्व देवोने केवल शुक्ल लेश्या छे, १ ला कल्पथी उपर उपरना स्वर्गोमां अनुक्रमे अधिक अधिकतर विशुद्ध लेश्या होय छे, अने ए वैमानिकनी लेश्याओ स्व स्व आयुष्य पर्यन्त अवस्थित छे.



अवतरण—आ गाथाना पूर्वार्धमां लेश्या अने उत्तरार्धमां (त्रीजा चरणमां) इन्द्रियद्वार अने (चोथाचरणथी) समुद्घातद्वार कहेवाय छे.

॥ मूळ गाथा १९ मी. ॥

जोइसिय तेउलेसा, सेसा सव्वे वि हुंति चउलेसा ।
इंदियदारं सुगमं, मणुआणं सत्त समुग्घायो ॥१५॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

ज्योतिष्कास्तेजोलेश्याकाः, शेषाःसर्वेऽपि भवंति चतुर्लेश्याकाः।
इन्द्रियद्वारं सुगम्यं, मनुजानां सप्त समुद्घाताः ॥ १५ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

जोइसिय—ज्योतिषीदेवो
तेउलेसा—तेजोलेश्यावाळा
सेसा—बाकीना
सव्वे वि—सर्वे पण दंडको
हुंति—छे
चउलेसा—चार लेश्यावाळा
इंदियदारं—इन्द्रियद्वार
सुगमं—सुगम छे
मणुआणं—मनुष्योने
सत्त—सात
समुग्घाया—समुद्घात छे

गाथार्थः—ज्योतिषीदेवो तेजोलेश्यावाळा छे, अने बाकीना सर्वे दंडक ४ लेश्यावाळा छे. इन्द्रियद्वार सुगम छे. मनुष्यने सात समुद्घात छे.

विस्तरार्थः—ज्योतिषीदेवो सर्वे तेजोलेश्यावाळा छे, अने शेष पृथ्वी-अप्-वनस्पति-१० भुवनपति ने व्यन्तर ए १४ दंडकमां चार चार लेश्या छे, एम सामान्यथी कह्युं, अने विशेषतः आ प्रमाणे—

पृथ्वी ने जळ-ए बे बादरमां ज प्रथमनी चार लेश्या छे, ने सूक्ष्मपृथ्वी अने जळमां प्रथमनी त्रण ज लेश्या छे, तथा वनस्पतिमां बादरपर्याप्त प्रत्येक वनस्पतिमां ज ४ लेश्या छे, ने बीजी सर्व वनस्पतिमां ३ लेश्या छे. तेमां पण दरेक बादर पृथ्व्यादिने ४ ले-

श्या नहिं पण स्वाभाविक लेश्या त्रण ज छे, परन्तु तेजोलेश्या ए मरणपामेलो इशानसुधीमांनो कोइ देव बादर पृथ्वीपणे बादर जळ पणे अथवा बादर प्रत्येक वनस्पति पणे उत्पन्न थाय तो उत्पन्न थती वखते ज अपर्याप्त अवस्थामां अन्तर्मु० सुधी ते पृथ्व्यादिने तेजोलेश्या होय छे, ने त्यारबाद ते जीवने आखाभव सुधी ३ लेश्याओ ज जुदे जुदे अन्तर्मुहूर्त्ते प्राप्त थाय छे, परन्तु तेजोलेश्या कदी पण प्राप्त थती नथी. अने शेष सूक्ष्म पृथ्व्यादि भेदोमां देवनो जीव आवी शकतो नथी माटे तेओने चोथी तेजो लेश्यानो कदी पण संभव नथी.

तथा १० भुवनपतिमां असुरकुमार निकायना जे १५ परमाधार्मिक देवो छे तेओने फक्त कृष्णलेश्या छे, ने बाकीना असुर कुमारनिकायी देवोमां केटलाएक देव कृष्णलेश्यावाळा, केटलाएक नीललेश्यावाळा—केटलाएक कापोतवाळा ने केटलाएक तेजोलेश्यावाळा पण छे, ए रीते चार प्रकारना असुरकुमार निकायी देवो छे. पण एक देवने जुदे जुदे वखते चारे लेश्या छे एम नहिं, कारणके देवोनी लेश्या अवस्थित छे. तथा जेम असुरकुमार निकायी देवो ४ लेश्यावाळा कह्या तेवी ज रीते शेष ९ भुवनपति अने व्यन्तरनी पण सर्व (१६) निकायोमां चार चार लेश्या जाणवी.

तथा दंडकमां अनधिकारी सम्मू० तिर्यंच अने सम्मू० मनुष्यने पण प्रथमनी ३ लेश्याओ जाणवी ॥ इति लेश्याद्वारम् ॥

हवे इन्द्रियद्वारने दंडकमां अवतारतां ग्रन्थकर्त्ता कहे छे के इंदियदारं सुगमं—इन्द्रियद्वार सुगम छे माटे तेनुं विवेचन करातुं नथी, छतां विशेष समज आ प्रमाणे—

नरकनो १—भुवनपतिना १०—गर्भजतिर्यंच १—गर्भजमनुष्य १—व्यन्तर—ज्योतिषी—ने वैमानिक ए १६ दंडकमां सर्व जीवने ५

इन्द्रियो छे, पृथ्विकायादि ५ स्थावरने केवळ स्पर्श इन्द्रिय छे, द्वीन्द्रियने स्पर्श-तथा रसनेन्द्रिय, त्रीन्द्रियने स्पर्शन-रसना-घ्राणइन्द्रिय, ने चतुरिन्द्रियने श्रोत्रेन्द्रिय सिवायनी ४ इन्द्रियो छे. ए संख्या द्रव्यइन्द्रियोनी अपेक्षाए जाणवी. अन्यथा लब्धिरूप भावइन्द्रिय तो दरेक जीवमात्रने पांच पांच छे. सर्वज्ञ सिवायना सर्व जीवोने इन्द्रियद्वारा तथा मनद्वारा ज्ञान थइ शके छे, ने सर्वज्ञ भगवानने इन्द्रियो छे, पण ज्ञानप्राप्तिमां कारण पणे प्रवर्तती नथी, कारणके ऐन्द्रियज्ञान अन्तर्मुहूर्त्त काळे थाय छे, ने सर्वज्ञने तो एकज समयमां सर्वज्ञान थाय छे, माटे ज श्री सर्वज्ञने १० प्राणमांथी ५ प्राण गणाय. पुनः दरेक जीवने इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण कर्या वाद इन्द्रियद्वारा ज्ञानप्राप्ति होइ शके. ॥ इति इंद्रियद्वारं॥

हवे दरेक दंडके समुद्घातद्वार अवताराय छे, त्यां प्रथम **मणुयाणं सत्त समुग्घाया**—मनुष्योने ७ समुद्घात होय, तेमां वेदनाकषाय ने मरण ए ३ समु० सर्व मनुष्यने होय, वै० समु० वै० लब्धिवाळा कोइक गर्भज मनुष्यने, तैजस समु० पण तैजसलब्धिवाळा कोइक मनुष्यने, आहा० समु० कोइक चौद पूर्वधर मुनिने अने केवलिसमुद्घात केटलाएक केवलिभगवानने होय पण सर्व केवलिने नहिं, कारणके अन्तर्मु० थी ६ मास सुधीनुं आयुष्य शेष रहेतां केवळज्ञान पामेला जीवो निश्चय समुद्घात करे अने बीजा ६ मासथी समयादि अधिक आयुष्य बाकी रहेतां केवळज्ञान पामेला जीवो समुद्घात करे अथवा न पण करे एम (श्री आव० वृत्तिमां) कह्युं छे. अथवा दरेक केवलिने वेदनीयादि ३ अघाति कर्मनी स्थिति आयुष्य करतां अधिकज होय एवो नियम नहिं होवाथी पण कोइ केवली समु०

करे ने कोइ न [1] करे.

—(०)—

अवतरण—आ गाथामां ७ समुद्घातनां नाम कहे छे.

॥ मूळ गाथा १६ मी ॥

वेयण कसाय मरणे, वेउव्विय तेयए य आहारे ।
केवलि य समुग्घाया, सत्त इमे हुंति सन्नीणं ॥१६॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

वेदना कषायो मरणं, वैक्रियस्तैजसश्चाहारकः ।
केवलिश्च (कैवलिकः) समुद्घाताः, सप्तैते भवंति संज्ञिनाम्

॥ शब्दार्थः ॥

वेयण—वेदना समुद्घात
कसाय—कषाय समु०
मरणे—मरण समु०
वेउव्विय—वैक्रियसमु०
तेयए—तैजससमु०
य—अने
आहारे—आहारक समु०
केवलि (य)—केवलसमु० (केवलिक समु०)
समुग्घाय—समुद्घात
सत्त—सात
इमे—ए पूर्वोक्त
हुंति—छे
सन्नीणं—संज्ञीजीवोने

---

१. गुणस्थान प्रत्ये विचारतां मिथ्यात्वे वे०-क०—म०—वै०—ने तै०-ए पांच समु० छे. तथा २-४-ने ५ गुणस्थाने पण एज पांच समु० छे. ३ जे मरण-वै० मिश्रयोग ने अति संक्लेशने अभावे मरण वै० तै ए ३ समु० सिवाय मात्र वेदना-ने कषाय समु० छे. ६-७-८—९ १०—११ मे मरण समु०. अहि मतांतरे ६ थी ११ सुधीमां मरण छे पण मरण समु० नहि १२—१४ मे समु० नथी. ने १३ मे केवलि समु० एकज छे

गाथार्थः—वेदना-कषाय-मरण-वैक्रिय-तैजस-आहारक-अने कैवलिक ए ७ समुद्घात संज्ञिजीवोने छे, (—संज्ञि मनुष्योने छे.)

विस्तरार्थः—द्वारवर्णनमां जुओ.

अवतरण—आ गाथामां कया दंडके केटली समुद्घात होय! ते कहे छे.

॥ मूळ गाथा १७ मी. ॥

एगिंदियाण केवल, तेऊ आहारगविणा उ चत्तारि।
ते वेउव्विय वज्जा, विगला सन्नीण ते चेव ॥ १७ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

एकेन्द्रियाणां केवलतैजसाहारकान् विना तु चत्वारि।
ते वैक्रियवर्जा विकलाः, संज्ञिनां ते चैव ॥ १७ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

एगिंदियाण—एकेन्द्रियजीवोने	ते—ते (४ समु०) मांथी
केवल—केवल समुद्घात	वेउव्विय—वैक्रिय समु०
तेऊ—तैजस समु०	वज्जा—रहित
आहारग—आहारकसमु०	विगला—विकलेन्द्रियोने
विणा—विना	सन्नीण—संज्ञिजीवोने
उ—वळी—अने	ते—ते [साते समु०]
चत्तारि—चार	चेव—निश्चय

गाथार्थः—एकेन्द्रिय जीवोने केवलि-तैजस-आहारक सिवायनी ४ समुद्घात छे, विकलेन्द्रियो वैक्रिय समु० सिवाय ते (चार समु० मांथी त्रण) समुद्घातवाळा छे. अने संज्ञिजीवोने (मनुष्यनी अपेक्षाये) **निश्चय ते सर्व (साते) समुद्घातो छे.**

विस्तरार्थः—एगिंदियाण इत्यादि—एकेन्द्रिय जीवोने केवलि—तैजस—ने आहारक सिवायनी ४ समुद्० होय, तेमां पण त्रसनाडीमां रहेला पृथ्वी—अप्—अग्नि—ने वनस्पतिना सर्व भेदोमां दरेक जीवने ३ समुद्घात प्रथमनी होय, अने फक्त केटलाएक (—संख्यातमा भागना) बादर लब्धिपर्याप्त वायुकायने ज वैक्रियसहित ४ समु० होय, ने शेष वायुना सर्वभेदोमां दरेक जीवने ३–३ समु० होय. तथा त्रस नाडी बहार लोकना निष्कुटमां रहेला पांचे एकेंद्रियोने वेदनासमुद्घात होय नहि, तेमज कषायसमुद्घात पण एकेन्द्रियोने पूर्वभवानुवृत्तिए छे, पण त्रस जीवोनी पेठे अत्यंत तीव्राध्यवसायनो अभाव होवाथी कषाय समुद्घात प्रायः मनायलो छे. ने मरणसमुद्घात पण दरेकने होय एवो नियम नथी. पण दरेक दंडकमांना केटलाएक जीवोनेज होय छे 'ते वेउव्वियवज्जा' इत्यादि-ते एटले एकेन्द्रिय संबंधि ४ समु० मांथी वैक्रिय समु० सिवायना ३ समु० विकले० ने होय छे, अनेसंज्ञि जीवोने आहारक शरीरि—केवली आदि मनुष्योनी अपेक्षाये सर्व साते समुद्घातो होयछे.

अवतरण--आ गाथाना पूर्वार्धमां बाकी रहेला दंडके समुद्घात अने उत्तरार्धथी दंडकोमां दृष्टिद्वार कहे छे.

॥ मूळगाथा १९ मी. ॥

पण गब्भतिरिसुरेसु, नारयवाऊसु चउर तिय सेसे
विगल दुदिट्ठी थावर, मिच्छत्ति सेस तियदिठ्ठी॥१९॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

पंच गर्भजतिर्यक्सुरयोर्नारकवाय्वोश्चत्वारि त्रीणि शेषेषु
विकले द्वे दृष्टी स्थावरे मिथ्येति शेषेषु तिस्रो दृष्टयः ॥१८॥

॥ शब्दार्थः ॥

पण–पांच
गब्भतिरि–गर्भजतिर्यंच
सुरेसु–देवोमां
नारय–नारक
वाऊसु–वायुकायमां
चउर–चार
तिय–त्रण
सेसे–बाकीना दंडकोमां
विगल–विकलेन्द्रियमां
दु–बे
दिट्ठी–दृष्टि
थावर–स्थावर जीवमां
मिच्छ–मिथ्यादृष्टि
त्ति–इति–ए नामनी
सेस–बाकीना दंडके
तिय–त्रण
दिट्ठि–दृष्टि

गाथार्थः—गर्भजतिर्यंचने अने देवोने पांच समु०, नारक तथा वायुकायने चार समु०, अने बाकीना दंडके त्रण समु० छे. ॥ विकलेन्द्रिय ने बे दृष्टि छे. स्थावरने मिथ्यात्व ए नामनी दृष्टि छे, अने बाकीना सर्व दंडके त्रण दृष्टि छे.

विस्तरार्थः—गर्भज तिर्यंच अने देवोमां ५समु० होय, कारण के आहा०समु० फक्त कोइक चौद पूर्वधर मुनिने अने केवलि समु०कोइक केवलिने होय माटे ए बे सिवायनी शेष पांच समु०होय तेमां पण दरेक ग०तिर्यंचने प्रथमनी ३ समु० होय, वै०लब्धिवाळा कोइक गर्भज तिर्यंचने वै० समु०, ने तै० लब्धिवाळा कोइक ग० तिर्यंचने तै० समुद्घात पण होय.

नारयवाउसु चउर—नारक अने वायुकायने प्रथमनी चार समु० होय त्यां नारकमां दरेक नारक जीवने अने वायुमां सर्व वायुजीवोथी संख्यातमा भाग जेटला असंख्य लब्धिपर्याप्त बादर वायुजीवोने वै० समु० होय' पण ए जीवोने तै० समु० न होय, ने ३ समु० तो त्रसनाडीगत जीवने होवाथी ए बे मे पण

होय छे. माटे ४ समु० छे.

तियसेसे-शेष दंडकमां ३ समुद्घात होय. अहिं २४ दंडकमां समुद्घातो कही पण तेमां ओघ (सामान्य) एकेन्द्रियमां चार कही ते मात्र पर्याप्त लब्धिवंत वायुकायने ज होय अने बाकीनाओने उपर विस्तरार्थमां बताव्या प्रमाणे समुद्घातो होय छे. ते जाणवी " तियसेसे " बाकीनाओने त्रण एम लख्युं छे, पण तेनो विचार उपर लख्या प्रमाणे जाणवो,

॥ इति समुद्घातद्वारम् ॥

विगल दुदिट्ठी—विकलेन्द्रिय जीवोने सम्यक्त्व अने मिथ्यात्व ए बे दृष्टि छे, त्यां पूर्व भवमांथी उपशम सम्यक्त्व वमतो जीव सास्वा० सम्य० कंइक बाकी रहेतां द्वीन्द्रियादि पणे उत्पन्न थाय तो अपर्याप्तपणामां प्रथम अन्तर्मु० मात्र सास्वादन सम्यक्त्व होय, ने त्यारबाद आखा भवपर्यन्त मिथ्यादृष्टिपणुं ज होय छे.

थावरमिच्छ—स्थावरना पांचे दंडक मिथ्यादृष्टि वाळा छे, आ विचार सिध्धान्तकारने मते जाणवो कारण के तेओ ' उभयाभावो पुढवाइसु ' कहे छे अने कर्मग्रंथकारोए तो प्रथम मिथ्या० अने द्वितीय सास्वादन गुणस्थान कहेलां छे.

सेसतियदिट्ठि—शेष १७ दंडक त्रणे दृष्टिवाळा छे, तथा सम्मू० मनु० मिथ्याद० छे अने सम्मू० तिर्यंचो मिथ्याद० तथा अपर्या० पणामां प्रथम अन्तर्मु० मात्र (सास्वादनी होवाथी) सम्यग्दृष्टि छे,

॥ इतिदृष्टिद्वारम ॥

अवतरण—आ गाथामां सर्व दंडके दर्शनद्वार कहे छे.

॥ मूळगाथा १९ मी ॥

थावरबितिसु अचक्खू, चउरिंदिसु तद्दुगं सुए भणियं
मणुआ चउदंसणिणो, सेसेसु तिगं तिगं भणियं ॥१९॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

स्थावरद्वित्रिष्वचक्षुश्चतुरिन्द्रियेषु तद्द्विकं श्रुते भणितं ।
मनुजाश्चतुर्दर्शनिनः, शेषेषु त्रिकं त्रिकं भणितं ॥ १९ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

थावर–स्थावरजीवोने
बि–द्वीन्द्रियने
तिसु–त्रीन्द्रियने
अचक्खू–अचक्षुदर्शन
चउरिंदिसु–चतुरिन्द्रियने
तद्दुगं–ते बे (–बे दर्शन)
सुए–सिद्धान्तमां
भणियं–कहेल छे,
मणुआ–मनुष्यो
चउदंसणिणो–४ दर्शनवाळा
सेसेसु–बाकीना दंडके
तिगं तिगं–त्रण त्रण
भणियं–कह्युं छे,

गाथार्थः-स्थावर-द्वीन्द्रियने त्रीन्द्रियने अचक्षुदर्शन अने चतुरिन्द्रियने बे दर्शन (चक्षु सहित) श्रुतने विषे कह्यां छे' मनुष्यो ४ दर्शनवाळा छे, अने बाकीना दंडकोमां त्रण त्रण दर्शन कह्यां छे,

विस्तरार्थः—थावर बितिसु अचक्खू—स्थावरना ५ दंडक तथा द्वीन्द्रिय ने त्रीन्द्रिय ए ७ दंडकमां अचक्षुदर्शन छे, त्यां अचक्षुदर्शन स्पर्शेन्द्रिय–रसनेन्द्रिय–घ्राणेन्द्रिय–श्रोत्रेन्द्रिय–ने मन संबंधी एम ५ प्रकारनुं छे, तेमज इन्द्रिय अने मन सिवाय स्वाभाविक लब्धिरूप दर्शनगुणने पण अचक्षुदर्शन मानतां ६ प्रकारनुं पण अचक्षुदर्शन गणाय, तेमां पूर्वभवमांथी आवता

स्थावरजीवोने दरेकने रस्तामां तथा उत्पत्तिस्थाने उत्पन्न थया-वाद इन्द्रियपर्याप्ति समाप्त न थाय त्यां सुधी लब्धिरूप अचक्षु दर्शन, ने इन्द्रिय पर्याप्तिए पर्याप्त थयेलाने स्पर्शनेन्द्रियरूप अचक्षुद-र्शन छे, तथा द्वीन्द्रियने पण पूर्वभवमांथी आवतां मार्गमां अने उत्प-त्तिस्थाने इन्द्रियपर्याप्ति समाप्त न थाय त्यां सुधी लब्धि रूप अचक्षुदर्शन, अने इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण थया वाद स्पर्शनेन्द्रिय तथा रसनेन्द्रिय संबंधी बे प्रकारनुं अचक्षुदर्शन छे. तेम त्रीन्द्रिय जीव-ने द्वीन्द्रियवत् अचक्षुदर्शन जाणवुं पण विशेष ए के इन्द्रिय पर्या-प्ति पूर्ण कर्या वाद स्पर्शन संबंधि–रसनासंबंधि–ने घ्राणेन्द्रिय संबंधि एम ३ प्रकारनुं अचक्षुदर्शन जाणवुं.

चउरिंदिसु तदुगं–चतुरिन्द्रिय जीवने ते बे एटले चक्षु अने अचक्षु एम बे दर्शन जाणवां. त्यां चतुरिन्द्रियने त्रीन्द्रियवत् लब्धिरूप–विगेरे ४ प्रकारनां अचक्षुदर्शन छे, अने स्वयोग्य पर्या-प्तिओ पूर्ण थया वाद [1]पर्याप्तावस्थामां चक्षुदर्शन कहेवुं. ए भावा-र्थ सुए भणियं–सिद्धान्तमां कह्यो छे.

मणुआ चउदंसणिणो–मनुष्यो ४ दर्शनवाळा छे, तेमां सर्व सामान्य मनुष्योने अचक्षुदर्शन तथा चक्षुदर्शन चतुरिन्द्रियवत् जा-णवुं, ने केटलाक ग० मनुष्यो के जेओने अवधिज्ञान अने केवल-ज्ञान होय तेवा मनुष्योने अवधिदर्शन तथा केवळदर्शन होइ शके पण सर्वने नहिं. तेमज एक मनुष्य समकाळे १–२ ने ३ दर्शन लब्धिवाळो होय पण दर्शनोपयोग तो एक मनुष्यने समकाळे एक ज होय, त्यां १—२—३ दर्शन समकाळे लब्धिरूपे होय ते आ प्रमाणे—

---

१ चक्षुदर्शन सर्व पर्याप्तिओना समाप्तिरूप कारण पर्याप्तअ वस्थामांज होय पण इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण कर्या बाद तुर्त होय नहिं,

अपर्याप्त गर्भज मनुष्यने मात्र अचक्षु दर्शनज होय माटे समकाळे १ प्रकारनुं, अथवा श्री सर्वज्ञने फक्त केवलदर्शनज होय माटे १ प्रकारनुं दर्शन छे, तथा अवधिज्ञान अने केवळज्ञानरहित एक ग० मनुष्यने समकाळे चक्षु ने अचक्षुदर्शन लब्धि होय माटे बे प्रकारे, अने अवधिज्ञानी मनुष्यने त्रणे दर्शनलब्धि होय, ए प्रमाणे १-२-३ दर्शनलब्धि समकाळे होय पण ४ लब्धि न होय, तथा एक समये एकज दर्शनोपयोग तो दरेक जीव मात्रने जाणवो.

सेसेसु तिगं तिगं भणियं-शेष १९ दंडकमां त्रण त्रण दर्शन कह्यां छे, त्यां देवना १३ दंडक अने नारकनो १ दंडक ए १४ दंडकमां तो दरेक देवने अने दरेक नारकने अपर्याप्तपणामां अचक्षु अने अवधिदर्शन बे होय अने पर्याप्तपणामां दरेक देव नारकने त्रणे दर्शनलब्धि छे, परंतु अहिं एटलो अपवाद छे के पूर्व भवमांथी सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय जो देवपणे उत्पन्न थयो होय तो ते देवने अपर्या० अवस्थामां अवधिज्ञान न होय माटे अवधिदर्शन पण न होय एम जाणवुं.

तथा गर्भज तिर्यंचमां अचक्षुदर्शन ने चक्षुदर्शन तो चतुरिन्द्रियवत् अने अवधिदर्शन ग० मनुष्यवत् कोइकनेज जाणवुं.०

तथा दंडकमां अनधिकारी सम्मू० तिर्यंच पंचेन्द्रियने अचक्षु तथा चक्षुदर्शन चतुरिन्द्रियवत् जाणवुं, अने सम्मू० मनुष्यने मात्र अचक्षुदर्शनज होय छे कारण के ए जीवो अपर्याप्त अवस्थामांज मरण पामे छे. ॥ इति दर्शनद्वारम् ॥

अवतरण-आ गाथामां सर्व दंडके ज्ञानद्वार कहे छे.

॥ मूळ गाथा २० ॥

अन्नाणनाणतियतिय, सुरतिरिनिरए थिरे अनाण दुगं ।

नाणन्नाण दु विगले, मणुए पण नाण तिअनाणा २०

॥ संस्कृतानुवादः ॥

अज्ञानज्ञानत्रिकं त्रिकं, सुरतिर्यग्नैरयिकेषु स्थिरेऽज्ञानद्विकं।
ज्ञानाज्ञानद्विकं विकले, मनुजे पंच ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि॥

॥ शब्दार्थः ॥

अन्नाण—अज्ञान
नाण—ज्ञान
तिय तिय—त्रण त्रण
सुर—देवने
तिरि—तिर्यंचने
निरए—नारकने
थिरे—स्थावरने
अनाण—अज्ञान
दुगं—बे
नाण—ज्ञान
अन्नाण—अज्ञान
दु—बे
विगले—विकलेन्द्रियोने
मणुए—मनुष्यने
पण नाण—५ ज्ञान
ति अनाणा—३ अज्ञान

गाथार्थः—देव तिर्यंच अने नारकने ३ अज्ञान ने ३ ज्ञान छे, स्थावरोने बे अज्ञान छे, विकलेन्द्रियोने बे ज्ञान तथा बे अज्ञान छे, अने मनुष्यने ५ ज्ञान अने ३ अज्ञान छे (अहिं ज्ञान तथा अज्ञान ए बे द्वार कहेवायां).

विस्तरार्थः—अन्नाणनाणतियतिय सुरतिरिनिरए— —देवना १३ दंडक, ग० तिर्यंचनो १ दंडक, अने नारकनो १ दंडक ए १५ दंडकमां त्रण ज्ञान ३ अज्ञान छे, एम सामान्यथी कह्युं, अने विशेषतः आ प्रमाणे—

सर्व इन्द्र—दरेक विमानना अधिपति देवो—प्रायः सर्व लोकान्तिक. ५ अनुत्तरना सर्व देवो ए सर्व सम्यग्दृष्टि होवाथी म०—श्रु०—अव० ए ३ ज्ञानवाळा छे. १५ परमाधार्मिक अने ३ किल्बि०

षिक देवोने पण सम्यक्त्व होवाथी ३ ज्ञान अने मिथ्यात्व होवाथी ३ अज्ञान होय छे, त्यां परमाधामीने पूर्वनी सोबतवाळा देवना उपदेशादि प्रयत्नथी सम्यक्त्व थाय छे, परन्तु प्रथमथीज सम्यक्त्व होवानो संभव नथी, शेष भुवनपत्यादि देवो उत्पन्न थतां अने उत्पन्न थया बाद पण सम्यक्त्व युक्त थवाथी ३ ज्ञानवाळा होय अने मिथ्यादृष्टि भवनपत्यादि देवोने ३ अज्ञान होय. ए प्रमाणे देवोमां ३ ज्ञान अने ३ अज्ञान कह्या बाद हवे तिर्यंचोमां कहे छे,

तिर्यंचमां पण ३ ज्ञानने ३ अज्ञान छे. अहिं तिर्यंच सामान्ये कहेल छे तो पण गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियो ज जाणवा, तेओने पर्याप्त अने अपर्याप्त अवस्थामां पण सम्यक्त्व होवाथी ३ ज्ञान होयछे अने मिथ्यादृष्टिओने ३ अज्ञान होय छे. अहिं तिर्यंचने अपर्याप्त अवस्थामां पण मनुष्यवत् परभवथी साथे लावेलुं अवधि अने विभंगज्ञान होवुं केटलाएक मानेछे. अने केटलाएक नहि मानता होवाथी बे मत छे. परन्तु विशेषतः तो तिर्यंचोने गुणप्रत्ययिक होवाथी व्रत तपश्चर्यादि गुणथी पर्याप्त अवस्थामां अवधि अने विभंग उत्पन्न थाय छे. ए प्रमाणे गर्भज तिर्यंचपंचेन्द्रियमां ३ ज्ञान अज्ञान कह्यां

नारकोमां सातमी पृथ्वीना अपर्याप्त नारक सिवायना १३ नारकोमां सम्यक्त्व होवाथी ३ ज्ञान अने मिथ्यात्व होवाथी ३ अज्ञान छे, अने सातमी पृथ्वीना अपर्याप्त नारकने तो केवळ मिथ्यात्वज होवाथी ३ अज्ञान होय पण ज्ञान न होय. नारकोने भवप्रत्ययिक अवधि अने विभंग होवाथी त्यां उत्पन्न थती वखते ए ज्ञान पामे छे.

थिरे अनाणदुगं—स्थावरने २ अज्ञान ज छे, अहिं सिद्धान्तने मते अल्प पण सम्यक्त्वांश नहीं होवाथी २ अज्ञान जाणवां, अने कर्मग्रंथकारनेमते पण जेओ पूर्वभवमांथी उपशम सम्यक्त्ववमतां कि-

चित् सास्वादन सम्यक्त्व बाकी रहे काळ करी एकेन्द्रिय थएला लब्धिपर्याप्त बादर पृथ्वीकाय–अप्काय–अने वनस्पतिकायने अपर्याप्तावस्थामां अल्पकाळ पर्यन्त सास्वादन सम्यक्त्व होते छते पण सास्वादन भावमां कार्मग्रंथिकमते ज्ञान मानेलुं नही होवाथी सर्व एकेन्द्रियोने अज्ञानज होय छे,

नाणन्नाणदुविगले—सिद्धान्तकारमते सास्वादन सम्यक्त्वे ज्ञान मान्युं छे अने केटलाक विकलेन्द्रियोने अपर्याप्तावस्थामां सास्वादन सम्यक्त्व मानेलुं होवाथी सम्यक्त्ववाळाने २ ज्ञान अने बाकीनाओने २ अज्ञान होय छे अने कर्मग्रन्थकारने मते सास्वादन सम्यक्त्व छतां पण अज्ञानज कह्युं छे.

मणुए पण नाण ति अनाणा—गर्भज मनुष्योमां ५ ज्ञान अने ३ अज्ञान छे ते आ प्रमाणे—

एक जीवने समकाले १–२–३ ने ४ ज्ञानलब्धि होय छे, त्यां जे ग० मनुष्यने अवधि–मनः प०–ने केवळज्ञान न होय तेवा सम्यग्द्रष्टिओने मतिज्ञान अने श्रुतज्ञान छे, तथा अवधिज्ञान अथवा मनःपर्यवज्ञान बेमांथी कोइपण एक ज्ञान उत्पन्न थयुं होय तो एक जीवने म०–श्रु०–अव० अथवा म०–श्रु–मनः० एम बे रीते ३ ज्ञान होय, ने जेने अवधि अने मनःप० बन्ने उत्पन्न थयां होय तो एक ग० मनुष्यने समकाळे चार ज्ञान होय, ने सर्व केवलि भगवानने एकज केवळज्ञान होय पण मत्यादि ४ ज्ञान न होय. तथा मिथ्यादृष्टि ग० मनुष्योने विभंगज्ञानरहितने बे अज्ञान अ विभंगज्ञान सहितने ३ अज्ञान, ए प्रमाणे एक ग० मनु०ने समकाले २ अथवा ३ अज्ञान छे, इति ज्ञानाज्ञानद्वारद्वयं,

--- (०) ---

अवतरण—आ गाथामां १५ योगनां नाम कहे छे.

॥ मूळ गाथा २१ मी. ॥

सच्चअरमीस असच्च मोस मणवय विउव्वि आहारे
उरलं मीसा कम्मण, इय जोगा देसिया समए॥२१॥

संस्कृतानुवादः

सत्येतरमिश्रासत्यमृषा मनो वचांसि वैक्रिय आहारक:
औदारिको मिश्राः कार्मणः एते जोगा देशिताः समये॥२१॥

॥ शब्दार्थः—

सच्च—सत्य.
इयर—असत्य.
मीस—मिश्र.
असच्चमोस—असत्यामृषा.
मण—मनयोग.
वय—वचनयोग.
वेउव्वि--वैक्रिययोग.
आहारे—आहारकयोग.
उरलं--औदारिकयोग.
मीसा—ए त्रणे मिश्रयोग.
कम्मण—कार्मणयोग.
इय—ए सर्व.
जोगा—योग.
देसिया—बताव्या छे.
समए—सिध्धान्तमां.

गाथार्थः—सत्य—असत्य—मिश्र—ने असत्यामृषा (एचार) मनयोग तथा (ए चारे) वचनयोग (तथा) वैक्रियकाययोग१—आहारककाययोग२—औदारिककाययोग३—ने (ए त्रणे) मिश्र१नथा कार्मणकाययोग७१ सर्वमली१५योग सिद्धान्तमां कह्याछे.

विस्तरार्थः—द्वारवर्णन प्रसंगे कह्यो छे त्यांथी जाणवो.

अवतरण—आ गाथामां सर्वदंडके योगद्वार कहे छे,

॥ मूळगाथा २२ मी; ॥

इक्कारस सुरनिरए, तिरिएसु तेर पनर मणुएसु ।
विगले चउ पण वाए, जोगतियं (गं) थावरे होइ २२

॥ संस्कृतानुवादः ॥

एकादश सुरनैरयिकयोस्तिर्यक्षु त्रयोदश पंचदश मनुजेषु
विकलेषु चत्वारि पंच वायुषु, योगत्रिकं स्थावरे भवति २२

॥ शब्दार्थः ॥

इक्कारस–अगीआर,
सुर–देवने
निरए—नारकने,
तिरिएसु–तिर्यंचोने
तेर–१३ योग,
पनर–१५ योग,
मणुएसु–मनुष्योने;
विगले—विकलेन्द्रियोने,
चउ–४ योग;
पण—५ योग,
वाए–वायुकायने,
जोग–योग;
तिगं–त्रण;
थावरे–स्थावरने,
होइ—छे,

गाथार्थः—देव अने नारकने ११ योग, तिर्यंचने १३ योग मनुष्यने १५ योग, विकलेन्द्रियने ४ योग, वायुने ५ योग, अने स्थावरने ३ योग छे,

विस्तरार्थः––इक्कारस सुरनिरए—देव अने नारकने ११ योग होय ते आ प्रमाणे—

पूर्वभवमांथी आवता देवने मार्गमां तथा उत्पत्तिना प्रथम समये तैजस कार्मण योग, उत्पत्ति स्थाने प्राप्त थयेला देवने द्वितीय समयथी अन्तर्मु० सुधी शरीरपर्याप्ति समाप्त थाय त्यां सुधी अथवा बीजे मते अपर्याप्त अवस्था सुधी तैजस कार्मण सहित वै० काययोग होवाथी वैक्रिय मिश्रकाय योग, अथवा उत्तरवैक्रिय रचनार देवने रचनाना प्रारंभमां अने अन्ते वै०मिश्रकाययोग, तदनंतर शरीरपर्याप्ति समाप्त थया बाद अथवा पर्याप्त थया बाद

४ मनना-४वचनना--ने १ वैक्रियकाययोग एम ९ योग होय ए प्रमाणे सामान्यपणे ११ योग जेम [1] देवमां कह्या तेम नारकमां पण विचारवा.

तिरिएसु तेर--ग०तिर्यंचने पूर्वोक्त ११ मां औदा०मिश्र अने औदा० मेळवतां १३ योग थाय ते आ प्रमाणे--

मार्गमां आवताने अने उत्पत्तिना प्रथम समये तै०, का०, उत्पत्तिना द्वितीय समयथी शरीरापर्याप्तपणा सुधी अथवा अपर्याप्तपणा सुधी औदा० मिश्र०, शरीर पर्याप्तने अथवा पर्याप्तने औदा०, पर्याप्तने ४ मनना ने ४ वचनना, कोइक वै० लब्धिवंत तिर्यंच वैक्रिय रचना करे तो रचनाना प्रारंभमां ने अन्ते वै० मिश्र, अने वै० शरीर संबंधि शरीर पर्याप्ति वा सर्वपर्याप्ति समाप्त थया बाद वैक्रिय काययोग ए प्रमाणे १३ योग होय अहीं वैक्रिय रचनाना प्रारंभमां जे वैक्रिय मिश्रयोग कह्यो छे. ते सिद्धान्तकारना मते जाणवुं अने कर्मग्रन्थकारने मते प्रारंभमांतो औदा०मिश्र मान्योछे पण अन्ते एटलेके वैक्रियशरीर छोडती वखतेज वैक्रियमिश्रयोग मान्यो छे. तिर्यंचमां जे तिर्यंचो पोपट विगेरे स्पष्ट भाषा बोली शके तेओने वचनना चारे योग छे, अने अस्पष्ट भाषा बोलनार तिर्यंचो पण मनसंज्ञा पूर्वक सत्यादिक सूचवता होवाथी अस्पष्ट भाषकोने पण ४ भाषायोग मानी शकाय, अन्यथा तो सम्मू० तिर्यंचवत् १ व्यव० वचनयोग होय,

पन्नर मणुएसु—गर्भज मनुष्योने १५ योग होय. तेमां

---

१ नव ग्रैवेयक देवोने उत्तर वैक्रिय संबंधि वै०मिश्र-ने वै० काययोग न होय, अने अनुत्तर वासी देवोने शब्दोच्चारना अभावे प्रवृत्ति रूप वचनयोग पण न होय.

१३ योग तो ग० तिर्यंचवत्[१] जाणवा अने शेष वे योग आ प्रमाणे—आहारक शरीर रचनार चौद पूर्वधर मुनिने सिद्धान्तकारने मते रचनाना प्रारंभे अने अन्ते अने कर्मग्रन्थकारने मते प्रारंभमांतो औदारिक मिश्र मान्यो छे पण अन्ते एटले के आहारक शरीर छोडती वखते आहा० मिश्र, अने आहारक शरीरपर्याप्ति पूर्णथया बाद अथवा ६ पर्याप्ति पूर्ण, थया बाद आहा० योग होय ए प्रमाणे अनेक जीव आश्रयि मनुष्यने १५ योग कह्या,

विगले चउ—विकलेन्द्रियोने ४ योग होय ते आ प्रमाणे—पूर्वभवथी आवतां मार्गमां अने उत्पत्तिना प्रथम समये तै०का०, उत्पत्तिना बीजा समयथी शरीरापर्याप्तावस्था अथवा अपर्याप्तावस्था सुधी औदा०मिश्र, अने पर्याप्तावस्थामां आखो भवपर्यन्त औदा० अने व्यवहार वचनयोग ए बे योग छे ए प्रमाणे विकलेन्द्रियना ४ योग.

पण वाए--वायुकायने ५ योग छे तेमां तै० का०-औदा० -ने औदा०मिश्र ए ३ योग विकलेन्द्रियवत् जाणवा अने वै०-मिश्र तथा वै०काययोग गर्भजतिर्यंचवत जाणवा, वायुकायने वचनयोग होय नहिं.

जोगतिगं थावरे होइ—वायुकाय सिवायना ४ स्थावरोने तै०का०-औदा० मिश्र-अने औदा० ए ३ योग छे ते विकलेन्द्रियवत् जाणवा.

अहिं तै० का० काययोग जो के पर्याप्त अवस्थामां पण होय छतां भवधारणीय शरीरनी मुख्यता होवाथी भवधारणीय शरीर-

१ परन्तु विशेष ए छे के—श्री सर्वज्ञने समुद्घात समये आठ समयमां बीजे छठ्ठे ने सातमे समये औदा० मिश्र तथा त्रीजे चोथे ने पांचमे समये कार्मण योग होय छे,

नोज योग गणाय. तथा एक जीवने समकाळे उपयोग पूर्वकनो १ ज योग छे, परन्तु उपयोग रहित चेष्टामात्रने योग गणीए तो वधुमां वधु १ मननो १ वचननो अने औदा० साथे आहा० वा आहा०मिश्र वा वै० वा वै०मिश्र ए बे काययोग अथवा मूळ वै० साथे वै०मिश्र एम पांच रीते बे काययोग मळी ४ योग होय कारणके आहा० अने वैक्रिय ए बे शरीर समकाळे एक जीवने न होय.

तथा दंडकमां अनधिकारी समु० तिर्यंच पंचे० अने समु० मनुष्यने पूर्वोक्त पद्धतिए तै०का०-औ०मिश्र अने औदा० ए३योग कायाना अने व्यवहारभापारूप १ वचनयोग मळी ४ योग विकलेन्द्रियवत् होय छे.

॥ इति योगद्वारम् ॥

अवतरण—आ गाथामां १२ उपयोगनां नाम कहे छे.

॥ मूळ गाथा २३ मी. ॥

ति अनाण नाण पण चउ, दंसण बार जिअ लक्खणु
वओगा
इय बारस उवओगा, भणिया तेलुक्क दंसीहिं ॥२३॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

त्रीण्यज्ञानानि ज्ञानानि पंच, चत्वारि दर्शनानि द्वादश
जीवलक्षणोपयोगाः ।
एते द्वादश उपयोगा भणितास्त्रि लोक दर्शिभिः ॥ २३ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

ति—त्रण
अनाण—अज्ञान
लक्खण—लक्षण रूप
उवओगा- उपयोग

नाण--ज्ञान
पण--पांच
चउ-चार
दंसण-दर्शन
बार-बार (१२)
जिअ-जीवनां
इय-ए (पूर्वोक्त)
बारस-बार
उवओगा--उपयोग
भणिया-कह्या छे
तेलुक्कदंसीहिं--त्रण लोकने देखनार एवा श्रीजिनेश्वरोए

गाथार्थः—३ अज्ञान--५ज्ञान--ने ४ दर्शन ए जीवनां लक्षण रूप १२ उपयोग छे, ए १२ उपयोग त्रण लोकने (केवलज्ञानदर्शनवडे) देखनार एवा श्री जिनेश्वरोए कह्या छे,

विस्तरार्थः—सुगम छे.

अवतरण—आ गाथामां सर्व दंडके उपयोगद्वार उतारे छे.

॥ मूळ गाथा २४ मी. ॥

उवओगा मणुएसु, बारस नव निरय तिरिय देवेसु
विगलदुगे पण छक्कं, चउरिंदीसु थावरे तियगं ॥२४॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

उपयोगा मनुजेषु द्वादश नव नैरयिकतिर्यग्देवेषु ।
विकलद्विके पंच, षट् चतुरिन्द्रियेषु स्थावरे त्रयः ॥ २४ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

उवओगा-उपयोग
मणुएसु-मनुष्योने
बारस-बार
नव-नव उपयोग
निरय-नारकने
तिरिय-तिर्यंचने—देवेसु-देवने
विगलदुगे-बे विकलेन्द्रियने
पण-पांच उपयोग
छक्कं-छ उपयोग
चउरिंदिसु-चतुरिन्द्रियाने
थावरे-स्थावरने
तिअगं-त्रण उपयोग

गाथार्थः—मनुष्योने १२ उपयोग, नारक--तिर्यंच--अने देवोने ९ उपयोग, बे विकलेन्द्रियने (द्वीन्द्रिय–त्रीन्द्रियने) ५ उपयोग, चउरिन्द्रियोने ६ उपयोग, अने स्थावरने ३ उपयोग छे.

उपयोग होय एम सामान्यथी कह्युं पण विशेषतः आ प्रमाणे—

विस्तरार्थ—हवे आ गाथामां कया दंडके केटला उपयोग होय ते दर्शावतां उवओगा मणुएसु बारस–मनुष्योने १२ उपयोग होय एम सामान्यथी कह्युं अने विशेषतः आ प्रमाणे—

अनेक मनुष्योनी अपेक्षाए अथवा एक मनुष्यने भिन्न कालनी अपेक्षाए मनुष्यने १२ उपयोग छे. अने एक मनुष्यने समकाळे तपासीए तो २–४–५–६–७ उपयोग लब्धिरूपे होय, त्यां समकाळे केवळज्ञान अने केवळदर्शन ए बे उपयोग श्री सर्वज्ञने लब्धिरूपे होय, तथा मति–श्रुतज्ञान अथवा मति–श्रुत अज्ञानसहित चक्षु अने अचक्षुदर्शन गणतां समकाळे ४ उपयोग होय, तथा ३ अज्ञान अने चक्षु-अचक्षुदर्शन गणतां ५ [1] उपयोग अथवा मति–श्रुत–ने मनःपर्यवज्ञानयुक्त चक्षु अचक्षुदर्शन गणतां पण ५ उपयोग, तथा मति–श्रुत--अवधिज्ञानसहित चक्षु--अचक्षु अने अवधिदर्शन गणतां ६ उपयोग तथा एमां मनःपर्यवज्ञान मेळवतां७उपयोग एक मनुष्यने लब्धिभावे होय पण उपयोगरूपे न होय, उपयोग रूपे तो एक जीवने १समये १ ज उपयोग होइ शके.

नव निरय-तिरिय-देवेसु--नारकनो १-तिर्यंचनो १-अने देवना १३ दंडक मळी १५ दंडकमां केवळज्ञान–केवळदर्शन–ने मनःपर्यवज्ञान शिवायना ९ उपयोग छे कारणके मनःपर्यवज्ञान अप्रमत्तमुनिने ज उत्पन्न थाय छे, अने प्रमत्तादि मुनिने ज होयछे

१ विभंग ज्ञानीने अवधिदर्शन न माने तो ५ उपयोग अने सिद्धान्तकारने मते विभंगज्ञानीने अवधिदर्शन मानेलुं छे तो ते अपेक्षाए ६ उपयोग ३ अज्ञान ने ३ दर्शन सहित थाय

पुनः आ मनःपर्यव ज्ञान जो के अध्यवसायनी निर्मलताथी थाय छे. पण तथाप्रकारनी जगत्मर्यादाए ए अध्यवसायो द्रव्यभावमुनिलिंग-धारीनेज आवी शकेछे माटे ए ज्ञान मुनिवेष सिवाय बीजा गृहस्थादि वेषमां होतुं नथी माटे तिर्यंचादि १५ दंडकमां मुनिलिंगपूर्वक अध्य वसायनी तथाप्रकारनी निर्मलताना अभावे अप्रमत्तादिपणानो अ-भाव होवाथी चारित्रप्रत्ययिक मनःपर्यवज्ञान होतुं नथी, अने भाव-चारित्रना अभावे केवळज्ञाननो अभाव होवाथी केवळज्ञान अने के-वळदर्शन पण होय नहि माटे तिर्यंचादि १५ दडकमां ए बेउ प-योगनो पण अभाव छे तथा ए९ उपयोग पण अनेक तिर्यंचपंचेन्द्रिय अनेक देव अने अनेक नारकनी अपेक्षाए कह्या छे. पण दरेक तिर्यं-चपंचेन्द्रियादिने लब्धिभावे समकाळे न होयं माटे एकतिर्यंचने या १ देवने वा १ नारकने केटला उपयोग होय ते पूर्वोक्त पद्धतिए स्वयं विचारवा.

विगलदुगे पण—विकलद्विक एटले द्वीन्द्रियने तथा त्रीन्द्रियने मतिज्ञान मतिअज्ञान–श्रुतज्ञान–श्रुतअज्ञान–ने अचक्षुद-र्शन ए ५ उपयोग छे तेमां पूर्वभवे उपशम सम्यक्त्व वमीने सास्वादन सम्यक्त्व किंचित् शेष रहेतां मरण पामी द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रियपणे उ-त्पन्न थयेला जीवोने अपर्या० अवस्थामां अन्तर्मु० मात्र बे ज्ञान ने अचक्षु० द० सहित ३ उपयोग होय ने त्यारबाद ते तथा अन्य सर्व द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय जीवोने सदाकाळ बे अज्ञान ने अचक्षुदर्शनरूप ३ उपयोग होय छे.

छक्कं चउरिंदिसु—चतुरिन्द्रियजीवोने चक्षुदर्शनसहित ६ उपयोग होय शेष सर्वभावना द्वीन्द्रियवत् जाणवी.

थावरे तियगं—स्थावरना ५ दंडकमां मति अज्ञान श्रुतअज्ञान –ने अचक्षुदर्शन ए ३ उपयोग छे, कर्मग्रन्थकारमते पूर्वे ज्ञानाज्ञान-

द्वारमां वर्णव्या प्रमाणे जाणवुं

तथा दंडकमां अनधिकारी एवा सम्मू० तिर्यंचपंचे० तथा सम्मू० मनुष्यने पण स्थावरवत् ३ उपयोग जाणवा,

॥ इति उपयोगद्वारं ॥



अवतरण—आ गाथामां दरेक दंडके उपपातद्वार अने च्यवन द्वार ए बे द्वार कहे छे.

संखमसंखा समए, गब्भतिरिविगलनारयसुरा य ।
मणुआ नियमा संखा, वणणंता थावर असंखा ॥२५॥

संस्कृतानुवादः

संख्येया असंख्येयाः समये गर्भजतिर्यग्विकलनारकसुराश्च
मनुजा नियमात् संख्येया वना अनंताः स्थावरा असंख्येयाः २५

॥ शब्दार्थः ॥

संखं–संख्याता
असंखा–असंख्याता
समए–एक समयमां
गब्भतिरि–गर्भजतिर्यंचो
विगल–विकलेन्द्रियो
नरय–नारको
सुरा–देवो
य–अनो

मणुआ–मनुष्यो
नियमा–निश्चयथी
संखा–संख्याता
वण–वनस्पति
अणंता–अनंत
थावर–स्थावरो
असंखा–असंख्याता

गाथार्थः—गर्भजतिर्यंच–विकलेन्द्रिय–नारक–अने देवो एक समयमां संख्यात अथवा असंख्यात (उपजे अने चवे) मनुष्यो निश्चय संख्याता ज, वनस्पतिकायजीवो अनंत, अने स्थावरो असंख्यात (उपजे अने चवे छे)

विस्तरार्थः—आ गाथामां कया दंडकना जीवो एक समय-मां एटले समकाळे केटला उपजे ! अने मरण पामे ? तेनी संख्या-नो नियम जणाववा माटे कहे छे के—संखमसंखा समए—गब्भ-तिरिविगलनारयसुरा य—गर्भजतिर्यंच—द्वीन्द्रिय—त्रीन्द्रिय—चतुरिन्द्रिय—नारक—ने देवना १३ ए प्रमाणे १८ दंडकना जीवो १ समयमां जघन्यथी संख्यात एटले कमीमां कमी. १--२--३ यावत् उत्कृष्ट संख्याता उत्पन्न थाय, अने उत्कृष्टथी असंख्याता उत्पन्न थाय, पण अनंत न उपजे, कारणके ए १८ दंडकमां दरेक दंडकनी अंदर त्रणे काळमां तपासीए तो सर्व जीवो पण [1] असंख्यज छे. पुनः मरण पण एटला ज जीवो पामे ए प्रमाणे आगळ सर्वत्र उत्पत्तिवत् मरणसंख्या जाणवी,

तथा—मणुआ नियमा संखा--गर्भजमनुष्यो निश्चयथी. संख्यातज छे. अने ते पण बेनी संख्यानो ६ वार वर्ग करी ५ मा-वर्ग साथे गुणाकार करे तेटली अथवा १ ने ९६ वखत ढाण बमणा करे तेटला ग० मनुष्यो छे. ते सर्व संख्या ७९२२८१६२५१४२६-४३३७५९३५४३९५०३३६ ए प्रमाणे २९ आंकडानी संख्याए गर्भजमनुष्य होय छे, अने मनुष्यना अशुचि १४ स्थानकोमां उपजता सम्मूर्च्छिम मनुष्यो असंख्याता ज होय छे तेथी बेउ (ग० सं०) मनुष्योनी संख्या असंख्यात प्रमाण थाय, पण कोइक काळविशेषमां सम्मूर्च्छिमनो २४ मुहूर्तनो विरहकाल पडे छे, ते वखते पूर्वना उत्पन्न थयेला अन्तर्मुहूर्तनुं आयुष्य होवाथी अन्तर्मुहूर्त्ते चवी जाय छे. ते वखते साधिक २३ मुहूर्त सुधी एकला गर्भज मनुष्यो ज होय छे तेनी संख्या उपर लख्या प्रमाणे जाणवी,

१ वैमानिकदंडकमां सर्वार्थसिद्धमांज मात्र संख्यात देवो छे. शेष सर्व देवलोकमां असंख्य देवोछे,

वणणंता—वनस्पति काय रूप १ दंडकमां एक समये अनंत जीवो उत्पन्न थाय छे, अने मरण पामे छे. त्यां प्रत्येक वनस्पतिजीवो असंख्यात ज होवाथी एक समयमां असंख्य उपजे अने असंख्य मरण पामे, अने सूक्ष्म साधारणवनस्पति तथा बादरसाधारणवनस्पति ए बन्नेमां प्रतिसमय एक निगोदगत जीवराशिथी असंख्यातमा भाग जेटला जीवो उत्पन्न थायछे अने मरण पामे छे, कारणके बन्ने वनस्पतिजीवो जगत्मां अनंत अनंत छे,

थावर असंखा—वनस्पति सिवाय पृथ्वीकायादि ४ दंडकना जीवो एकसमयमां असंख्यात उपजे अने असंख्यात मरण पामे कारणके पृथ्वीकायादि चारे जीवो असंख्य असंख्य छे, पण अनन्त नथी वळी एमां कोइ पण समये संख्यात जीवो न उपजे.

अवतरण—आ गाथाना पूर्वार्धमां बाकी रहेला दंडके उपपात अने च्यवन द्वार अने उत्तरार्धथी दरेक दंडके आयुष्यद्वार कहे छे.

॥ मूळ गाथा २६ मी. ॥

असन्नि नर असंखा, जह उववाए तहेव चवणे वि ।
बावीस सग ति दस वास--सहस्स उक्किट्ठ पुढवाइ. २६

॥ संस्कृतानुवादः ॥

असंज्ञिनरा असंख्येया, यथोपपातस्तथैव च्यवनमपि ।
द्वाविंशतिसप्तत्रिदशवर्ष—सहस्रा उत्कृष्टं पृथ्व्यादयः ॥ २६ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

असन्नि -असंज्ञि (सम्मूर्च्छिम)
नर--मनुष्य
असंखा- असंख्यात
जह--जेवी रीते
उववाए- उपपातद्वारमां
तहेव--तेवी रीतेज
चवणेऽवि- च्यवनद्वारमां पण
बावीस--बावीस

सग--सात
ति--त्रण
दस--दश
वास--वर्ष
सहस्स--हजार
उक्किट्ठ--उत्कृष्ट
पुढवाइ--पृथ्वीकायादि

गाथार्थः—सम्मूर्च्छिम मनुष्यो (एक समयमां) असंख्यात (उपजे ने चवे) ए प्रमाणे जेवीरीते उपपातद्धारमां (कह्युं) तेवा रीते ज च्यवनद्धारमां पण (कहेवुं). पृथ्वीकायादिजीवोनुं उत्कृष्ट आयुष्य २२००० वर्ष--७००० वर्ष--३००० वर्ष ने १०००० वर्ष (अनुक्रमे जाणवुं)

विस्तरार्थः—असन्नी नर असंखा–असंज्ञिमनुष्यो एक समयमां असंख्यात उपजेछे. ने चवे छे, अहिं दंडकमां अनधिकृत एवा सम्मू० मनुष्योनी संख्या पण कही.

पुनः जे रीते उपपातद्धारमां छे. तेज रीते च्यवनद्वारमां पण छे. (के जे उपपातनी साथे साथे च्यवन द्वार पण कहेवायुं छे,) एवी रीते उपपात--च्यवनद्धार समय संख्याए कह्युं पण ते उपपातनो अभाव कया दंडकमां केटला काळ सुधी होय ते “उपपातविरह” अने कया दंडकमां केटला काळ सुधी कोइपण जीव मरण ज न पामे ते “च्यवनविरह” पण प्रसंगथी कहेवाय छे—

उत्पत्तिच्यवननो विरह काल.

दंडकोमां	जघ०	उत्कृष्ट
साते नरकमां	१ समय	१२ मुहूर्त
' रत्नप्रभामां	”	२४ मुहूर्त
शर्करामभामां	”	७ दिवस

वालुकाप्रभामां	”	१५ मास
पंकप्रभामां	”	१ मास
धूमप्रभामां	”	२ मास
तमःप्रभामां	”	४ मास
तमस्तमःप्रभामां	”	६ मास
चारेनिकायना देवोमां	”	१२ मुहूर्त
भवनपतिमां	”	२४ मुहूर्त
व्यन्तर	”	”
ज्योतिषी	”	”
सौधर्म	”	”
ईशान	”	”
सनत्कुमारमां	”	९ दिवस–२० मुहू०
माहेन्द्रमां	”	१२ दि०–१० मुहू०
ब्रह्मलोकमां	”	२२॥ दि०
लांतकमां	”	४५ दि०
शुक्रमां	”	८० दि०
सहस्रारमां	”	१०० दि०
आनतमां	”	संख्यातमास (१० मास)
प्राणतमां	”	” (११ मास)
आरणमां अच्युतमां	”	संख्यवर्ष (१००वर्ष नी अंदर छे.)

प्रथम त्रण ग्रैवैयके	”	सख्यात १०० वष (-१००० नी अंदर
वीजां त्रण ग्रैवेयके	”	संख्यात १००० वर्ष (–१ लाखनी अंदर
त्रीजा ग्रैवेयके	”	सख्यात लक्षवर्ष. (--१ क्रोडनी अंदर
४ अनुत्तरे	”	पल्योपमनोअसंख्यातमो भाग
सर्वार्थसिद्धे	”	पल्यो॰नोसंख्यातमो भाग
गर्भजतिर्यंचमां	”	१२ मुहूर्त
गर्भज मनुष्यमां	”	”
सम्मू॰मनुष्य	”	२४ मुहूर्त
द्वीन्द्रियमां	”	अन्तर्मु॰
त्रीन्द्रियमां	”	”
चतुरि॰मां	”	”
असन्निपंचे॰	”	अन्तर्मु॰
पृथ्वीकाय	विरह नथी	विरह नथी
अप्काय	”	”
अग्निकाय	”	”
वायुकाय	”	”
वनस्प॰	”	”

ए प्रमाणे ज्यां जेटलो विरहकाळ कह्यो छे, त्यां तेटला काळ सुधी कोइपण जीव नवो उपजे नहिं, तेम कोइ मरे पण नहिं,

तथा दंडकमां अनधिकृत सम्मू० मनुष्योनी एक समयमां उत्पत्ति च्यवन संख्या तो ग्रंथकारे गाथामांज कही अने सम्मू० पंचेन्द्रिय तिर्यंच एक समयमां निश्चय असंख्यात ज उपजे अने असंख्यात मरण पामे छे, पण संख्यात नहिं,

॥ इति उपपात—च्यवनद्वारयुगलम्, ॥

हवे दरेक दंडकमां आयुष्यद्वार कहेवाना प्रारंभमां बावीस सग ति दस वास सहस्सुक्किट्ठ पुढवाई—पृथ्विकायादि पांचनुं अनुक्रमे २२००० वर्ष–७००० वर्ष–३००० वर्ष–१०००० वर्ष–उत्कृष्ट आयुष्य छे एम सामान्यतः कह्युं, अने विशेषतः आ प्रमाणे—

पृथ्विकायमां हीरा–पन्ना विगेरे अतिनकर पृथ्विनुं २२००० वर्ष आयुष्य छे, कांकरा–हडताल–सुरमादिकनुं १८००० वर्ष आयुष्य. मणसिल विगेरेनुं १६००० वर्ष, रेतिनुं १४००० वर्ष, गोपीचंदन कुमारमाटी विगेरेनुं १२००० वर्ष अने सुंहाळी माटीनुं १००० वर्ष आयुष्य छे. शेष पृथ्वीओनुं आयुष्य श्री सर्वज्ञदृष्टिए जे होय ते जाणवुं, ते उत्कृष्ट आयुष्य निर्व्याघात स्थानमां रहेला रत्नादिकनुं जाणवुं, अन्यथा जघ० आयुष्य दरेकनुं अन्तर्मु० छे.

तथा निर्व्याघात स्थळे रहेला घनोदध्यादि जळनुं, अग्निनुं, वायुनुं वनस्पतिनु उत्कृष्ट आयुष्य केटलाक जीवोनुज होइ शकेछे. पुनः वनस्पतिमां फक्त बादर प्रत्येक वनस्प०नुंज उत्कृष्ट आयुष्य

छे, ने पृथ्व्यादिकमां पण दरेक बादरनुंज उत्कृष्ट आयुष्य जाणवुं, कारणके दरेक सूक्ष्मजीवनुं अन्तरमु०थी अधिक आयुष्य होतु ।

अवतरण—आगाथामां पण (अग्नि–मनुष्य–तिर्यंच–वैमानिक–नारकने व्यन्तरनुं) आयुष्य कहेवाय छे.

मूळ गाथा २७ मी,

तिदिणग्गि तिपल्लाऊ, नरतिरिसुरनरयसागरतित्तीसा
वंतरपल्लं जोइस, वरिसलक्खाहियं पलियं ॥२७॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

त्रिदिनमग्निस्त्रिपल्यायुष्कौ नरतिर्यञ्चौ सुरनारकौ सागरत्रयस्त्रिंशत्कौ ।
व्यंतरस्य पल्यं, ज्योतिषो वर्षलक्षाधिकं पल्यं ॥२७॥

॥ शब्दार्थः ॥

ति—त्रण
दिण—दिवस
अग्गि—अग्निकायनुं
ति—त्रण
पल्ल—पल्योपम
आउ—आयुष्य
नर—मनुष्योनुं
तिरि—तिर्यंचोनुं
सुर—देवोनुं
निरय—नारकोनुं
सागर—सागरोपम
तित्तीसा—३३ (तेत्रीस)
वंतर—व्यन्तरनुं
पल्लं—१ पल्योपम
जोइस—ज्योतिषीनुं
वरिस—वर्ष
लक्ख—१ लाख
अहियं—अधिक
पलियं—१ पल्योपम

गाथार्थ—अग्निकायनुं (उत्कृ० आयुष्य) ३ दिवस, मनुष्य ने तिर्यंचोनुं आयुष्य ३ पल्योपम, देव ने नारकनुं ३३ सा-

गरोपम, व्यन्तरनुं १ पल्योपम, अने ज्योतिषीनुं (उ० आयुष्य) १ लाख वर्ष अधिक १ पल्योपम छे,

विस्तरार्थः—तिदिणग्गि-अग्निकायना एक जीवनुं उत्कृष्ट आयुष्य३दिवसनुं छे,अने तिपल्लाउ नरतिरि-मनुष्यनु आयुष्य ३ पल्योपमनु कह्युं ते देवकुरु उत्तरकुरुनां युगलिक मनुष्योनु सदाकाळ अने भरत-ऐरवत क्षेत्रमां अवसर्पिणी काळे १ ला आराना अने उत्सर्पिणि काळे छट्ठा आराना मनुष्योनुं जाणवुं,पुनः ए युगलिकोनु जघ० आयुष्य पल्योपमनो असंख्यातमो भाग न्यून ३ पल्योपम छे (एम प्रश्नोत्तर सार्धशतकमां कह्युं छे.) क्रोडपूर्वथी अधिक आयुष्यवाळा युगलिक मनुष्यो होय छे, अने तेओ असंख्य वर्षना आयुष्यवाळा गणाय छे,ने क्रोडपूर्व सुधीना आयुष्य वाळा ते संख्यात आयुष्यवाळा गणाय एवो शास्त्रव्यवहार छे. वळी अपर्याप्ता युग० मनुष्योनु जघ० आयुष्य अन्तर्मु० मात्रजछे. तथा जे प्रमाणे मनुष्यनु उत्कृष्ट आयुष्य युग० मनु० आश्रयि कह्यु ते प्रमाणे ग० तिर्यंचनुं उ० आयुष्य पण युग० तिर्यंच सिंहादिकनी अपेक्षाए जाणवुं शेष सर्व वक्तव्य मनुष्यवत् विचारवुं.

सुरनिरयसागरतित्तीसा—वैमानिक देव अने नारकनुं आयुष्य उत्कृष्टथी ३३ सागरोपम छे, ते सातमी नरकना नारक अने अनुत्तर देवोने आश्रयि कह्युं, अने शेष सौधर्मादिकल्पमां आगळ यन्त्रमां कह्युं छे, ते प्रमाणे जाणवुं.

वन्तरपल्लं—व्यन्तरनु १ पल्योपम आयुष्य छे, ते

जोइस वरिसलक्खाहियं पलियं—ज्योतिषी देवनु लाख वर्ष अधिक १ पल्योपम उत्कृष्ट आयुष्य छे,

अहिं देवोमां सर्व इन्द्रोनुं, अने देवीयोमां सर्व इन्द्राणीयोनु

अवश्य उत्कृष्ट आयुष्य होय अने प्रजा देव-देवीयोनुं (ज्योतिषी सिवाय) सर्व प्रप्रकारे आयु० होय,

---

अवतरण—आ गाथामां पण (भुवनपति-ने विकलेन्द्रियो-नुं) आयुष्य कहेवाय छे,

मूळ गाथा २८ मी,

असुराण अहिय अयरं, देसूणदुपल्लयं नव निकाए
बारस वासुणपणदिण, छम्मासुक्किठ विगलाऊ ॥२८

॥ संस्कृतानुवादः ॥

असुराणामधिकमतरं, देशोनद्विपल्यं नव निकायेषु ।
द्वादशवर्षोनपंचाशत्दिनषण्मासा उत्कृष्टं विकलायुः २८॥

॥ शब्दार्थः ॥

असुराण-असुरकुमारोनु	वास-वर्ष
अहिय-कंइक अधिक	उण-१ न्यून } —४९
अयरं-१ सागरोपम	पण-पचास }
देसूण-कंइक न्यून	दिण-दिवस
दुपल्लं-बे पल्योपम	छम्मास-६ मास
नव-नव (९)	उक्किट्ठ उत्कृष्ट
निकाए-निकायमां (भेदमां)	विगल-विकलेन्द्रियोनु
बारस-बार	आऊ-आयुष्य

गाथार्थः—असुरकुमार (निकाय) नु कंइक अधिक १ सागरोपम (उत्कृ० आयुष्य) छे, अने (शेष)नव निकायोनुं

आयुः) कंइक न्यून २ पल्योपम छे, तथा विकलेन्द्रियोनु उत्कृष्ट आयुष्य (अनुक्रमे) १२ वर्ष-४९-दिवस ने ६ मास (जेटलुं) छे,

विस्तरार्थः—सुगम छे, विशेष आगळ आपेला यन्त्र जुओ.

अवतरण—आ गाथामां (पृथ्व्यादि १० पदोनुं तथा भवन० नारक ने व्यन्तरोनु जघ० आयुष्य कहेवाय छे.

मूळ गाथा २९ मी.

पुढवाइ दस पयाणं, अन्तमुहुत्तं जहन्न आउठिई ।
दस सहस वरसठिइआ, भवणाहिव निरयवंतरिया २९

संस्कृतानुवादः

पृथ्व्यादिदशपदाना- मन्तर्मुहूर्त्तंजघन्यमायुःस्थितिः ।
दशसहस्रवर्षस्थितिका, भवनाधिपनैरयिकव्यन्तराः ॥२९॥

शब्दार्थः

पुढवाइ-पृथ्विकाय विगेरे	दससहस-दश हजार
दस-दश (१०)	वरिस-वर्ष
पयाणं-पदोनु-दंडकोनुं	ठिइआ-आयुष्यवाळा
अन्तमुहुत्तं-अन्तर्मुहूर्त्त	भवणाहिव-भवनपति
जहन्न-जघन्य-अति अल्प	निरय-नारक
आउठिइ-आयुष्यनी स्थिति	वन्तरिया-व्यन्तरो

गाथार्थ—पृथ्विकाय वगेरे १० दंडकोनी जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त छे, अने भवनपति-नारक-ने व्यन्तरो (जघ० थी) १०००० वर्षना आयुष्यवाळाछे,

विस्तरार्थः—सुगम छे, विशेष आगळ आपेलो यन्त्र जुओ.

॥ देवोनुं आयुष्य ॥

देवोनुं	जघ०	उत्कृष्ट
द० असुर० देवोनुं	१० हजार वर्ष	१ सागरो०
द० " देवीनुं	"	३॥ पल्यो०
उ० " देवनुं	"	साधिक १ सागरो०
उ० " देवीनुं	"	४॥ पल्यो०
द० ९ निकायदेवनुं	"	१॥ पल्यो०
द८ " देवीनुं	"	०। पल्यो०
उ० " देवनुं	"	देशूण २ पल्यो०
उ० " देवीनुं	"	" १ पल्यो०
व्यन्तर देवनुं	"	१ पल्यो०
व्यन्तर देवीनुं	"	०॥ पल्यो०
चन्द्र इन्द्रनुं	—	१ लाखव वर्षाधिक १ पल्योपम
चन्द्रनी प्रजादेवनुं	१० हजार वर्ष	"
सूर्य इन्द्रनुं	—	१००० वर्षाधिक १ पल्यो०
सूर्यना प्रजादेवोनुं	१०००० वर्ष	"

॥ दंडकेषु आयुद्धारवर्णनम् ॥

ग्रह अधिपतिनुं	—	१ पल्यो०
ग्रह देवोनुं	१०००० वर्ष	,,
नक्षत्र अधिपतिनुं	—	०॥ पल्यो०
नक्षत्र देवोनुं	१०००० वर्ष	०॥ पल्यो०
तारा अधिपतिनुं	—	साधिक ०। पल्यो०
तारा देवोनुं	१००००० वर्ष	,,
सूर्यनी इन्द्राणीनुं	—	सूर्यथी अर्ध
सूर्य [1]देवीयोनुं	१०००० वर्ष	,,
चन्द्रनी इन्द्राणीनुं	—	चन्द्रथी अर्ध
चन्द्र देवीयोनुं	१० हजार वर्ष	,,
ग्रहाधिपति देविनुं	—	ग्रहथी अर्ध
ग्रह देवीयोनुं	१०००० वर्ष	,,
नक्षत्राधिपति देवीनुं	—	नक्षत्रथी अर्ध
नक्षत्र देवीयोनुं	१०००० वर्ष	,,
ताराधिपति देवीनुं	—	ताराथी अर्ध

१. अहिं देवीयो ते प्रजा देवीयो जाणवी.

तारा देवीयोनुं	१०००० वर्ष	,,
अधो किल्विषिकनुं	१ पल्यो०	३ पल्योपम
सौधर्म देवोनुं	१ पल्यो०	२ सागरो०
ईशान देवोनुं	साधिक १ पल्यो०	साधिक २ सागरो०
सौध० इन्द्रनुं	—	२ सागरो०
ईशान इन्द्रनुं	—	साधिक २ सागरो०
सौध० परिगृहीता देवीनुं	१ पल्यो०	७ पल्यो०
सौधर्म अपरिगृहीता देवीयोनुं	,,	५० पल्यो०
ईशाने परिगृहीता देवीयोनुं	साधिक १ पल्यो०	९ पल्यो०
ईशाने अपरिगृहीता देवीयोनुं	,,	५५ पल्यो०
मध्य किल्बिषिकोनुं	२ सागरो०	३ सागरो०
सनत् कुमारेन्द्र	,,	७ सागरो०
सनत् कु० देवोनुं	२ सागरो०	,,

१ अहिंथी आगळ देवीओनी उत्पत्ति नथी माटे आयुष्य पण कह्युं नथी.

माहेन्द्र ¹देवोनुं	साधिक २ साग०	साधिक ७ सागरो०
ब्रह्म देवोनुं	७ सागरो	१० सागरो०
९ लोकांतिनुं	८ "	८ "
उर्ध्वकिल्बिषिकोनुं	१० "	१३ "
लांतक देवोनुं	१० सागरो०	१४ "
शुक्र देवोनुं	१४ सागरो०	१७ "
सहस्रार देवोनुं	१७ सागरो०	१८ "
आनत देवोनुं	१८ "	१९ "
प्राणत देवोनुं	१९ "	२० "
आरण देवोनुं	२० "	२१ "
अच्युत ²देवोनुं	२१ "	२२ "
१ ली ग्रैवेयकनु³	२२ "	२३ "
२ जी "	२३ "	२४ "
३ जी "	२४ "	२५ "

* विचार सप्ततिका ग्रन्थे.

१-२ ए नव देवलोकना इन्द्रोनुंमात्र उत्कृष्ट आयुष्यज छे.

३ अहिंथी आगळ सर्वत्र देवोज छे पण इन्द्रादि भेद नथी

४ थी ”	२५ ”	२६ ”
५ मी ”	२६ ”	२७ ”
६ ठी ”	२७ ”	२८ ”
७ मी ”	२८ ”	२९ ”
८ मी ”	२९ ”	३० ”
९ मी ”	३०	३१ ”
४ अनुत्तरे	३१ ”	३३ ”
सर्वार्थसिद्धे	—	३३ ”

॥ नारकनुं आयुष्य ॥

पृथ्विमां	जघ०	उ०
रत्नप्रभामां	१०००० वर्ष	१ सागरो०
शर्कराप्रभामां	१ सागरो०	३ "
वालुकाप्रभामां	३ "	७ "
पंकप्रभामां	७ "	१० "
धूमप्रभामां	१० "	१७ "
तमःप्रभामां	१७ "	२२ "
तमस्तमःप्रभामां	२२ "	३३ "

ए प्रमाणे वैमानिक देवो उत्कृष्ट आयुष्य सर्वथी उपरना प्रतरमां जाणवुं अने नारकोनु उ० आयुष्य सर्वथी नीचेना प्रतरमां जाणवुं, अने ज्यां १ ज प्रतर होय त्यां केटलाएकनु जघ० ने केटलाएकनु उत्कृष्ट जाणवुं, शेष प्रतरोमां केटलुं आयुष्य छे तेनो विस्तार सिद्धान्तादिकथी जाणवो.



॥ मनुष्यनुं आयुष्य ॥

मनुष्योनुं	जघन्य०	उत्कृष्ट
देवकुरुमां पर्या०नुं	देसूण ३ पल्यो०	संपूर्ण ३ पल्यो०
उत्तरकुरुमां ”	”	”
हरिवर्षमा ”	देसूण २ पल्यो०	संपूर्ण २ पल्यो०
रम्यक्मां ”	”	”
हिमवंत ”	देसूण १ पल्यो०	संपूर्ण १ पल्यो०
हिरण्यवंत ”	”	”
अन्तर्द्वीपोमां ”	देसूण पल्योपमासंख्येय भागः	पल्योपमासंख्येय भागः
महाविदेहमां ”	अन्तर्मु०	पूर्वक्रोड वर्ष
भरत-ऐरवत ”	अन्तर्मु०	३ पल्योपम
संमु० मनुष्य	लघु अन्तर्मु०	अन्तर्मु०
अपर्याप्त युगलिकोनुं	अन्तर्मु० लघु	अन्तर्मु०

अहिं देसूण एटले पल्योपमनो असंख्यातमो भाग न्यून जाणवो.

॥ तिर्यंचोनु अयुष्य ॥

तिर्यंचनुं	जघ०	उत्कृ
सर्व सूक्ष्मस्थावरनुं	अन्तर्मु०	अन्तर्मु०
बादर पृथ्विनुं	”	२२००० वर्ष
बादर अप्नु	”	७००० वर्ष
बादर अग्निनुं	”	३ दिवसनुं
बादर वायुनुं	”	३००० वर्ष
बादर साधारणवनुं०	”	अन्तर्मु०
बादर प्रत्येकवन०	”	१०००० वर्ष
द्वीन्द्रियनुं	”	१२ वर्ष
त्रीन्द्रियनुं	”	४९ दिवस
चतुरिन्द्रियनुं	”	६ मास
गर्भज जळचरनुं	”	पूर्वक्रोड वर्ष
गर्भज स्थलचरनुं	”	३ पॅल्योपम

१ मनुष्यायुष्य आयन्त्रमां लख्या प्रमाणे युगलिक स्थलचरोनां ३-२-१ पल्यो०—पल्योपमासंख्येय भाग आयुष्य उत्कृष्ट तथा जघन्यथी देसूण विचारवां.

गर्भज उरःपरिसर्पनुं	”	पूर्वक्रोडवर्ष
गर्भज भुजपरिसर्पनुं	”	”
गर्भज खेचरनुं	”	पल्यो०नोअसंख्यातमो भाग
संमु० स्थलचरनुं	”	८४००० वर्ष
संमु० जळचरनुं	”	पूर्वक्रोड वर्ष
संमु० उरःपरि०नुं	”	५३००० वर्ष
संमु० भुजपरि०नुं	”	४२००० वर्ष
संमु० खेचरनुं	”	७२००० वर्ष
अपर्या० तिर्यंच०नुं	”	अन्तर्मु०

अवतरण—आ गाथाना पूर्वार्धमां बाकी रहेला दंडकोनुं ज- घ० आयुष्य अने उत्तरार्धथी दंडकोमां पर्याप्तिद्वार कहेवाय छे.

॥ मूळ गाथा ३० मी. ॥

वेमाणिअजोइसिया, पल्लतयट्ठंसआउआ हुंति ।
सुरनरतिरिनिरएसु, छपज्जत्ती थावरे चउगं ॥३०॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

वैमानिकज्योतिष्काः पल्यतदष्टांशायुष्का भवन्ति ।
सुरनरतिर्यग्नैरयिकेषु, षट् पर्याप्तयः स्थावरे चतुष्कं ॥३०॥

॥शब्दार्थः॥

वेमाणिय–वैमानिकदेवो
जोइसिया–ज्योतिषीदेवो
पल्ल–१ पल्योपम
तयट्ठंस–तेनो(पल्यो०नो) आठमो भाग)
आउआ–आयुष्यवाळा
हुंति—छे
सुर–देवोने
नर—मनुष्योने
तिरि—तिर्यंचोने
निरएसु–नारकोने
छ–६ (छ)
पज्जत्ती–पर्याप्तियो
थावरे–स्थावरोने
चउगं–४ पर्याप्तियो

गाथार्थः—वैमानिक देवो (जघ० थी) १ पल्योपमना, अने ज्योतिषी देवो (जघ० थी) पल्योपमना आठमा भाग जे- टला आयुष्यवाळा छे, देव–मनुष्य–तिर्यंच अने नारकोने ६ पर्या- प्ति छे. अने स्थावरोने ४ पर्याप्तियो छे,

विस्तरार्थः—वेमाणिय जोइसिया पल्ल तयट्ठंसआ- उआ हुन्ति—वैमानिकनु जघ० आयुष्य १ पल्योपम ते सौधर्म देवलोकना देवोने आश्रयि जाणवुं. अने ज्योतिषीनु आयुष्य प- ल्योपमनो आठमो भाग छे ते ताराना विमानवासी देवोनी अपे-

क्षाए जाणवुं, शेष देवोने एथी अधिक आयुष्य छे ते संबन्धि वि-
शेषता ग्रन्थमां कही छे,

सुरनरतिरिनिरएसु छ पज्जत्ति—देवोने, गर्भज मनुष्योने
–गर्भज तिर्यंचोने अने नारकोने ए सर्व जो लब्धि पर्याप्ता होय
तो तेओने ६ पर्याप्तियो होय छे,

थावरे चउगं----लब्धिपर्याप्त स्थावरोने आहाने--शरीर--इ-
न्द्रिय अने उच्छवास ए ४ पर्याप्ति होय छे,

अवतरण—आ गाथामां विकलेन्द्रियोने पर्याप्ति तथा
सर्व दंडके कइ दिशिनो आहार होय ? ते कहेवाय छे,

॥मूळ गाथा ३१ मी.॥

विगले पंच पज्जत्ती, छद्दिसि आहार होइ सव्वेसिं
पणगाइपए भयणा, अह सन्नतियं भणिस्सामि ॥३१॥

॥संस्कृतानुवादः॥

विकले पंच पर्याप्तयः षट्दिगाहारो भवति सर्वेषां ।
पनकादिपदे भजना, अथ संज्ञात्रिकं भणिष्यामि ॥ ३१ ॥

॥शब्दार्थः॥

---

१ देवोने सिद्धान्तमां (—श्री भगवती जी मां) ५ पर्या-
प्तियो पण कही छे, परन्तु भाषा अने मन पर्याप्ति एक स-
मयमां समकाळे उत्पन्न थवाथी ए बे पर्याप्तिने एक गणा छे.
माटे वस्तुतः तो देवने ६ पर्याप्तिज कहेवाय, पुनः अनुत्तर
वासी देवोने शब्दोच्चार करवा जरुर नहिं होवाथी शब्दो-
च्चार करता नथी परन्तु शक्तिरूप वचन पर्याप्ति छे.

तथा श्री विचारसप्ततिकामां देवने नारकने बन्नेने मूळ
वैक्रिय तथा उत्तर वैक्रिय संबन्धि उपरोक्त रीते ५–५ प-
र्याप्तियो कही छे.

विगले-विकलेन्द्रियोने
पंच—पांच
पज्जत्ती-पर्याप्ति
छद्दिसि-छ दिशाओथी
आहार-आहार
होइ-छे
सव्वेसिं-सर्वदंडकोने
पणगाइ-पांच दिशि इत्यादिक
[अथवा सू०वनस्पत्यादि]
पदे-स्थानकमां
भयणा-भजना-विकल्पे
अह—हवे
सन्न-संज्ञा
तियं-त्रण
भणिस्सामि-कहीश

गाथार्थः—विकलेन्द्रियोने पांच पर्याप्ति छे. ६ दिशिथी आवेलो आहार सर्व जीवोने होय छे पण पांच दिशि इत्यादि (त्रण) पदमां (–५ दिशि–४ दिशि–ने ३ दिशि ए ३ पदमां) विकल्पे छे, बीजो अर्थ—सर्व जीवोने ६ दिशिथी आवेलो आहार होय छे, पण सू० वनस्पत्यादि (पांच) स्थानकोमां विकल्पे छे, हवे त्रण संज्ञाओनुं द्वार कहीश.

विस्तरार्थः—विगले पंचपज्जत्ती विकलेन्द्रियोने आहार --शरीर--इन्द्रिय--उच्छ्वासने भाषा ए पांच पर्याप्ति छे, कारणके ए जीवोने जीह्वाइन्द्रिय अने मुख होवाथी अव्यक्त उच्चार करी शके छे, अने सम्मूर्च्छिम होवाथी मननो अभाव छे माटे मनः-पर्याप्ति होय नहिं.

तथा दंडकमां अनधिकृत सम्मू०मनुष्य आहार--शरीर--ने इन्द्रिय ए ३ पर्याप्तियो होय, अने सम्मू०तिर्यंच पंचे० ने विकले० वत् ५ पर्याप्तियो होय.

॥ इति पर्याप्तिद्वारम् ॥

......

हवे दिशि आहारद्वारमां प्रथम छद्दिसिआहार होइ सव्वेसिं-सर्व दंडकमां छए दिशिथी आवेलो ओज आहार अने लोम आहार होय, कारणके सर्वे दंडकना जीवो लोकनी अंदरना भागमां रह्या छे, परन्तु विशेष ए छे के पणगाइ पए-पनक एटले सूक्ष्म वनस्पति इत्यादि पांच पदमां (--सू० वन० बन्ने वायु--सू० अग्नि०-सू० अप्--ने सू० पृथ्विने) भयणा--भजना एटले विकल्पे, अर्थात् छ दिशिनोज आहार होय एवो नियम नहिं परन्तु ६--५--४--ने ३ दिशिनो आहार पण होइ शके, कारणके, ए जीवो लोकनी अंदरना भागमां अने लोकने अन्ते--किनारे पण रहेला छे. त्यां ६--५--४--३ दिशिनो आहार केवी रीते होय ? ते दर्शावाय छे—

लोकना सर्वथी नीचेना छेल्ला प्रतरोमां निष्कुट स्थाने खूणे रहेला एकेन्द्रिय जीव नीचे अलोकाकाशनो व्याघात होवाथी पुद्गल द्रव्यना अभावे अधो दिशिनो आहार न ग्रहण करे, अने दिशिमां पण अलोकाकाशना व्याघाते पुद्गलागमन नहिं होवाथी खूणानी बे पासनी बे दिशाओमांथी पण आहार न मेळवी शके माटे लोकनी नीचे छेडे रहेला जीवने ३ दिशानोज आहार मळी शके, अने एज प्रमाणे लोकना सर्वोपरि अन्ते निष्कुटस्थाने खूणामां वर्तनो एकेन्द्रिय जीव बे दिशीथी अने ऊर्ध्व दिशीथी आहार न मेळवी शके माटे बे रीते ३ दिशिनो आहार एकेन्द्रियोने ज होय.

लोकना सर्वथी नीचेना छेल्ला प्रतरोमां निष्कुट स्थाने दि-

१ एकेन्द्रियोना २२ भेदमांथी वायु ने प्रत्ये० वन- सिवायना ८ बादरो नहिं होवाथी १२ भेद लोकने अन्ते रह्याछे एम श्री भगवती जीमां क ह्रे.यु

शिमां रहेलो एकेन्द्रियजीव नीचे अने एक पासनी दिशामां अलोकांकाश होवाथी बे स्थानेथी आहार मेळवी शके नहिं माटे ४ दिशिनो आहार करे. ए प्रमाणे सर्वोपरितन प्रतरोमां ऊर्ध्वदिशिथी अने एक पडखानी दिशिमांथी आहारना अभावे बे रीते ४ दिशिनो आहार होय.

तथा सर्वथी नीचे एकादि प्रतर छोडीने उपरनां प्रतरोमां लोकने अन्ते दिशामां रह्यो होय तो मात्र जमणी बाजूनी दिशाए अलोकनो व्याघात थवाथी पुद्गल ग्रहण नहिं करी शकवाथी पांच दिशिथी आवेलो आहार ग्रहण [1]करे,

अने लोकनी अंदरना भागमां रहेला एकेन्द्रियोने कोइपण दिशाए अलोकाकाशनो व्याघात नहिं नडवाथी छए [2]दिशिमांथी आहार मेळवी शके छे. ॥ ॥ इति आहारद्वारम् ॥ तथा सम्मू० ति० ने सम्मू० मनुष्यने ६ दिशिनो आहार होय अने जीवोना निराहारीपणानो समय आहारद्वारना वर्णन प्रसंगे कह्यो छे,

॥ इति आहारद्वारम् ॥

---

१ सर्वाधस्तन वा सर्वोपरितन प्रतरोमां लोकनो तीच्छान्ति भाग वर्जीने अंदरना भागमा रहेलो एके० जीव पण ऊर्ध्व वा अधोमांथी कोइपण एक दिशिनो आहार न मेळवी शकतो ए रीते पण पांचदिशीनो आहार संभवे छे परन्तु सिद्धान्तोमां उपर प्रमाणेनु दृष्टांत बतावेलुं होवाथी अहीं ते प्रमाणे लख्यु छे, तत्त्व केवलिमहाराज जाणे.

२ अहीं विदिशाओ एक प्रदेश श्रेणिरूप होवाथी तेटला एक प्रदेशरूप भागमां आहार होइ शके नहि कारण एक प्रदेश स्थित द्रव्य जीवग्राह्य होय नही. आहारदेशमां आवेलो विदिशानो एक प्रदेश बहुतम देशवालो दिशाओमांज गणाइ जतो होवाथी १० दिशानो आहार करेवाय नही.

अहसन्नितियं भणिस्सामि—हवे हुं हेतुवादोपदेशिकी-' दीर्घकालिकी-ने दृष्टिवादोपदेशिकी ए त्रण संज्ञाओमांनी कये दंडके केटली संज्ञाओ होय ते कहीश.

अवतरण—आ गाथामा दंडकोने विषे संज्ञाद्वार कहे छे.

॥मूळ गाथा ३२ मी.॥

चउविहसुरतिरिएसु, निरएसु य दीहकालिगी सन्ना
विगले हेउवएसा, सन्नारहिया थिरा सव्वे ॥३२॥

॥संस्कृतानुवादः॥

चतुर्विधसुरतिर्यक्षु, नैरयिकेषु च दीर्घकालिकी संज्ञा ।
विकले हेतूपदेशिकी, संज्ञारहिताः स्थिराः सर्वे ॥३२॥

॥शब्दार्थः॥

चउविह—चार प्रकारना	विगले—विकलेन्द्रियोमां
सुर—देव	हेउवएसा—हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा
तिरिएसु—तिर्यंचोमां	सन्नारहिया—संज्ञारहित
निरएसु—नारकोमां	थिरा—स्थावरो
य—अने	सव्वे—सर्वे
दीहकालिगी—दीर्घकालिकी संज्ञा	

गाथार्थः—चार प्रकारना देवो-तिर्यंचो-अने नारकोमां दीर्घकालिकी संज्ञा छे, विकलेन्द्रियोमां हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा छे. अने सर्वे स्थावरो संज्ञारहित छे,

विस्तरार्थः—सुगम छे.

अवतरण—आ गाथाना पूर्वार्धमां बाकी रहेला दंडकोए संज्ञा, अने उत्तरार्धमांथी आगति तथा गतिद्वार कहेवानां प्रारंभमां प्रथम देवमां आगतिद्वार कहे छे,

॥मूळ गाथा ३३ मी,॥

मणुआण दीहकालिय, दिट्ठीवाओवएसिया केवि ।
पज्जपणतिरिमणुअच्चिय,चउविह देवेसु गच्छंति॥३३॥

॥संस्कृतानुवादः॥

मनुष्याणां दीर्घकालिकी, दृष्टिवादोपदेशिकाः केऽपि ।
पर्याप्तपंचेन्द्रियतिर्यग्मनुजा एव चतुर्विधदेवेषु गच्छंति ।३३

॥शब्दार्थः॥

मणुआण—मनुष्योने
दीहकालिय—दीर्घकालिकीसंज्ञा
दिट्ठीवाओवएसिया—दृष्टि—वादोपदेशिकी संज्ञा
के—केटलाएक
ऽवि--पण-वळी-
पज्ज- पर्याप्त
पण—पंचेन्द्रिय
तिरि—तिर्यंचने
मणुअ—मनुष्य
च्चिअ-निश्चय
चउविह—चारप्रकारना
देवेसु—देवोमां
गच्छंति—जायछे

गाथार्थः—मनुष्योने दीर्घकालिकी संज्ञा छे. अने केटलाएक (मनुष्यो)ने तो दृष्टिवादोपदेशकी संज्ञा पण होय छे, ॥

पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच, अने पर्या० मनुष्यो ज चारे प्रकारना देवोमां जाय छे,

---

१ चोथी गाथामां द्वारोनो जे अनुक्रम दर्शाव्यो छे, ते मां प्रथम गतिद्वार अने बीजु आगतिद्वार कह्यु छे, ने अहिं दंडकोमां अवतारतां प्रथम आगतिद्वार अने त्यारबाद गतिद्वार कहेवाशे ए क्रमविपर्यय वक्तानी विवक्षाने आधारे होय छे.

विस्तरार्थः—मनुष्योने दीर्घका० संज्ञा कही पण ते सर्व गर्भज मनुष्यने छे, अने सम्मू० मनुष्यो तो मनरहित होवाथी हेतुवादो० संज्ञावाळाज छे, पुनः केटलाएक मनुष्योने जे दृष्टिवादो० संज्ञा कही ते संवन्धद्वार प्रसंगे कहयो छे, दृष्टिवादो० संज्ञा सम्यग्दृष्टिने ज होय छे,

तथा पर्या० पंचे० ति० अने मनुष्यज चारे प्रकारना देवोमां जाय. ए देवोमां आगति सामान्यथी कही, ने विशेषथी आ प्रमाणे--१० भवन, १६ व्य०, १५ परमाधामी, १० जृंभक, ए ५१ देवोमां १०१ प्रकारना लब्धिपर्याप्त मनुष्यो तथा युगलिक चतुष्पद सहित ५ गर्भज तिर्यंच लब्धिपर्याप्ता ने ५ सम्मू० तिर्यंच लब्धिपर्याप्त एटला जीवो (ए ५१ देवोमां) आवी उपजे. अने १० ज्योतिषी तथा सौधर्मकल्पमां अन्तर्द्वीप विना ४५ क्षेत्रना मनुष्यो ने ५ गर्भ० तिर्यंच ए ५० जीवो आवी उपजे छे, ईशानमां पूर्वोक्त ५० मांथी ५ हिमवन्त ने ५ हिरण्यवन्त क्षेत्रना युगलिक मनुष्य अने युगलिक तिर्यंच सिवायना ४० जीवो आवी उपजे, अधो किल्बिषिकमां १५ कर्मभूमिना संख्येय वर्षायुष्क (वधुमां वधु पूर्वक्रोड वर्षायुष्क) पर्या० ग० मनुष्यो, ५ देवकुरु ने ५ उत्तरकुरु क्षेत्रना युगलिक तिर्यंच अने युगलिक मनुष्यो तथा संख्येयायुष्क ५ गर्भज तिर्यंच लब्धिपर्याप्ता ए ३० जीवो आवी उपजे, तथा ३ जा थी ८ मा कल्पसुधीमां संख्येयायुष्क लब्धिपर्याप्त १५ कर्मभूमिना गर्भज मनुष्यो अने एज विशेषणवाळा ५ गर्भ० तिर्यंचो मळी २० जीवो उपजे,ने आनतथी सर्वार्थ सुधीमां उक्त विशेषणवाळा १५ कर्मभूमि मनुष्यो आवी उपजे.

अवतरण—आ गाथामां देवनुं गतिद्वार (—देवो मरण पामीने क्यां उपजे ? ते) कहे छे,

॥ मूळ गाथा ३४ ॥

संखाउपज्जपणिंदि, तिरियनरेसु तहेव पज्जत्ते ।
भूदगपत्तेयवणे, एएसु च्चिय सुरागमणं ॥ ३४ ॥

॥संस्कृतानुवादः॥

संख्ययेयायुष्कपर्याप्तपंचेन्द्रिय- तिर्यग्नरेषु तथैव पर्याप्तेषु।
भूदकप्रत्येकवनेषु, एतेष्वेव सुरागमनं ॥ ३४ ॥

॥शब्दार्थः॥

संखाउ–संख्यातवर्षना आयुष्यवाळा	भू–पृथ्वीकाय
पज्ज–पर्याप्त	दग–अप्काय
पणिंदि–पंचेन्द्रिय	पत्तेयवणे–प्रत्येक वन० कायमां
तिरिय–तिर्यंचमां	एएसु–ए ५ दंडकोमां
नरेसु–मनुष्यमां	च्चिय—निश्चय
तहेव–तेमज–तथा	सुर—देवनुं
पज्जत्ते–पर्याप्तमां	आगमणं–आववुं (–गति)

गाथार्थः—संख्यातवर्षना आयुष्यवाळा पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचमां अने (संख्या० पर्या० पंचे०) मनुष्यमां, तेमज पर्याप्त पृथ्वीकाय--अप्काय--अने प्रत्येकवनस्प० कायमां ए ५ दंडकोमां ज देवोनुं आववुं (उपजवुं) थाय छे.

विस्तरार्थः—संख्यात आयुष्यवाळा एटले कर्मभूमिमां उत्पन्न थयेला, वधुमां वधु क्रोडपूर्व वर्षना आयुष्यवाळा लब्धिपर्याप्त पंचेन्द्रिय गर्भज तिर्यंचोमां, कर्मभूमामां उत्पन्न थयेला वधुमां वधु क्रोडपूर्व वर्षना आयुष्यवाळा लब्धिपर्याप्त गर्भज मनुष्योमां, म-

वेंत्र उत्पन्न थती लब्धिपर्या० बादर पृथ्वी, लब्धिपर्या० बा० अप्, अने ल० पर्या० बा० प्रत्येक वनस्पतिमां ज देवोनुं आगमन(गति--उत्पत्ति) छे. कारणके देवो मरण पामीने अपर्याप्ता थता नथी, तेमज देवोच्यवीवमां अने नारकमां पण न जाय अने विकलेन्द्रियमां तथा अग्नि वायुमां उत्पन्न थतां नथी, ए प्रमाणे देव (ना १३) दंडक नी गति सामान्यथी कही, अने विशेष एज छे के भुवनपति--व्यन्तर--ज्योतिषि--सौधर्म- ने ईशान एटला देवलोकना देवोज पूर्वोक्त ५ स्थाने जाय छे, सनत् कुमारथी सहस्रार सुधीना देवो संख्येयायुष्क ल० पर्या० ग० तिर्यंच अने एज विशेषणवाळा ग० मनुष्योमां जाय छे आनतादिथी सर्वार्थ सुधीना देवो फक्त कर्मभूमिमां संख्यात आयुष्यवाळा पर्याप्त गर्भज मनुष्योमांज जाय छे, पुनः प्रत्येक वनस्पतिमां जे देवो उत्पन्न थाय छे, ते पण अमुकज उत्पन्न थाय छे ते संबन्धि विशेष विगत श्री भगवतीजीमां अथवा द्रव्यलोकप्रकाशमां छे त्यांथी जाणवी.

पुनः केटलाएक देवोने जेओ प्रथमथी जाणे छे के मारे अमुक वृक्षमां उत्पन्न थवानुं छे तो ते देवो मान दशाना वशथी ते वृक्षनो दैविक चमत्कार दर्शावी लोकोमां पूजनीक करे छे, ने ते वृक्षनो महिमा वधारे छे,



अवतरण—आ गाथामां नारक जीवोनी आगति तथा गति (—कया कया जीवो नारकगतिमां आवे. अने नारको मरण पामीने कइ कइ गतिमां जाय ते) कहे छे.

॥ मूळ गाथा ३० मी. ॥

पज्जत्तसंखगब्भय, तिरियनरा निरयसत्तगे जन्ति ।
निरयउवट्टा एएसु, उववज्जंति न सेसेसु ॥ ३५ ॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

पर्याप्तसंख्येयायुर्गर्भजतिर्यग्नरा नरकसप्तके यान्ति ।
नरकोद्वृत्ता एतेषूपपद्यन्ते न शेषेषु ॥ ३५ ॥

॥शब्दार्थः॥

पज्जत्त—पर्याप्त
संख-संख्यात आयुष्यवाळा
गब्भय—गर्भज
तिरिय-तिर्यंच
नरा—मनुष्यो
निरय-नरकमां
सत्तगे—सात (मां)
जन्ति—जाय छे,
निरय—नरकमांथी
उवट्टा—नीकळेला जीवो
एएसु—ए बन्नेमां
उववज्जन्ति—उपजे छे
न—नथी उपजता
सेसेसु-बाकीना दंडकोमां

गाथार्थः—पर्याप्त संख्यात आयुष्यवाळा गर्भज तिर्यंच अने पर्या० संख्यायुष्यवाळा गर्भज मनुष्यो साते नरकमां जाय छे, ए नारकनी आगति कही, अने नरकमांथी निकळेला (अर्थात्) नारको ए बेमां ज उपजे छे पण बाकीना (२२) दंडकोमां उपजता नथी ए नारकनी गति कही,

विस्तरार्थः—पर्याप्त संख्यात आयुष्यवाळा गर्भज तिर्यंचो अने एज विशेषणवाळा ग० मनुष्यो सात नरकमां जाय ए नारकमां आगति सामान्यथी कही, अने विशेषथी आ प्रमाणे—

रत्नप्रभामां—१५ कर्म० मनु०—५ ग० नि०—५ समु०

ति०-ए २९ लब्धिपर्याप्ता आवे, युगलिक मनुष्य वा तिर्यंचोनी अवश्य देवगति होवाथी तेओ नरकमां उपजता नथी.

शर्कराप्रभामां—१५ कर्म० मनु०-ने ५ ग० ति०-२०

वालुकाप्रभामां--१५ कर्म० मनु०, ने भुजपरि० विना ४ गर्भज तिर्यंच ए १९ लब्धिपर्या० जीवो आवे.

पंकप्रभामां—१५ कर्म० मनु०, ग० जल०-ग० थल० ने ग० उर० ए १८ ल० पर्या० जीवो आवे.

धूमप्रभामां—१५ कर्म० मनु० ग० जल०-ग० थल०-१७

तमप्रभामां—१५ कर्म० मनु०-ग० जल० १६

तमतमप्रभामां—स्त्रीविना १५ कर्म० मनु०-ग०जल०-१६

ए प्रमाणे नारकजीवोमां आगति कहीने हवे नारक जीवो क्यां उत्पन्न थाय ? ते नारकनी गति कहे छे,

रत्नप्रभादि ६ नी---लब्धिपर्याप्त संख्येयायुष्क गर्भ० मनुष्यो १५ कर्मभूमिना, अने एज विशेषणवाळा गर्भ० तिर्यंच पंचेन्द्रिय पांच ए २० भेदमां जाय, नारको मरण पामीने लब्धि अपर्या० न थाय. ॥ इति नारकगत्यागतिः ॥

अवतरण—आ गाथामां पृथ्वि-अप्-अने वनस्पतिनी (मां कइ कइ गतिना जीव आवे ते) आगति कहे छे.

॥मूळ गाथा ३१ मी.॥

पुढवी आउवणस्सइ--मज्झे नारयविवज्जिआ जीवा ।
सव्वे उववज्जंति, नियनियकम्माणुमाणेणं ॥ ३६ ॥

॥संस्कृतानुवादः॥

पृथ्व्यब्वनस्पतिमध्ये नारकविवर्जिता जीवाः ।
सर्वे उपपद्यन्ते निजनिजकर्मानुमानेन ॥ ३६ ॥

॥शब्दार्थः॥

पुढवी-पृथ्विकाय	जीवा-जीवो
आऊ—अपूकाय	सव्वे-सर्वे जीवो
वणस्सइ-वनस्पतिकाय	उववज्जन्ति—उत्पन्न थाय छे,
मज्झे—मध्ये-मां	नियनिय-पोतपोताना
नारय-नारक	कम्माणुमाणेणं-कर्मने अनुसारे
विवज्जिया—वर्जीने-सिवायना	

गाथार्थः—पृथ्विकाय-अपूकाय-ने वनस्पति मध्ये नारक सिवायना सर्वे जीवो पोत पोताना कर्मने अनुसारे उत्पन्न थाय छे, (ए पृथ्व्यादि ३ मां आगति कही.)

विस्तरार्थः—आ गाथामां पृथ्व्योदि ३ दंडकमां आगति सामान्यथी कहीने विशेषथी आ प्रमाणे--

प० पृथ्वि-अप्-ने प्र० वन०स्पतिमां—४८ तिर्यंच-१०१ सम्मू० मनुष्य कर्मभूमिना पर्या० अपर्या० मली ३० मनुष्य-१५ परमाधामी-१० भवनपति-१६ व्यन्तर-१० जृंभक-१० ज्योतिषी-सौधर्म-ईशान-अधो किल्बिषिक ए प्रमाणे २४३ जीवो ए ३ लब्धिपर्याप्तमां आवी उपजे.

अपर्या० पृ० अप्-प्र० वन० तथा सर्व साधा० वनस्पतिमां ४८ तिर्यंचो तथा ३० कर्म० मनुष्यो, १०१सम्मू० मनुष्यो आवी उपजे छे, ए प्रमाणे ए ३ दंडकमां पूर्वोक्त दंडकना जीवभेदो पोत पोताना कर्मने[1] अनुसारे (-कर्मना वशथी) उत्पन्न थाय छे, ए चोथा चरणमां जीवोने परभव जवामां ईश्वरप्रेरणाना लौकिक मतनुं निवारण कर्युं जाणवुं.

---

१ कर्मने अनुसारे कहेवाथी जे केटलाक वादीओ ईश्वरेच्छा अथवा ईश्वरप्रेरणाथी गत्यागति करे छे तेम कहे छे तेनुं खंडन कर्युं कारण इच्छा अथवा प्रेरणा सकर्मजीवनुं कार्य छे, अने कर्म रहित थया विना ईश्वर कही शकाय नही

अवतरण—आ गाथाना पूर्वार्धमां पृथ्वी-अप्-ने वनस्पति जीवो मरण पामीने कइ गतिमां उपजे ? (ए त्रणनी गति) ते अने उत्तरार्धमां तेउकाय-वायुकायमां कया जीवो आवे ? (ए वेनी आगति) कहेवाय छे,

॥मूळ गाथा ३७ मी,॥

पुढवाइदसपएसु, पुढवीआऊवणस्सई जन्ति ।
पुढवाइदसपएहि य, तेऊवाऊसु उववाओ ॥ ३७॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

पृथ्व्यादिदशपदेषु पृथ्व्यापो वनस्पतयो यान्ति
पृथ्व्यादिदशपदेभ्यश्च तेजोवाय्वोरुपपातः ॥ ३७ ॥

॥ शब्दार्थः ॥

पुढवाइ-पृथ्विकाय विगेरे	पुढवाइ--पृथ्विकाय विगेरे
दस-दश	दस--दश
पएसु--पदोमां--स्थानमां	पएहि--पदमांथी-स्थानमांथी
पुढवी--पृथ्विकाय	य--वळी
आऊ- अप्काय	तेउ--अग्निकाय
वणस्सइ--वनस्पतिकाय	वाऊसु--वायुकायमां-
जन्ति--जाय छे.	उववाओ--उपजवुं-उत्पत्ति-आगति

गाथार्थः—पृथ्विकाय विगेरे १० स्थानमां पृथ्वि-अप्-अने वनस्पतिकाय जाय छे, अग्निकाय अने वायुकायमां पृथ्वि-काय विगेरे १० स्थानकथी (जीवोनुं) उपजवुं (आववुं) थाय छे

विस्तरार्थः—पृथ्वि-अप्-ने वनस्पतिजीवो पृथ्वि-अप्-अग्नि-वायु-वनस्पति-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-ग० तिर्यं-

च–ने ग० मनुष्य ए १० स्थानमां जाय छे, परन्तु विशेष ए छे के—ए ३ जीवो कर्मभूमिना ३० मनुष्यभेदोमां १०१ सम्मू० मनु०मां, ने ४८ तिर्यंचमां मली १७९ जीवभेदमां उत्पन्न थाय छे, पण युगलिकोमां जता नथी. पृथ्व्यादि ३ नी गति कही,

हवे अग्नि अने वायुमां आगति कहे छे के पृथ्व्यादि १० पदमांथी नीकळीने जीवो अग्नि अने वायुमां उपजे छे, त्यां १०१ सम्मू० मनुष्य, ३० कर्म० मनुष्य, ने ४८ तिर्यंच ए १७९ जीव भेद अग्नि-- वायुमां आवी शके छे, पण युगलिको आवता नथी,

॥ इति अग्निवायुमां आगति ॥

अवतरण—आ गाथाना पूर्वार्धमां अग्नि अने वायु मरण पामीने क्यां जाय ? (–अग्नि-वायुनी गति ते), अने उत्तरार्धमां विकलेन्द्रियोनी आगति तथा गति कहेवाय छे.

॥मूळ गाथा ३८ मी,॥

तेऊवाऊगमणं, पुढवीपमुहंमि होइ पयनवगे ।
पुढवाइठाणदसगा, विगलाइतियं तहिं जन्ति ॥३८॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

तेजोवायुगमनं, पृथ्वीप्रमुखे भवति पदनवके ।
पृथ्व्यादिस्थानदशकाद् विकलत्रिकं तत्र यान्ति ॥ ३८ ।

॥ शब्दार्थः ॥

तेऊ--अग्निकाय
वाऊ--वायुकायनुं
गमणं--गति-जवुं
पुढवी -पृथ्विकाय
पमुहम्मि--वगेरेमां
होइ--छे,

पयनवगे--नव स्थाने	विगलाइ–विकलादि
पुढवाइ--पृथ्विकाय विगेरे	तियं–त्रिक
ठाण--स्थान-पद	तहिं--त्यां (पृथ्व्यादि १० स्थानमां)
दसगा--दशमांथी	जंति-जाय छे,

गाथार्थ—अग्निकाय अने वायुकायनी गति पृथ्विकाय विगेरे नव स्थानकमां होय छे, विकलेन्द्रियो पृथ्विकाय विगेरे १० स्थानमांथी आवे छे, अने (पुनः) त्यांज (पृथ्व्यादि १० स्थानमां) जाय छे.

विस्तरार्थः—अग्नि ने वायुनी गति पृथ्व्यादि ९ पदमां (--४८ तिर्यंचमां) छे,

तथा विकलेन्द्रियमां आगति—पृथ्व्यादि १० पदथी कही ते पृथ्व्यादि ३ दंडकवत् १७९ जीवभेदथी जाणवी. तथा विकले० नी गति पण तेवीज रीते १७९ जीवभेदोमां जाणवी

गाथामां पुढवाइठाणदसगा विगलाइ तियं एटलां पदथी विकलेन्द्रियोनी आगति कहे छे, अने विगलाइतियं तहिं जंति ए पदथी विकले० नी गति कही छे. त्यां विगलाइतियं ए पद डमरुकमणि न्यायथी बन्ने बाजु लागी शके छे.

....

अवतरण—आ गाथाना पूर्वार्धमां गर्भजतिर्यंचोनी आगति तथा गति, अने उत्तरार्धमां गर्भज मनुष्योनी आगति तथा गति कहे छे,

॥मूळ गाथा ३९ मी.॥

गमणागमणं गब्भय--तिरियाणं सयलजीवठाणेसु ।
सव्वत्थ जन्ति मणुआ, तेउवाऊहिं नो जन्ति ॥३९॥

॥संस्कृतानुवादः॥

गमनागमनं गर्भजतिरश्चां सकलजीवस्थानेषु
सर्वत्र यान्ति मनुजास्तेजोवायुभ्यां नो यान्ति ॥ ३९ ॥

॥शब्दार्थः॥

गमण-गति- जवुं	सव्वत्थ-सर्व स्थानके
आगमणं-आववुं	जंति-जाय छे,
गब्भय-गर्भज	मणुआ-मनुष्यो
तिरियाणं-तिर्यंचोनुं	तेउ-अग्निकायमांथी
सयल-सकल-सर्व	वाऊहिं-वायुकायमांथी
जीवठाणेसु जीवस्थानोमां (जीवभेदोमां)	नो-नथी
	जंति-जाय छे

गाथार्थः—गर्भज तिर्यंचोनी गति आगति सर्व जीवभेदोमां होय छे, (ग० तिर्यंचो सर्व जीवभेदोमां जाय छे), मनुष्यो सर्व जोवभेदोमां जाय छे, (अने सर्व जीवभेदोमांथी आवे छे परन्तु) अग्नि अने वायुमांथी जता (आवता) नथी.

विस्तरार्थः—गर्भज तिर्यंचोनी गति ने आगति सर्व जीव स्थानोमां छे एटले गर्भज तिर्यंचो सर्व दंडकमां उपजे छे, अने ग० ति० मां पण सर्व दंडकना जीव आवी उपजे छे. तोपण विशेष जीवभेदने आश्रयि ग० तिर्यंचनी गति आ प्रमाणे—

पर्या० ग० जलचर—आनतादि १८देवलोक सिवायना५२७ जीवभेदमां उत्पन्न थाय छे.

पर्या० ग० उरपरिसर्प—ऊर्ध्वना १८ देवलोक तथा ६-७ पृथ्वीना नारक सिवाय ५२३ भेदमां.

गर्भ० पर्या० चतुष्पद—ऊर्ध्व १८ देव०, तथा ५-६-७ पृथ्वि सिवाय ५२१ भेदमां

ग० पर्या० खेचर—ऊर्ध्व १८ देव०-तथा ४-५-६-७ पृथ्वि सिवाय ५१९ भेदमां

ग० पर्या० भुजपरि०—ऊर्ध्व १८ देव०—तथा ३—४—५—६—७ पृथ्वि सिवाय ५१७ भेदमां,

सम्मू० पर्या० तिर्यंच पंचे० ५—ज्यो० वै० सिवाय ५१ देवमां, ५६ अन्तर्द्वीपमां, रत्नप्र० मां, ३० कर्मभूमि मनु० मां, १०१ सम्मू० मनु० मां ने ४८ तिर्यंचमां पर्याप्त पणे ने अपर्याप्तपणे पण उपजे

तथा ए १० अपर्याप्त तिर्यंच पचेन्द्रियो ३० कर्म० मनुष्योमां १०१ सम्मू० मनु०मां, ने ४८ तिर्यंचमां उपजे ए प्रमाणे २० तिर्यंच पंचेन्द्रियोनी गति कहीने हवे २० ति० पंचे० नी आगति कहेवाय छे,

५ पर्या० ग० तिर्यंचमां—१०१ सम्मू० मनु०, ३० कर्म० मनु०, ४८ ति, १५ परमा०, १० भुव०, १६ व्य०, १०जृं०, १० ज्योतिषी, ३ किल्बि०, ९ लोकां, ८ कल्प, ने ७ नारकना जीवो आवी उपजे,

५ अप० ग० तिर्यंचमां—१०१ सम्मू० मनु०, ३० कर्म० मनु०, ४८ ति०, एटला जीवो आवी उपजे.

१० सम्मू० तिर्यंच पंचे० मां—१०१ सम्मू० मनु०, ३० कर्म० मनु०, ने ४८ तिर्यंचो आवी उपजे.

ए प्रमाणे तिर्यंचोनी गत्यागति कहीने हवे ग० मनुष्योनी गत्यागतिमां प्रथम ग० मनु० नी आगति ने त्यारबाद गति कहेवाय छे,

१५ ग० पर्या० कर्म० मनु०—५६३ जीवभेदमां जाय,

३० पर्या० अकर्म० मनु०—१० भु०, १६ व्यं०, १५ परमा०, १० जृं०, १० ज्यो०, १ अधोकिल्बि०, सौ०, ने ईशान ए ६४ स्थाने जाय.

५६ पर्या० अन्तर्द्वीप मनु०—५१ देवोमां

१०१ अपर्या० ग० मनु० } ४८ तिर्यंच, ३० कर्म० मनुष्य,ने
१०१ सम्मू० मनु० } १०१ सम्मू० मनुष्योमां उपजे.

ए प्रमाणे मनुष्योनी गति कही ने हवे आगति कहे छे,

१५ ग० पर्या० कर्म मनु० मां—१५ कर्मभू० मनु०, अग्निने वायु विना सर्व सूक्ष्मबादर एकेन्द्रिय,३ विकले०, सर्वप्रकारना ति० पंचे०, १०१ सम्मू० मनुष्य, ९९ देव, अने प्रथम ६ पृथ्विना नारक आवी उपजे.

३० अकर्म मनु० मां—१५ कर्म० पर्या० मनु०, ने ५ ग० पर्या० ति० ए २०.

५६ अन्तर्द्वी० मनु० मां—१५ कर्म० पर्या० मनु०, १० पर्याप्त ति० पंचे० ए २५.

शेष सर्व मनुष्यमां—-१०१ सम्मू०, मनु०, तेउ० वायु विना शेष सर्व तिर्य०, ने १५ कर्म० मनुष्य आवी उपजे.

। इति गत्यागतिद्वारम् ॥

अवतरण—आ गाथामां सर्व दंडकने विषे वेदद्वार कहेवाय छे.

॥ मूळ गाथा ३४ ॥

वेयतिय तिरिनरेसु, इत्थि पुरिसो य चउविहसुरेसु ।
थिरविगल नारएसु, नपुंसवेओ हवइ एगो ॥४०॥

॥संस्कृतानुवादः॥

वेदत्रिकं तिर्यग्नरयोः स्त्री पुरुषश्च चतुर्विधसुरेषु ।
स्थिरविकलनारकेषु, नपुंसकवेदो भवत्येकः ॥४०॥

॥शब्दार्थः॥

वेय–वेद
तिय–त्रण
तिरिनरेसु–तिर्यंचमनुष्योमां
इत्थी–स्त्रीवेद
पुरिसो–पुरुषवेद य–अने
चउविह–चारप्रकारना
सुरेसु–देवोमां (देवोने)
थिर–स्थावर
विगल–विकलेन्द्रिय
नारएसु–नारकोमां (ने)
नपुंसवेओ–नपुंसक वेद
हवइ—छे
एगो—एक

गाथार्थः—तिर्यंच अने मनुष्योमां त्रण वेद छे, चार प्रकारना देवोमां स्त्रीवेद अने पुरुषवेद छे, अने स्थावर (एकेन्द्रिय) --विकलेन्द्रिय-तथा नारकोमां एक नपुंसकवेद ज छे.

विस्तरार्थः----तिर्यंच तथा मनु०मां ३ वेद कह्या त्यां सर्व सम्मू०मनुष्य तथा सम्मू०तिर्यंच पञ्चेन्द्रियने फक्त एक नपुंसकवेद होय, अने गर्भज जीवोमां केटलाएक पुरुषवेदी केटलाएक स्त्रीवेदी ने केटलाएक जीवो नपुंसकवेदी पण होय छे,

तथा चार प्रकारना देवोमां नपुंसकवेद नहिं होवाथी मात्र स्त्रीवेद अने पुरुषवेदज छे, शेष व्याख्या सुगम छे.

अवतरण----हवे आ गाथाथी २४ दंडकमांथी कया दंडकना जीवो अल्प अने कया दंडकना जीवो अधिक छे, ? ते कहे छे.

॥ मूळ गाथा ४० मो. ॥

पज्जमणु बायरग्गी, वेमाणियभवणनिरयवंतरिया।
जोइसचउ पंण तिरिया, बेइंदि तेइंदि भूआऊ॥४०॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

पर्याप्तमनुजबादराग्निवैमानिकभवनपतिनैरयिक-
व्यन्तरकाः ।
ज्योतिश्चतुष्कपञ्चेन्द्रियतिर्यंचो द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियभ्वापः ॥४०॥

शब्दार्थः

पज्ज–पर्याप्त	जोइस–ज्योतिषीदेव
मणु—मनुष्य	चउ–चतुरिन्द्रिय
बायर–बादर	पण—पञ्चेन्द्रिय
अग्गी–अग्नी	तिरिया–तिर्यंचो
वेमाणिय–वैमानिक	बेइंदि–द्वीन्द्रिय
भवण–भवनपति	तेइंदि–त्रीन्द्रिय
निरय—नारक	भू—पृथ्विकाय
वंतरीया—व्यंतरो	आऊ—अप्काय

गाथार्थः— पर्याप्तमनुष्य--बादर अग्नि--वैमानिक--भवनपति --नारक-व्यन्तर-ज्योतिषी- चतुरिन्द्रिय-पचेन्द्रियतिर्यंच--द्वीन्द्रिय -त्रीन्द्रिय-पृथ्विकाय-अप्काय (संबन्ध आगळनी गाथा साथे.)

१ आगळ लघु अल्पाबहुत्व जुओ.

विस्तरार्थः–सुगम छे. पण आगळ लघु अने महाल्पबहुता जुओ

अवतरण––आ गाथामां पण बाकी रहेला दंडकोनुं अल्पबहुत्व कहुं छे.

॥मूळ गाथा ३८ मी,॥

वाउ वणस्सइ च्चिय, अहिया अहिया कमेण मे हुंति।
सव्वेवि इमे भावा, जिणा मए णंतसो पत्ता ॥ ४२॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

वायुर्वनस्पतिश्चैव अधिका अधिका क्रमेणेमे भवन्ति ।
सर्वेऽपि इमे भावाः, हे जिना मया ऽनन्तशः प्राप्ताः ४२॥

॥ शब्दार्थः ॥

वाउ--वायुकाय
वणस्सइ--वनस्पतिकाय
च्चिय- निश्चय
अहिया अहिय--अधिक अधिक
कमेण--अनुक्रमे
इमे--ए पूर्वोक्त (पर्याप्त मनुष्यादि)
हुंति--छे.
सव्वेवि--सर्वे पण
इमे--ए पूर्वोक्त(पर्या०मनुष्यादि)
भावा--भाव
जिणा-हे जिनेश्वरो
मए--मे
अणंतसो--अनंतवार
पत्ता--प्राप्त कर्या

गाथार्थः––वायुकाय अने वनस्पतिकाय निश्चय ए पूर्वोक्त (पर्या० मनुष्यादि) अनुक्रमे अधिक अधिक छे. हे जिनेश्वरो ए सर्व (पर्या०मनुष्यत्वादि) भावो में अनंतवार प्राप्त कर्या छे. (माटे हवे एकवार प्राप्त थनारुं मोक्ष पद आपो ––ए दंडक रूप स्तुतिनुं तात्पर्य आगळनी गाथा साथे संबन्धवाळु छे.)

विस्तरार्थः---अल्पबहुत्व संबन्धि बन्ने गाथाओमां जीवो सामान्यतः अधिक अधिक कह्या पण केटला अधिक ? ते कह्युं नथी माटे ते स्पष्ट रीते दर्शावाय छे.--- ※

॥ २४ दंडकनुं※अल्पबहुत्व ॥

पर्याप्त मनुष्य	१	सर्वथी अल्प
बादर अग्नि	१	असंख्य गुण
वैमानिक	१	असंख्य गुण
भवनपति	१०	असंख्य गुण
नारक	१	असंख्य गुण
व्यन्तर	१	असंख्य गुण
ज्योतिषी	१	संख्य गुण
चतुरिन्द्रिय	१	संख्य गुण
पञ्चे०तिर्यंच	१	
द्वीन्द्रिय	१	विशेषाधिक
त्रीन्द्रिय	१	विशेषाधिक
पृथ्विकाय	१	असंख्य गुण
अप्काय	१	असंख्य गुण
वायुकाय	१	असंख्य गुण
वनस्पतिकाय	१	अनंत गुण

※अहिं पर्याप्त जीवाश्रयि आ अल्पबहुत्व कह्युं छे-

॥ महादंडकाल्पबहुत्वम्. ॥

१ गर्भज मनुष्य	सर्वथी अल्प
२ गर्भज मनुष्य स्त्री	संख्य गुण/२७अधिक२७गुण
३ पर्या०वा०अग्नि	असंख्य गुण
४ अनुत्तर देव	”
५ उर्ध्वत्रण ग्रैवे०देवो	संख्यात गुण
६ मध्यग्रैवे०त्रिकदेवो	”
७ अधो ३ ग्रै० देवो	”
८ अच्युत कल्पदेवो	”
९ आरणकल्प देवो	”
१० प्राणतकल्प देवो	”
११ आनतकल्प देवो	”
१२ तमतमा नारक	असंख्य गुण
१३ तमा नारक	”
१४ सहस्रार कल्पदेवो	”
१५ महाशुक्र कल्प देवो	”
१६ धूमप्रभानारक	”
१७ लांतक कल्प देवो	”
१८ पंकप्रभानारक	”
१९ ब्रह्मकल्पदेव	”
२० वालुकाप्रभा नारक	”

२ गर्भज मनुष्यथी गर्भज मनु० स्त्री संख्यगुण छे. ए प्रमाणे दंडक अल्प बहुत्व पृथे पृथे संख्यानी अपेक्षा ए जाणवुं

२१ महेन्द्र कल्पदेव	”
२२ सनत्कुमार कल्पदेव	”
२३ शर्कराप्रभानरक	”
२४ सम्मुर्च्छिम मनुष्य	”
२५ ईशान कल्पदेवो	”
२६ ईशान कल्पदेवी	संख्यगुण (३२ अधिक३२गुण)
२७ सौधर्मकल्प देवो	”
२८ सौधर्मकल्प देवी	३२अधिक३२गुण
२९ भवनपति देव	असंख्यगुण
३० भवनपति देवी	३२अधिक३२गुण
३१ रत्नप्रभा नारक	”
३२ खेचर ति०पंचे०पुरुष	असंख्यगुण
३३ खेचर ति०पं०स्त्री	सं०(३ अधिक३गुण)
३४ चतुष्पद ति० पुरुष	”
३५ चतुष्पद ति० स्त्री	” ३ अधिक ६ गुण)
३६ जळचर ति० पुरुष	”
३७ जळचर स्त्री	” (३ अधिक३गुणी)
३८ व्यन्तर देव	”
३९ व्यन्तर देवी	”(३२अधिक ३२गुण)
४० ज्योतिषीदेव	”
४१ ज्योतिषीदेवी	”(३२अधिक ३२गुण)
४२नपुं०खेचर ति०	”
४३ नपुंसक स्थलचर ति०	”
४४ नपुं० जळचर	”

४५ पर्या० चतुरिन्द्रिय	”
४६ पर्या० पञ्चे०	विशेषाधिक
४७ पर्या० द्वीन्द्रिय	”
४८ पर्या० त्रीन्द्रीय	”
४९ अपर्या० पञ्चेन्द्रिय	असंख्यगुण
५० अपर्या० चतुरि०	विशेषाधिक
५१ अपर्या० त्रीन्द्रिय	”
५२ अपर्या० द्वीन्द्रिय	”
५३ पर्या० प्रत्येक वनस्पति	असंख्य गुण
५४ पर्या० बा० निगोद	”
५५ पर्या० बा० पृथ्वि	”
५६ पर्या० बा० अप्काय	”
५७ पर्या० बा० वायु	”
५८ अपर्या० बा० अग्नि	”
५९ अपर्या०प्रत्येकवन०	”
६० अपर्या०बा० निगोद	”
६१ अपर्या बा० पृथ्वि	”
६२ अपर्या० बा० अपकाय	”
६३ अपर्या० बा० वायु	”
६४ अपर्या० सू० अग्नि	”
६५ अपर्या० सू० पृथ्वि	विशेषाधिक
६६ अपर्या० सू० अप्काय	”
६७ अपर्या० सू० वायु	”
६८ पर्याप्त सू० अग्नि	संख्यात गुण
६९ पर्याप्त सू० पृथ्वि	विशेषाधिक

७० पर्याप्त सू० अप्काय	”
७१ पर्या० सू० वायु	”
७२ अपर्या० सू० निगोद	असंख्यात गुण
७३ पर्या० सू० निगोद	संख्यात गुण
७४ अभव्य	अनंत गुण
७५ पतितसम्यक्त्वी	”
७६ सिद्ध	”
७७ पर्या० बा० वन०	”
७८ बादर पर्याप्त	विशेषाधिक
७९ अपर्या० वा० वन०	असंख्य गुण
८० वा० अपर्याप्त	विशेषाधिक
८१ बादर	”
८२ सू० अपर्याप्त वन०	”
८३ सू० अपर्याप्त	”
८४ पर्या० सू० वनस्पति	संख्यगुण
८५ सू० पर्याप्त	विशेषाधिक
८६ सूक्ष्म	”
८७ भव्य	”
८८ निगोद	”
८९ वनस्पति	”
९० एकेन्द्रियो	”
९१ तिर्यंच	”
९२ मिथ्यादृष्टि	”
९३ अविरत	”
९४ सकषायि	”

९५ छद्मस्थ ,,
९६ सयोगि ,,
९७ संसारीजीव ,,
९८ सर्वजीव ,,

अवतरण—आ दंडकरूप स्तुति करवानुं फळ ग्रंथकार श्री जिनेश्वरोनी पासे मागे छे.

संपइ तुम्ह भत्तस्स, दंडगपयभमणभग्गहियस्स
दंडतियविरयसुलहं, लहु मम दिंतु मुक्खपयं॥४३॥

॥ संस्कृतानुवादः ॥

संप्रति तव भक्तस्य, दंडकपदभ्रमणभग्नहृदयस्य ।
दंडत्रिकविरतसुलभं, लघु मम ददतु मोक्षपदम् ॥४३॥

॥ शब्दार्थः ॥

संपइ—हमणां-हवे
तुम्ह—आपना
भत्तस्स—भक्तनुं
दंडगपय—दंडकस्थानमां
भमण—भ्रमणकरवाथी
भग्ग—भग्न-उदासीन
हियस्स—हृदयवाळा (नुं) -मनवाळा
दंडतिय-३ दंड (मन-वचन-कायाना अशुभव्यपार
विरस्स-विरतिवडे [त्यागवडे]
सुलभं—सहजे प्राप्तथनार
लघु—शीघ्र
मम—मने
दिंतु—आपो
मुक्खपय—मोक्षपद

गाथार्थः—(ए सर्व भावो अनंतवार प्राप्त कर्या छे.) हवे दंडकस्थानोमां भ्रमण करवाथी उदासीन मनवाळा आपना भक्तने (मने गजसारमुनिने) त्रण दंडनो त्याग करवाथी सहजे प्राप्त थनार एवुं मोक्ष पद शीघ्र आपो.

विस्तरार्थः--श्रीगजसारमुनि श्रीवीरप्रभुने प्रार्थना करे छे के ए पूर्वोक्त २४ दंडकमां अनादि काळथी परिभ्रमण करवा वडे करीने हवे मारुं हृदय बहु खेदवाळुं उद्विग्न (उदासीन) थयेलुं छे माटे मनने अशुभ विकल्पमां प्रवर्ताववारूप मनदंड, मोक्षमार्गने प्रतिकूळ वचनो बोलवा रूप वचनदंड, अने मुक्तिमार्गने प्रतिकूळ क्रियामां कायाने प्रवर्ताववा रूप कायदंड, ए ३ दंडना त्यागथी सहजे मळनारु मोक्षपद मने शीघ्र आपो ए दंडकप्रकरणरूप श्री महावीर स्वामीनी स्तुतिनो अन्तिम परमार्थ (सार) जणाव्यो.

अवतरण—आ गाथामां श्री ग्रंथकारनी प्रशस्ति छे.

सिरिजिणहंसमुणीसर -रज्जे सिरिधवलचंदसीसेण
गजसारेण लिहिया, एसा विन्नत्ति अप्पहिया ॥४४॥

॥ संस्कृतानुवाद ॥

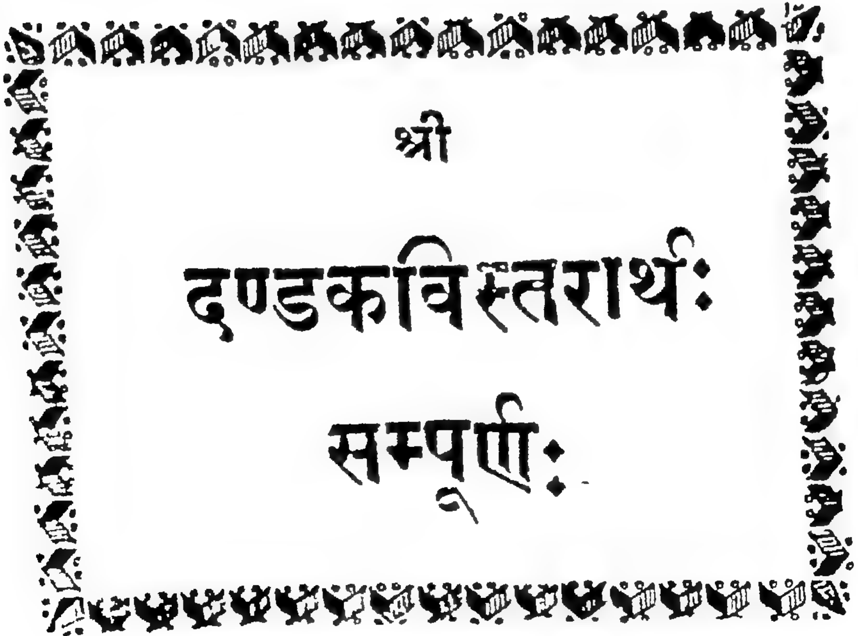
श्रीजिनहंसमुनीश्वरराज्ये, श्रीधवलचंद्रशिष्येण ।
गजसारेण लिखिता:एषा, विज्ञप्ति रात्महिता॥४४॥

॥ शब्दार्थः ॥

सिरि—श्री
जिणहंस—जिनहंसनामना
मुणीसर—आचार्यना
रज्जे—राज्यमां
सिरि—श्री
धवलचंद—धवलचंद्र
सीसेण—शिष्ये
गजसारेण-गजसारमुनीए
लिहिया—लखी
एसा—आ
विन्नत्ति—विज्ञप्ति
अप्पहिया—आत्महितकारी

गाथार्थः—श्री जिनहंसनामे आचार्यना राज्यमां (शासनमां श्री धवलचंदमुनिना शिष्य गजसार मुनिए आ विज्ञप्ति आत्म हितकारी लखी छे.

विस्तरार्थः—गजसारमुनि १६ मासैकानी शरुआतमां थयेला तेम तेमना हाथनो बनावेलो जंबुद्धीपनो नकशो (पट) जोवामां आव्यो छे. ते उपरथी जणाय छे. आ प्रकरण तेओश्रीए परोपकारार्थे बनावेल छतां आत्महितने माटे लख्युं तेम लखी पोताना आत्मानी लघुता भावी छे.





॥ श्री महावीरप्रभुस्तुतिगर्भितं
परमकारुणिक पं० पद्मविजगणिप्रणितं ॥
विविधरागबद्धं,
एकोनविंशतिद्वारेषु चतुर्विंशति दण्डक
समवताररूपं स्तवनम्,

(दुहा)

प्रणमी सरसति भगवति, तीम जिनवर चोवीश,
गौतम प्रमुख सूरि तथा, गुरु उत्तम सुजगीश ॥ १ ॥

चोवीश दंडकने विषे, द्वार अछे गुणतिश;
विवरी कहिशुं तेहने, जिम भाख्या जगदीश ॥ २ ॥

नाम १ लेश्या २ त्रीजुं तनु, ३ अवगाहना ४ संघेण, ५
संज्ञा, ६ आकृति सातमुं, ७ संपराय ८ सुणो सेण ॥ ३ ॥

९इन्द्रि१०समुद्घात११दृष्टि१२दर्शन, १३नाण१४-१५जोगोपयोग;
१६उपपात ने१७वचन१८स्थिति१९पज्जत्ति२०आहारनो भोग ॥४॥

२१गति आगति २२वेद २३भवननो, चोविशमो २४प्राणद्वार;
२५संपदा२६धर्म२७जीवायोनि,२८कुळ २९अल्पबहुत्व विचार ॥५॥

(द्वारें १ छं)–घमा, वंशा सेला, अंजना रिष्टा नाम;
मघा, माघवति सातमी, ए साते दुःख खाण ॥ ६ ॥
१असुर २नाग ३सुवर्ण, ४विद्युत ने ५अग्निकुमार;
६दीव७उदधि ८दिशि ९वायु; १०स्तनित ए दश श्रीकार॥७॥
सात ११नरकनुं एक छे, एकादश दंडक एम;
थावर १६ पांच तथा १९ त्रण, विगलेंद्रिय गणिए तेम ॥८॥
२० पंचेन्द्रितिर्यंच २१ मनुज ने, २२व्यंतर ने २३जोतिष;
२४ वैमानिक चोवीश ए, नाम द्वार सुण शिष्य ॥ ९ ॥

(द्वारें २)–नरक, तेउ, वाउ, विगलेन्द्रिय, अपज्ज लेश्या तीन;
पंचेंद्रिय तीर्यंच मनुषने, षट् लेश्या होय पीन ॥१०॥
भवनपति दश व्यंतर, पृथ्वी अप् वण काय;
ए चउद दंडकमांहि, आगली चार कहाय ॥११॥
ज्योतिपि सोहम इशान, एक तेजो होय;
पंचम देवलोक लगे पद्म, उपरे शुक्ल जोय ॥१२॥

(द्वारें ३)--नारकी देवता सर्वने, वैक्रिय तेजस् कर्म,
वायु तिर्यंच पंचेन्द्रिय, आहारक विनु ए मर्म ॥१३॥
वायु विना चउ थावर, विगलने त्रण शरीर;
औदारिक तेजस कर्म, मनुजने पण कहे वीर ॥१४॥

॥ ढाल १–राग मारु ॥

(द्वारें ४) नरक गते शत पंच धनुष् अवगाहनारे;
समुच्चे उत्कृष्ट भाखीरे (२) साखि पन्नवणाअछेरे ॥१॥

---

१ २४ दंडकोना नाम, २ कृष्ण, नील, कपोत, तेज, पद्म शुक्ल; ए ६ लेश्याओ छे. ३ औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण ए पांच शरीर छे, ४ शरीर प्रमाण.

पुणा आठ धनुष् षट् अंगुल देहडीरे;
घमामें उत्कृष्ट, त्रण्यरे (२) हाथ जघन्य शरीर छे रे ॥२॥
साडापंदर धनुष् ने बार अंगुल लहीरे;
त्रीजे सवाएकत्रीश; पंकेरे (२) साडीबासठ धनुष्नीरे ॥३॥
सवासो धनुष्नी धूमप्रभे लहीरे;
मघामां अढीशत, धनुष्य (२) शत पंच गुरु सातमी रे ॥४॥
ए उत्कृष्ट कही म्हें साते नरकनी रे;
पूँरवनी उत्कृष्ट, उत्तरे (२) उत्तरनी ते जघन्यथी रे ॥५॥
भुवनपति वँण ज्योतिषीने सात हाथनी रे,
तिम सोहम इशान, त्रीजेरे (२) तीजे चोथे षट् तणी रे ॥ ६ ॥
पांचमे छठे पांच, चार सातमे आठमेरे;
चारँ लगे तिन हाथ, हाथरे (२) नाथ भाखे त्रण लोकनोरे ॥७॥
नव ग्रैवेयक बे कर, अनुत्तरे एक छे रे;
भू नल अग्नि ने वाय, तेहनीरे (२) अंगुल असंख्यम भाग छे रे ८
लाख जोजननी उत्तरवैक्रिय देवतारे,
वनस्पति प्रत्येक. झाझीरे [२] जोयण सहस उत्कृष्टथीरे ॥९॥
अंगुल असंख्यमे भाग जघन्यथी जाणीयेरे;
बेइंद्रिय जोजन बार कोशरे (२) त्रण चउतिचौरिंद्रियेरे ॥१०॥
तिन कोश दनुजनी सहस जोयण तणीरे;
तिरि पंचेन्द्रिय देह, वैक्रियरे(२)लाख जोयण नव शत तथारे ॥११॥
(द्वार ५)--षट संघयण मनुज तिरि पंचेन्द्रि लह्यारे;
त्रिगलेन्द्रिय छेवट्ठ, जाणोरे (२) शेष संघयणि अछेरे ॥१२॥

---

५ प्रथम प्रथम नरकना उत्कृष्ट अवगाहना ते आगल आगल जघन्य जाणवी. ६ व्यंतर, ७ नवमे, दशमे. अगीयारमे, बारमे देवलोके, ८ वज्रर्षभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्ध नाराच, कीलिका. सेवार्त्त ए ६ संघयण छे,

(द्वार[९] ६)--आहारादिक चउवीशे दंडके लहारे;
(द्वार[१०] ७)--देवने समचउरंस, आगेरे(२)षट् नरतिरि पंचेंद्रिनेरे॥१३॥
*(द्वार ८) नारक थावर विगल समुर्छिम मनुष्यनेरे;
एक हुंडक संठाण, होयरे (२) चार कषाय सवि दंडकेरे ॥ १४ ॥

॥ ढाळ २ जी.

पियु पियु करतां नाम जपुं दिन रातीयां--ए देशी.

(द्वार[११] ९) -देव नारक नर तिरिपंचेन्द्रिय पणइन्द्रि,
थावर वि ति चउरींद्रि इग वि ति चउ वदि;
(द्वार[१२] १०)--नारक वायुने चार समुद्घात आगला,
देव तिर्यंच पंचेन्द्रियने पण(५) आदिला ॥१॥
थावर चउ विगलेन्द्रियने पहेला तिन कह्या,
मनुजने सात समुद्घात पन्नवणाए लह्या;
(द्वार[१३] ११)-नारक नर देव तिरि पंचेन्द्रि तिदृष्टि छे,
थावर पंचने एक मिथ्यात्व ते इष्ट छे ॥२॥
विगलेन्द्रियने समकित मिथ्या ए दोय छे.
एणीपेरे द्वार एकादशमुं दृष्टि होय छे;
(द्वार[१४] १२)-देव नारक तिरि पंचेन्द्रियने केवल विना,
चउरिंद्रिने चक्षु अचक्षु बे दर्शना ॥३॥

---

९. आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा, ए चार संज्ञा छे. १० समचतुरस्र, न्यग्रोध, सादि, वामन कुब्ज, हुंडक ए ६ संस्थान छे, + क्रोध, मान, माया, लोभ ए ४ कषाय छे, ११ स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षुः, श्रोत्र ए ५ इन्द्रिय छे, १२ वेदना, कषाय मरण, वैक्रिय, तैजस, आहारक, केवलिक ए ७ समुद्घात छे. १३ मिथ्यात्व सम्यक्त्व मिश्र. ए त्रणदृष्टि छे, १४ चक्षुदर्शन छे, अचक्षुद०, अवधिद०. केवलद० ए ४ दर्शन छे

एक अचक्षु थावर वि ति इंद्रिय तणे,
चक्षु अचक्षु ओहि केवल चउ मनुजने;
(द्वार[१५] १३)–त्रण ज्ञान अज्ञान नरक देव तिर्यंचने,
थावरने मति श्रुत अज्ञान ए विहुं भणे ॥४॥
विगलेन्द्रियने ज्ञान अज्ञान दुधा भणुं,
मनुजने ज्ञान पंच अज्ञान ते त्रण गणुं
(द्वार[१६] १४)–औदारिक आहारक दुग विणु सुणो,
योग अग्यार नारक देव दंडके भवि सुणो ॥५॥
औदारिक दुग कर्म भू जल वन्हि वण मते,
वैक्रिय दुग युत पंचयोग वायु मते;
औदारिक दुग कर्म चोथो वागू योग ए
विगलेन्द्रियने चार योगनो भोग ए ॥६॥
तिरिपंचेन्द्रिने आहार दुग विण जाणीए,
पन्नर योग मनुष्यने भवि मन आणीए;
(द्वार[१७] १५)–त्रण ज्ञान अज्ञान दर्शन देव नरक तिरि,
ज्ञान अज्ञान दो एक अचक्षु वे तिरिंदरि ॥७॥
ज्ञान अज्ञान दर्शन दोय ए छ चउरिंदिने,
मइ सु अज्ञान अचक्षु थावर एकेंद्रिने

---

१५ मतिज्ञान. श्रुतज्ञान. अवधिज्ञान, मन.पर्यवज्ञान, केवलज्ञान. ए पांच ज्ञान तथा मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंगज्ञान ए त्रण अज्ञान छे, १६ सत्यमन, असत्यमन, मिश्रमन. व्यवहार (असत्यामृषा) मन, सत्यवचन, असत्यवचन, मिश्रवचन, व्यवहारवचन,ए चार मनना अने चार वचनना मली आठ योग, तथा औदारिकयोग, औदा० मिश्रयोग. वैक्रिय,वैक्रियमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र, तैजसकार्मण, ए सात काययोग मली १५ योग छे. १७ ५ज्ञान, ३ अज्ञान. ४दर्शन ए १२ उपयोग छे

वार उपयोग मनुष्यने लहिए इम सुणो,
नाण अन्नाण दर्शन पण ति चउ क्रम थुणो ॥८॥
(द्वार १६-१७ –नारक देव तिर्यंच पंचेन्द्रि विगल तथा,
उपपात चवन कहुं भवि भगवति कहे यथा;
एक वे त्रण जघन्यथी संख्य असंख्याता,
उत्कृष्टा उपपात चवन समे विख्याता ॥९॥
एक समे असंख्याता थावर प्राणिया,
उपजे चवे अनंता साधारण जाणिया;
एक आदि देइ जाव संख्य मनुष्य लहो,
सम्मुर्छिम नरमांहि असंख्याता सद्दहो ॥१०॥

॥ ढाळ ३ जी. ॥

हवे कुमर इस्युं मन चिंतवे, ए राग.

(द्वार १८)-रत्नप्रभाए जघन्यथी, दस सहस वरसनो आयोरे;
सागर एक उत्कृष्टो लहो, बीजे त्रण सागर थायोरे.
जिनवर भाखे इम वयणडां ॥१॥
वालुप्रभा नरके सातनुं, पंके दश सत्तर ते धूमे रे;
छठ्ठी बावीश तम नरकमां, सागर तेत्रिश तमतमेरे. जि० ॥२॥
आदि उत्कृष्टी जे कही, उत्तरनी तेह जघन्यरे;

---

१८ अमुक दंडकमां एक समये केटला जीवो जघन्यथी या उत्कृष्टथी उपजे ! एम कहेवुं ते उपपातद्वार अने अमुक दंडकमां एक समयमां केटला जीवो जघ० थी या उत्कृ० थी मरण पामे एम कहेवु ते च्यवनद्वार, १९ कया दंडके केटलु जघन्य आयुष्य अने उत्कृष्ट आयुष्यहोय एम कहेवु ते आयुष्यद्वार,

तेर प्रतर पहेली नरकमां, तस उत्कृष्ट सुणो देइ कर्णरे. जि० ॥३॥
नेउ सहस तथा नेउ लक्ष छे, पुरव कोडि त्रीजे जाणोरे;
एक सागरना दश भागमां, एक भाग चोथे मन आणोरे, जि०॥४॥
एम भाग एकेक वधारतां, तेरमे थाय दश भागरे,
सागर एक पुरुं थइ रहे, हवे जघन्यनी सुणो वागरे. जि० ॥५॥
दश सहस तथा दश लक्ष छे, नेवुं लाख ने पूरव कोडी रे;
हवे आगलीनुं उत्कृष्ट जे, उत्तर जघन्ये जोडी रे. जि० ॥६॥
एकादश नव सत पण तथा, त्रण एक अनुक्रम धारोरे;
हवे प्रतरे गणवानो कहुं, आमनाय ते एक उदारोरे. जि० ॥७॥
जे नरकनी स्थिति उत्कृष्ट छे, तस कीजे जघन्य ते बादीरे;
प्रतर जेटला ते नरकना, कीजे भाग प्रतरे साधीरे. जि० ॥८॥
दस सहस वरस ते जघन्यथी, आयु भवनपति तणु होय रे;
उत्कृष्ट चमरनुं सागरतणु, वलि इन्द्रनुं अधिकुं जोयरे. जि० ॥९॥
साडा त्रण तथा साडा चार छे, तस देवी तणुं अनुक्रमे रे;
हवे नव निकाय दक्षिणतणुं, आउखुं दोढ पल्योपमरे. जि० ॥१०॥
पल्य दोय देशोन उत्तरतणुं, तस देवीनुं अद्ध एकोरे;
देशे उण पल्योपम कहुं, क्रमे गणीए धरी विवेकोरे. जि० ॥११॥
सन्ना शुद्धा त्रिजी वालुका, चोथी मणशिला नाम रे;
शर्करा खर पूढवी जाणीए, अनुक्रमे सुणो आयु ठामरे. जि०॥१२॥
एक बार चउद सोल तेम वली, अष्टादश ने बावीसोरे;
सहस शब्द ते तीहां जोडीए, आउखुं भाखे जगदीशोरे; जि०॥१३॥
सात सहस वरस अपूकायनुं, वासर त्रण अग्निनुं आयुरे;
त्रण सहस वरस वायुकायनुं, दश सहस वरस वणकायरे. जि०॥१४॥
बेइन्द्रिनुं बार वरसतणुं, तेइन्द्रिनुं ओगणपचास दिनरे;
षट् मासनुं चौरेन्द्रितणु, जघन्य मुहूर्त होय भिन्नरे. जि० ॥१५॥

जलचर गर्भज समुछिम तथा, गर्भज उरभूजपरिसप्परे;
पूरव कोडी वरसनुं आउखुं, भिन्नमुहूर्त सर्पनुं अलपरे. जि० ॥१६॥
थलचर गर्भज त्रण पल्यनुं, समूर्छिम वर्ष सहस चोरासीरे;
भाग पल्योपम असंख्यातमो, गर्भज खेचरनुं खासीरे. जि० ॥१७॥
खेचरनुं बहोंतेर सहसनुं, उरपरिनुं त्रेपन हजार रे;
भूजपरिनुं बेंतालीश सहसनुं, ए त्रण सम्मूर्छिम धाररे. जि० ॥१८॥
गर्भज नरनुं त्रण पल्यनुं, जघन्यथी भिन्नमुहूर्त रे;
दश सहस वरस व्यन्तरतणुं उत्कृष्ट पल्यनुं हुंतरे. जि० १९॥
अर्ध पल्यनु तस देवी तणु, लाख वरस ने पल्य शशिकेरुंरे;
सहस वरस ने पल्योपमतणु, सूर्यनुं ग्रहनुं पल्य धारुं रे. जि० ॥२०॥
चंद्र सूर्य ने ग्रह देवीतणुं. निज आयु अरध करी दीयोरे;
अर्ध पल्य तथा पा पल्यनुं, नक्षत्र तारानुं लहीयोरे. जि० ॥२१॥
चोथो आठमो भाग झाझेरडो पल्यनो देवीनो मान रे;
बे सागर सोहम जाणीए, बे उदधि झाझेरां इशान रे. जि० ॥२२॥
एक पल्य तथा अधिकेरडुं, जघन्य आउखुं सारो रे;
सात सागर अथ झाझेरडुं, त्रीजे ने चोथे उदारोरे. जि० ॥२३॥
बे सागर अधीकेरडुं, आयु जघन्य कह्यु तासरे;
हवे उत्कृष्ट अनुक्रमे कहुं, सुणजो ते धरी उल्लासरे. जि० ॥२४॥
दश चउद सत्तर अष्टादश. सागरनुं अनुक्रमे जाणीरे;
आगळ एकेक वधारीए, एकत्रीश ग्रैवेक लगे आणीरे. जि० ॥२५॥
तेत्रीश सागर विजयादिके, चारने एकत्रिश जघन्यरे;
आगळने उत्कृष्ट जघन्य ते, उत्तरनुं धारो सज्जनरे. जि० ॥२६॥

॥ ढाल ४ थी. ॥

देशी एकत्रीशानी.

(द्वार[20]-१९) थावर पंचनेरे, चार पर्याप्ति अगली,
विगलेन्द्रियनेरे, टाळो मन एक छेहली;
शेष सर्वनेरे, षट् पर्याप्ति द्वारे भणी,
(द्वार[21]-२०) द्वार वीसमुंरे, भाखे हषे त्रिभुवनधणी ॥१॥
[त्रुटक] मनुष्य तिरि विगलेन्द्रि पण ए दंडके त्रण आहार ए
शेषने कवल आहार टाली दोय आहार निरधार ए;
(द्वार[22]-२१) तिरि पंचेन्द्रि मनुजमांहि नारकी जाइ सहि,
आवे पण ए बिहुमांथी पावे वेदना बहुतही ॥२॥
(ढाळ) व्यंतर ज्योतिषिरे, भुवनपति वळी जाणीए,
सोहम इशानरे, पांच दंडकमांहि आणीए;
पृथ्वी अपूरे, वण तिरि पंचेन्द्रिय मनु,
उपजे तिहांरे, तिरि पंचेन्द्रि मनुज ननु ॥३॥
(त्रुटक) त्रीजाथी सहसार जावत गत्यागति मनु तीरितणी,
नवमाथी सर्वार्थसिद्ध मनुजनी जिनवरे भणी;
चोविशमांहे मनुज जाए, आय तेउ वाउ विणु,
चोवीशमांहे गत्यागति करे तिरि पंचेन्द्रिय घणुं ॥४॥
(ढाळ) गति आगतिरे, विगलेन्द्रिने दश दंडके,
तिरि पंचेन्द्रिरे, थावर विगल मनुज जीके;
भू अप् वणनेरे, एहीज दशनी गति कही,
त्रवीशमांरे, नारक विणु आगति लही ॥ ५ ॥
(त्रुटक) नवनी गति आगति दशनी तेउ वाउने तदा,

---

२० आहार पर्याप्ति, शरीरप०, इन्द्रिय प० उच्छ्वास प०, भाषा पर्या० मनः पर्या० ए ६ पर्याप्ति छे, २१ ओजस्आहार, लोमआहार, प्रक्षेपाहार (कवलाहार) ए ३ आहार छे, २२ अमुक दंडकना जीव कया कया दंडकमां जइ उपजे ते गति, अमुक दंडकमां कया कया दंडकना जीवो आवी उपजे ते आगति;

थावर विगल तिरि पणेन्द्रि मनुज सहि करो जदा;
श्री वीरजिनवर तणा पदयुगपद्मने अवलंवता,
गत्यागति सवि दूर थाय पामीए सुख शाश्वता॥६॥

॥ ढाळ ५ मी. ॥

॥ चोपाइनी देशी, ॥

(द्वार-२२) नारक थावर विगल नपुं वेद, देवने पुं स्त्रि वेद मन वेद;
तिरि पंचेन्द्रि मनुज त्रण जाण, हवे भुवन द्वार मन आण ॥१॥
सात नरकना अनुक्रमे सुणी, त्रीश पचवीश पन्नर दश त्रीणि;
लाख शब्द सयले जोडीए, छट्ठीए लखमां पण छोडीए ॥२॥
सातमीए पण नरकावास, चोराशी लख सर्वांन वास;
चोत्रिश त्रोयालिश (४४)अडत्रीश, नवमो निकाय विना चालिश३
नवमीने पचास उदार, लक्ष शब्द सघळे विस्तार;
दक्षिण दिशे दश इन्द्रना एह, चउ कोडि पट्ट लख सर्व सुणेह
हवे उत्तर दश इन्द्रना कहुं, उणा प्रत्येके चउ लख लहु;
सात कोडि ने बहोंतेर लाख, सर्व थइ ए जिनवर भाख ॥५॥
एक लाख अंशी सहस जोजन, रत्नप्रभा पिंड भाखे जिन;
सहस जोजन उपरि अध टाल, वचमां भुवनपतिने भाळ ॥६॥
संख्य असंख्यात जोजन मान, भवन कह्या छे तेहने थान;
लोकव्यापी सूक्ष्म थावरा, बादर देशे कहे जिनवरा ॥७॥
बादर अग्नि मनुज ए दोय, अढी द्वीपमां कहीए सोय;
उपरी सहस जोजनमां थकी, उपरी अध शत जोजन मुकी ॥८॥
नगर असंख्याता तिहां कह्यां, नाना भरत जेवडां लह्यां;
महाविदेह सम मध्यम जाण, मोटां जंबुद्वीपप्रमाण ॥९॥

२३ स्त्रीवेद. पुरुषवेद. नपुंसकवेद. ए ३ वेद छे,

संभूतल पृथ्वी मर्याद, सातशें नेवुं जोजन संवाद,
ताराथी दश जोजन रवि, ऐंशी जोजन तिहांथी शशि मवि॥१०॥
नक्षत्र बुध जोजन चार चार, शुक्र गुरु मंगल शनि त्रण धार;
ज्योतिषीना छे असंख्य विमान, हवे देवलोकनी संख्या जाण॥११॥
बत्रीश अडवीश बार अड चार, लाख शब्द जोडीए उदार;
पचास चालिश ने छ हजार, आनत प्राणते चउ शत धार ॥१२॥
आरण अच्युते त्रणशें रह्या, ए मान विमान संख्यामां लह्या;
प्रथम त्रीके एकसो अग्यार, बीजे एकसो सात विचार ॥१३॥
त्रीजे सो ने उपरि पंच, अनुत्तरमां पण पुण्यनो संच;
बार जोजन उंची सिद्धशिला, द्वारे(२४)प्राण कहुं हवे दश मांहीला१४
फरस इन्द्री तनु बळ श्वासोश्वास, आउखु ए थावर होय तास;
रस इन्द्री ने वचन सहित, बेइन्द्रियने षट् ए रीत;
नारक सहित तेइन्द्रिने सात चौरेन्द्रिने चक्षु अवदात;
मन ने श्रोत्र इन्द्रिय ए युत, शेष दंडकने दश ए उत्त ॥१७॥

॥ ढाळ ६ ठी. ॥

राग वेलावल.

(द्वारे २५) नवनिधान चोद रतन ए, भाख्या भगवंते;
चक्र, छत्र, दंड, असि वलि, कांगणी, चर्म मणि,
ते नमिये जिनरायने ॥१॥
सात एकेंद्रिय रतन ए, गाथापति, सेनापति;
पुरोहित, वार्धिक, अश्व, गज, स्त्री संपत्ति. ते० ॥२॥
तीर्थंकर, चक्री, वळ, वासु, केवलि, साधु, श्राद्ध;
समकिति, मंडलिक मळि, सवि त्रेवीश लाधु. ते० ॥३॥

---

२४ प्राणद्वार आगळ कह्या छे ते. २५ चौद चक्रवर्तिना रत्न अने नव तीर्थंकरादि मळी २३ संपत्तिद्वार.

पहेली नरकनो नीकळ्यो, सोळ संपदा पामे;
सात एकेन्द्रिय टाळीने, गुणज्यो इणे ठामे. ॥४॥
बीजीनो पंदर चक्री विना, त्रीजीनो तेर;
बल वासुदेव ए टाळजो, चोथीनो बार. ॥५॥
तीर्थंकर विणु पांचमीनो, पामे अगीआर;
केवली विणु दश छट्ठीनो, साधु विणु निरधार. ते० ॥६॥
अश्व गज समकीत त्रण, सातमीनो जाण;
भवनपति वण जोतिषी, एकवीश लहे ठाण. ते० ॥७॥
तीर्थंकर वासुदेव विना, भू अप् वण नर तिरीनो;
तीर्थंकर चक्री वल वासु, विणु ओगणीश कीनो. ते० ॥८॥
तेउ वाउनो नीकल्यो, अश्व गज ए दोय;
सात एकेन्द्रि इम नव, पामे जीव कोय. ते० ॥९॥
विगल अढार संपद लहे, तीर्थंकर चक्री वल वासु;
केवली ए पांच टालजो, सोहम इशाने ते वीशु. ते० ॥१०॥
पहेली नरक परे जाणजो, सोल संपद इहां;
त्रीजाथी आठमा लगे, नवमाथी चौद जिहां. ते० ॥११॥
एकेन्द्र अश्व गज टाळजो, अनुत्तरना कहीए;
* आठ निशान वासुदेव विना, द्वार संपदा लहिए. ते०॥१२॥
(द्वार-२६) करणीरूप धर्म पनु तथा, तिरि पंचेंद्रिमांहि;
बावीश दंडके ते नहि, धर्म द्वार ए त्यांहि ते०॥१३॥
(द्वार-२७) भु अप् तेउ वाउ सत, दश लाख § प्रत्येक;
साधारण वण पनु चौद, चउ चउ लख तिरि नरक ते० १४

---

* तीर्थंकरादि आठ पदवीओ § प्रत्येकवनस्पति २१ दंडके अविरतिनो उदय छे. २६ विरतिरूपधर्म. २७ ८४ लाखजीयागोनिद्वार,

लाख लाख दो दो विगलेंद्रिमां, देवने लख चार;
इम चोराशी लख जीवायोनिमां, नव नव अवतार ते० ॥१५॥
(द्वार-२८) पचवीश छवीश बार सात, त्रण सात अठवीश;
सात आठ नव बार लाख, कुळकोटि जगीश. ते० ॥१६॥
साडीबार दश बार दश, नव लाख कुलकोडि;
नारक देव अनुक्रमे, पांच थावर जोडि. ते० ॥१७॥
बि ति चौरेंद्रि अनुक्रमे, मनुज जलचर थलचर;
खेचर उरपरि भुजपरि, अनुक्रमे सवि विस्तर. ते० ॥१८॥
(द्वार-२९) गर्भज नर थोडा सर्वथी, षड् गुण असंख्याता;
बादर अग्नि वैमानिक, भुवनपति आख्याता. ते० ॥१९॥
नारक व्यंतर ज्योतिषि, संख्य गुण चउरिंदि;
त्रण विशेषाधिक लहो, पंचेंद्रि बि तिइंदि. ते० ॥२०॥
त्रण असंख्यातगुण करो, पृथ्वी अप्काय;
चौदमे बोल वनस्पति, अनंत गुण थाय. ते० ॥२१॥
उत्तम विजय गुरुतणा, साधु कहेवाय;
भावनगरमां वीरना, पद्मविजय गुण गाय. ते० ॥२२॥
इति श्री वीरजिनस्तुतिगर्भित चोवीश दंडक स्तवन.

चोविश दंडकनुं स्तवन.

(गति आगतिनु स्वरूप.)

ढाळ १ ली.

आदर जीव क्षमा गुण आदर, ए देशी.

पुरे मनोरथ पास जिनेश्वर, एह करुं अरदासजी;
तारण तरण विरुद तुज सांभळी, आव्यो ताहरी पासजी पुरे० ॥१॥
एणे संसार समुद्र अथागे, भमीयो भवजलमांहिजी;
गीलगीलीयो जीम आयो गीलनो, साहेब हाथे साहीजी. पुरे० ॥२॥

तुं ज्ञानी तो पण तुज आगळ, वीनक कहीए वातजी;
चोवीशे दंडके हुं फरीओ, वर्णवुं एह विख्यातजी. पुरे० ॥३॥
साते नरकतणो एक दंडक, असुरादिक दश जाणजी;
पांच थावर ने त्रण विकलेंद्रिय, ओगणीश गणतां आणजी. पुरे० ॥४॥
पंचेंद्रिय तिर्यंच ने मानव, एह थया एकवीशजी;
व्यंतर ज्योतिषी ने वैमानिक, एम दंडक चोवीशजी. पुरे० ॥५॥
पंचेंद्रिय तिर्यंच ने मानव, पर्याप्ता जे होयजी;
ए सघळा देवमांहे उपजे, एम देव आगति दोयजी. पुरे० ॥६॥
असंख्यात आयुषे नर तीरि, निश्चे देवज थायजी;
निज आयुषे सम के ओछे, पण अधिके नव जायजी. पुरे० ॥७॥
भुवनपति ने व्यंतरमांहे, संमुर्छिम तिर्यंचजी;
स्वर्ग आठमे तांइ पुहचे, गर्भज सुकृत संचजी. पुरे० ॥८॥
आयु संख्याते जे गर्भज, नर तिर्यंच विवेकजी;
बादर पृथ्वी ने वळी पाणी, वनस्पति प्रत्येकजी. पुरे० ॥९॥
पर्याप्ता एणे पांचे ठामे, आवो उपजे देवजी;
एणे पांचे मांही पण आगे, अधिकाइ कहुं हेवजी. पुरे० ॥१०॥
त्रीजा स्वर्गथकी मांडीने सुर, एकेंद्रिय नवी थायजी;
आटमाथी उपरला सघळा, मानवमांहि जायजी. पुरे० ॥११॥

ढाल २ जी.

आज नही जोरे दीसे नाहलो, ए देशी.

नरकतणी गति आगति एणी पेरे, जीव भमे रे संसार;
दोय गति ने दोय आगति जाणीए, वळी विशेष विचार. नरक० ॥१॥
संख्याते आयुष पर्याप्ता, पंचेंद्रिय तिर्यंच;
निपटीज मनुष्य एहिज नरकमें, जाए पाप प्रपंच. नरक० ॥२॥
प्रथम नरकलगे जाए असंनीयो, गोह नकुळ नीम बीय;

गीध प्रमुख पंखी त्रीजी लगे, सिंह प्रमुख चोथी जाय. नरक० ॥३॥
पांचमी नरके सीमा सापनी, छठ्ठी लगे स्त्री जाय;
सातमी नरके माणस माछलां, उपजे गर्भज आय. नरक० ॥४॥
नरकथकी आवे बीहुं दंडके, तीर्यंच के नर थाय;
ते पण गर्भज ने पर्याप्ता, संख्यातेज सुहाय. नरक० ॥५॥
नारकियाने नरकथकी निकळ्या, जे फळ प्राप्ति होय;
उत्कृष्ट भांगे करी ते कहुं, पण निश्चे नहीं कोय. नरक० ॥६॥
प्रथम नरकथकी चवी चक्रवर्ति होये, बीजी हरी बळदेव;
त्रीजी लगे तीर्थंकर पद लहे, चोथीए केवल हेव. नरक० ॥७॥
पांचमा नरकनो सर्वविरति लहे, छठीए देशविरत;
सातमो नरकथकी समकीत लहे, न होवे अधीक निमित्त. न० ॥८॥

ढाल ३ जी.

करम परीक्षा करण कुमर चल्यो रे, ए देशी.

मानव गति विण मुक्ति होवे नहिरे, एहनो एह अधिकार;
आयु संख्याते नर सहु दंडकेरे, आवी लहे अवतार. मानव० ॥१॥
तेउ वाउ दंडक बे तजीरे, बीजा ते बावीश;
तिहांथी आव्या थाये मानवीरे, सुख दुःख पुन्य गरिष्ट. मा० ॥२॥
नर तिर्यंच असंख्ये आयुषेरे, सातमो नरकना तेम;
तिहांथी चवीने मनुज होवे नहिरे, अरिहंते भाख्यो एम. मा० ॥३॥
वासुदेव बलदेव तथा वली रे, चक्रवर्ति अरिहंत;
स्वर्ग नरकना आया ते होवे रे, नर तिर्यंच न होवंत. मा० ॥४॥
चौविह देव थकी चवी उपजेरे, चक्रवर्ति ने बलदेव;
वासुदेव तीर्थंकर ते होवे रे, वैमानिकथी हेव. मा० ॥५॥

ढाळ ४ थी.

हेम घडो रत्ने जडयो रे, ए देशी.

हवे तिर्यंच तणी गति, आगति कहीए अशेष,
जीव भमे एणी परे, भवमांहि कर्म विशेष;
आयु संख्याते जे, नर तिर्यंच विचार,
ते सघला तिर्यंच, मांहे लहे अवतार. ॥ १ ॥
जिणे तिर्यंचमांहे, आवे नारक देव,
ते कह्यो पहेले, तिण कारण न कहुं हेव;
पंचेंद्रिय तिर्यंच, संख्याते आयुषे जेह,
ते मरी चउगति मांहे, जावे इहां न संदेह. ॥ २ ॥
थावर पंच त्रण, विगलेंद्रिय आठे कहावे,
तिहांथी आयु संख्याते, नर तिर्यंचमां आवे;
विकल चवी लहे सर्वविरति, ते पण मोक्ष न पावे,
तेउ वाउथी आयो, तेहने समकित नावे. ॥ ३ ॥
नारक वर्जीने, सघला ए जीव संसार,
पृथ्वी आउ वनस्पति, मांहे लहे अवतार,
ए त्रण इहांथी चवी, ते आवे दश ठामे,
थावर विगल नीरि, नरमांहे उत्पत्ति पामे. ॥ ४ ॥
पृथ्वीकाय आदे, लइ दश दंडक एह,
तेउ वाउ मांहे, आवी उपजे तेह;
मनुष्यविना नव मांहे, तेउ वाउ वे जावे,
विगलेंद्रिय ते दशमांही, जाये पाछाही आवे. ॥ ५ ॥
एम अनादि तणो ए, मिथ्या जीव एकंत,
वनस्पति मांहे तिहां, रहिओ काल अनंत;

पृथवि पाणी अग्नि, अने चोथो वलि वाय,
कालचक्र असंख्याता, त्यांइ जीव रहाय. ॥ ६ ॥

बेइंद्रिय तेइंद्रियने, वली चौरेंद्रि मझार,
संख्याता वरसा लगे, भमीयो कर्म प्रकार;
सात आठ भव लगे, नर तिर्यंचमें रहियो,
मानव भव लहिने, साधुनो वेष में ग्रहियो. ॥ ७ ॥

राग द्वेष छुटे नहि, किम थाये छुटकबार,
पीण छे साध्य मन माहरे, तुंहीज एक आधार;
तारण तरण में त्रिकरण, शुद्ध अरिहन्त लाधो,
हवे संसारतणा भवमें, भमवो पुद्गल आधो ॥ ८ ॥

तुं मनोवांछित पूरण, आपदाचूरण स्वामी,
ताहरी सेव लहिने में, हवे नव निधि पामी,
अवर कोइने इच्छुं नहि, इण भव तुंहिज देव,
छ मने एक ताहरी, होजो भव भव सेव. ॥ ९ ॥

॥ कळश ॥

इम सकळ सुखकर नगर जेसलमेर महीमा दिने दिने
संवत सत्तर ओगणत्रीशे, दिवस दिवाली तणे;
गुरू विमळचंद समान वाचक, विजयहर्ष सुशिष्य ए,
श्री पार्श्वना गुण इम गावे, धर्मचंद्र सुजगीशए. ॥ १ ॥

॥ इति चोवीश दंडकस्तवन ॥



॥ ओँ अर्हं नमः ॥

स्वपरसमयपारावारपारीणेभ्यः सूरिगणसार्वभौमेभ्यः तपोगच्छाचार्य-
श्रीविजयनेमिसूरिभगवद्भ्यो नमः ।

स्वोपज्ञावचूर्णि–श्रीरूपचन्द्रमुनिविनिर्मितविवृत्यलङ्कृतं
श्रीगजसारमुनिप्रणीतं–

॥ दण्डकप्रकरणम् ॥

(अव०) श्रीवामेयं महिमामेयं, प्रणिधाय बालधीगम्यम् ।
स्वोपज्ञं कुर्वेऽहं, विचारषट्त्रिंशिकासूत्रम् ॥ १ ॥

इह चतुर्विंशतिदण्डकेषु प्रत्येकं संक्षिप्तसंग्रहणी २४ पदाना-मवतारणं चिकीर्षितम्, तच्चार्हद्विज्ञप्तिद्वारा प्रकटयन्नाह सूत्रकृत्–

नमिउं चउवीसजिणे, तस्सुत्तवियारलेसदेसणओ ।
दण्डगपएहिं ते च्चिय, थोसामि सुणेह भो भव्वा ! ॥१॥

(अव०)नत्वा मनोवाक्कायैः प्रह्वीभूय,कान्?,चतुर्विंशतिजिनान्, अत्र भरते माम्प्रतीनाऽवसर्पिणीमाश्रित्य, अन्यथाऽतीतानागतका-लपञ्चदशकर्मभूमीश्च प्रतीत्य जिनबहुत्वापत्तेः । अहं तानेव जिनान्, स्तोष्ये । कुतः?,तेषां सूत्रमागमो जिनागमस्तच्चेह "सरीरमोगाहणा य संघयणा सण्णेत्यादिरूपं" तस्य विचारो विचारणं तस्य लेशस्तस्य देशनतः कथनतः । कैः सह?, श्रीभगवत्यादिगाथाक्रमनिबद्धदण्डक-

संज्ञित २४ जीवस्थानैः, शृणुत भो भव्या इति- " अप्रतिबद्धे श्रोतरि, वक्तुर्वाचः प्रयान्ति वैफल्यम् " इतिवचनात् श्रोतृसम्मुखीकरणार्थम् ॥ १ ॥ अथ दण्डकमाह—

(टीका) प्रणम्य परया भक्त्या, जिनेन्द्रचरणाम्बुजम् ।
लघुसङ्ग्रहणीटीकां, करिष्येऽहं मुदा वराम् ॥ १ ॥

नमि० चतुर्विंशतिजिनान् नत्वा-अभिनम्य चतुर्विंशतिदण्डकैः कृत्वा तानेव-जिनानेवादिनाथप्रभृतीनहं स्तोष्यामि-स्तवीमीत्यर्थः । कस्मात् ? तत्सुत्तत्ति 'तत्सूत्रविचारलेशदेशनतः' तेषां-भगवतां सूत्रं-सिद्धान्तस्तत्सूत्रं तत्सूत्रस्य विचारस्तत्सूत्रविचारः तत्सूत्रविचारस्य लेशो-लवः तत्सूत्रविचारलेशः तत्सूत्रविचारलेशस्य देशनं-कथनं तस्मात् इति तत्सूत्रविचारलेशदेशनतः ' भो भव्या ! ' भो भविका ! यूयं शृणुत-श्रवणविषयं कुरुत इत्यर्थः।सुकरत्वाल्लेशतः प्रथमगाथाया व्याख्यानं कृतम्॥१॥

अथ चतुर्विंशतिदण्डकनामान्याह—

नेरइआ असुराई, पुढवाई बेइंदिआदओ चेव ।
गब्भयतिरियमणुस्सा वन्तरजोइसियवेमाणी ॥ २ ॥

(अव०) सप्तपृथिवीनैरयिकाणामेको दण्डकः, भवनपतीनामसुरादिदशनिकायभेदाद्दश दण्डकाः, पृथिव्यादीनां पञ्च विकलानां त्रयः, गर्भजतिर्यग्मनुष्यव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकदण्डकाश्चेति सर्वे २४, इह सूक्ष्मा अपर्याप्तकाश्च प्रायो नाधिक्रियन्ते ॥ २ ॥

(टीका)नेरति० अत्र नैरयिकाः पृथिवीभेदेन सप्तधा ज्ञातव्याः, सप्तविधाः सप्त प्रकारा येषां ते सप्तविधाः । यथा-१ रत्नप्रभा २ शर्कराप्रभा ३ वालुकाप्रभा ४ पङ्कप्रभा ५ धूमप्रभा ६ तमःप्रभा ७ तमस्तमःप्रभा । एतासु भवानां नैरयिकानामेको दण्डको ज्ञेयः । इह हि दण्डकाधिकारत्वात् चतुर्विंशतिस्थानेषु

पूर्वगाथोक्तदण्डकशब्दो योजनीयः । असुरकुमारादीनां भवनपतिनिकायभेदेन दश दण्डकाः स्युरित्यर्थः, अस्यन्ति क्षिपन्ति देवान् सुरान् ते असुराः, कुमाराकाराः कुमारवत्क्रीडाप्रियत्वाच्च कुमाराः, ते च ते कुमाराश्च असुरकुमाराः । ते आदौ येषां ते असुरकुमारादयः । तेषां दशप्रकारत्वाद्दश दण्डकाः स्युरित्यर्थः, तथा पृथिव्यादीनां पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिनिकायभेदानां पञ्च दण्डकाः स्युः । द्वीन्द्रिया आदौ येषां ते द्वीन्द्रियादयः । तत्र (द्वे) शरीररसनालक्षणे इन्द्रिये येषां ते द्वीन्द्रियाः । यथा—शङ्खकपर्देत्यादयः । त्रीणि शरीररसनाघ्राणलक्षणानि इन्द्रियाणि येषां ते त्रीन्द्रियाः । यथा–पिपीलिकामत्कुणेत्यादयः । चत्वारि शरीररसनाघ्राणचक्षुर्लक्षणानि इन्द्रियाणि येषां ते चतुरिन्द्रियाः। यथा–मक्षिकाभ्रमरपतङ्गवृश्चिकेत्यादयः । एवं द्वित्रिचतुरिन्द्रियैः कृत्वा दण्डकास्त्रयो जाताः स्युरित्यर्थः । गर्भे भवाः गर्भजाः ते च ते तिर्यञ्चश्च मनुष्याश्च गर्भजतिर्यग्मनुष्यास्तेषां द्वौ दण्डकौ स्यातामित्यर्थः । तथा विविधमन्तरं वनान्तरादिकमाश्रयतया येषां ते व्यन्तराः यद्वा भृत्यवच्चक्रवर्त्याराधकत्वेन विगतोऽन्तरं –विशेषो मनुष्येभ्यो येषां ते तथा, वनानामन्तरे भवाः पृषोदरादित्वान्मागमः वानमन्तराः तेषामेको दण्डकः स्यात् । ज्योतिष्काणां चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रताराणामेको दण्डको ज्ञेयः । वैमानिकानामेको दण्डकः । ते च द्विधा–कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च । तत्र कल्पः स्थितिर्जीतं मर्यादेत्येकार्थाः । स च इन्द्रतत्समानिकादिव्यवस्थारूपस्तं प्रतिपन्ना कल्पोपपन्नाः ग्रैवेयकानुत्तरवासिनस्तु कल्पातीताः, तेषां सर्वेषामप्यहमिन्द्रत्वात् । विमान्ति वर्त्तन्तेऽस्मिन् देवा इति विमानं तत्र भवा वैमानिकाः । नैरयिकादिवैमानिकान्ता एते चतुर्विंशतिदण्डकाः ज्ञातव्याः । अत्र चकारः समुच्चयार्थः एवशब्दो निश्चयार्थे ज्ञेयः । अत्र गाथायां दण्डकशब्दोऽनुक्तोऽपि दण्डकशब्दो ग्राह्यः । अत्र दण्डकशब्देन किमुच्यते ? तत्राह—तज्जातीयसमूहप्रतिपादकत्वं ज्ञेयमित्यर्थः । संक्षेपतो गाथाद्वितीयस्य (द्वितीयगाथायाः) व्याख्यानं विहितं । इह सूक्ष्मा अपर्याप्ताश्च प्रायो नाधिक्रियन्ते ॥२॥

अथ चतुर्विंशतिद्वारेषु गाथाद्वयेन शरीरादिस्वरूपवक्तव्यमाह–

संखित्तयरी उ इमा, सरीरमोगाहणा य सङ्घयणा ।
सन्नासंठाणकसाय, लेसिन्दियदुसमुग्घाया ॥ ३ ॥

दिट्ठीदंसणनाणे, जोगुवओगोववायचवणठिई ।
पज्जत्तिकिमाहारे, सन्निगइआगई वेए ॥ ४ ॥

(अव०)गाथाद्वयं लघुसंग्रहणीसत्कमिहैषामेव पदानां विचारणीयत्वात् पट्त्रिंशिकायां लिखितम्, व्याख्यालेशश्च यथा–स्वाभाविकशरीरं च पञ्चधा,औदारिकवैक्रियाहारकतैजसकार्मणभेदात् ।१। एषां चावगाहनोच्छ्रयमानं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदात् त्रिधा ।२। कार्मग्रन्थिकाभिप्रायेण अस्थिरचनाविशेषः संहननं तच्च षोढा–वज्रऋषभनाराच १ ऋषभनाराच २ नाराच३अर्धनाराच ४ कीलिका ५ सेवार्त्तं ६ भेदात्, संहननादिलक्षणं तल्लक्षणशास्त्रादवसेयम् ।३। संज्ञा चतस्रः––आहार–भय–परिग्रह–मैथुनलक्षणाः, दश वा एतास्ते च चतुष्कषायसंज्ञा ४ लोकसंज्ञा १ ओघसंज्ञा २ क्षेपात् ।४। समचतुरस्र १ न्यग्रोध २ सादि ३ वामन ४ कुब्ज ५ हुंडक ६ भेदानि संस्थानानि ।५। कषायाश्चत्वारः । ६ । लेश्याः षट्–कृष्ण १ नील २ कापोत ३ तैजस ४ पद्म ५ शुक्ल ६ रूपाः परमत्र ता द्रव्यरूपा अवस्थिता विचार्याः, न भावरूपाः ।७। इन्द्रियाणि पञ्च ।८। द्वौ समुद्घातौ–समवहननमात्मप्रदेशविकरणं समुद्घातः स चाजीवविषयोऽचित्तमहास्कन्धरूपः, नोजीवविषयः सप्तधा, "वेयण १ कसाय २ मरणे ३, वेउव्विय ४ तेउए य ५ आहारे ६ । केवलिए चेव भवे,जीवमणुस्साण सत्तेव ॥१॥"त्ति।९। दृष्टिस्त्रिधा-मिथ्यात्वसास्वादनमिश्रभेदात्।१०।दर्शनं-चक्षुरचक्षुरवधिकेवलभेदाच्चतुर्विधम्।११।ज्ञानं

मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलभेदात् पञ्चधा ।१२। अत्र ज्ञानसाहचर्यादनुक्तमप्यज्ञानं ग्राह्यम् । तच्च त्रिधा, मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं विभङ्गज्ञानरूपम् । १३ । योगाः पञ्चदश, मनोयोगश्चतुर्धा वाग्योगश्चतुर्धा, औदारिको १ दारिकमिश्र २ वैक्रिय ३ वैक्रियमिश्रा ४ हारका- ५ हारकमिश्र ६ तैजसकार्मणरूप ७ सप्तधा काययोगभेदेन ।१४। उपयोगो द्विधा, तत्र ज्ञानाज्ञानभेदाष्टकरूपः साकारोपयोगः, चतुर्भेददर्शनरूपोऽनाकारोपयोगः,संयोगे द्वादश ।१६। एकसमये उत्पद्यमानानां च्यवमानानां सङ्ख्येनि द्वारद्वयं ।१६। ।१७। स्थितिरायुषो जघन्योत्कृष्टमानं ।१८। आहारादिग्रहणशक्तयः पर्याप्तयस्ताश्चषट् आहार १ शरीरे २ न्द्रिय ३ श्वासोच्छ्वास ४ भाषा ५ मनः ६ स्वरूपाः ।१९। के जीवाः कतिभ्यो दिग्भ्य आगतमाहारद्रव्यमाहारयन्तीति किमाहारद्वारं ।२०। विशिष्टाः संज्ञास्तिस्रः । यया त्रिकालमर्थं जानाति सा दीर्घकालिकी संज्ञा मनस्कानामेव १, यश्च देहपालनाहेतोरिष्टवस्तुषु प्रवर्त्तते अहिताच्च निवर्त्तते वर्त्तमानकालविषयं च चिन्तनं यस्य तस्य हेतुवादोपदेशसंज्ञा द्वीन्द्रियादीनामेव २, यश्च सम्यग्दृष्टिः क्षायोपशमिकज्ञानयुक्तो यथाशक्ति रागादिनिग्रहपरस्तस्य दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा ३ ।२१। गतिर्भवान्तरगमनं ।२२। आगतिः परभवात्, ।२३। वेदश्च स्त्रीपुंनपुंसकभेदात् ।२४। ॥३–४॥ अथैतानि द्वाराणि २४ दंडकेऽवतारयति–

(टीका)--सङ्खित्त० दिट्ठी० गाथाद्वयस्य व्याख्यानं सुकरमपि तु पुनः किमपि क्रियते–मयेति कर्तृपदं बहिर्गम्यं । संक्षिप्ततरा तु संग्रहणी इयं शरीरादिचतुर्विंशतिद्वारात्मिका । तत्र शरीराणि पञ्च औदारिकादीनि । शीर्य्यते इति शरीरः विनाशकारित्वात् (विनाशित्वात) । पुंक्लीबलिङ्गः । अवगाहन्ते अवतिष्ठन्ते जीवा अस्यामिति अवगाहना । संहन्यन्ते दृढीकि-

यन्ते शरीरपुद्गला येन तत् अथवा संहन्यन्ते संहति-विशेषं प्राप्यन्ते शरीरावस्थावयवा यैस्तानि संहननानि। तानि (च) वज्रर्षभनाराचादिभेदात् षोढा। संस्थानं द्वेधा, जीवानां अजीवानां च। संतिष्ठन्ते प्राणिनोऽनेनाकारविशेषेणेति संस्थानं तच्च षोढा समचतुरस्रन्यग्रोधसादिवामनकुब्जहुंडभेदैः संस्थानानि भवन्ति। द्वितीयं तु अजीवानां रूपिणां पञ्चधा संस्थानं यथा,-परिमण्डलं वृत्तं त्र्यस्रं चतुरस्रमायतं च। इह तु जीवानां संस्थाने (न) प्रयोजनमित्यर्थः। संज्ञाश्चतुर्धा दशधा वा भवन्ति। चत्वारः प्रकारा यासां ताः। अथवा दश प्रकारा यासां ताः। यथा-आहारभयपरिग्रहमैथुनभेदाच्चतुर्धा। (पूर्वोक्तभेदचतुष्क) क्रोधमानमायालोभओघलोकभेदाच्चेति दश संज्ञाः स्युरित्यर्थः। तथा ग्रन्थान्तरोक्ताः सुखदुःखमोहधर्मरूपाश्चतस्रः एतास्वेवान्तर्भवन्ति इत्यर्थः (अनया) संजानातीति संज्ञा। कष्यन्ते हिंस्यन्ते प्राणिनोऽस्मिन्निति कषः संसारस्तस्यायो लाभो येभ्यस्ते कषायाः क्रोधाद्यश्चत्वारोऽप्यनन्तानुबन्ध्यादिभेदेन षोडश भवन्ति। लेश्याः कृष्णाद्याः षोढा स्युः। लिश्यते -श्लिष्यते कर्मणा सह जीवः आभिरिति लेश्याः। यदुक्तं—

"कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्, परिणामो य आत्मनः। स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्याशब्दः प्रवर्तते" ॥ १ ॥ कृष्णानीलकापो-

ततेजःपद्मशुक्लरूपाः,परमत्र ता द्रव्यरूपा अवस्थिता विचार्या न भावरूपाः। इन्द्रियं श्रोत्रादिभेदात् पञ्चधा। दुसमुग्घायेति० द्वौ समुद्घातौ जीवाजीवसम्बन्धिनौ भवतः। तत्राद्यं जीवसमुद्घातमाह-तथाहि-सम्यक् आत्मनो वेदनादिभिरेकीभावेन उत्प्राबल्येन घातः समुद्घातः। स च सप्तधा, यथा-वेदनाकषायमरणवैक्रियेत्यादि। वेदनादीनां षण्णां मानमन्तर्मुहूर्तं स्यात् सप्तमस्तु केवलिसमुद्घातो दण्डादिना लोकव्यापी, दण्डादि क्रमेण सकललोकस्य पूरणात, कालतोऽष्टसामयिकः। द्वितीयस्तु समुद्घातोऽचित्तमहास्कन्धरूपः; स च केवलिसमुद्घातवत अष्टसामयिकः परमितानधिकारान्नोक्तं। दिट्ठी० दृष्टिस्त्रिधा, यथा सम्यग्दृष्टिः १, मिथ्यादृष्टिः २, सम्यग्मिथ्यादृष्टिः ३ (च)।

दर्शनानि चत्वारि भवन्ति; यथा– चक्षुर्दर्शनं अचक्षुर्दर्शनमव· धिदर्शनं केवलदर्शनं (च) घटपटादिपदार्थसार्थसामान्याकारपरिज्ञानं ज्ञातव्यं । पदार्थविशेषाकारपरिज्ञानं पुनर्ज्ञानं ज्ञातव्यम् । अयमेव ज्ञानदर्शनयोर्भेदः । पञ्च ज्ञानानि भवन्ति । यथा पञ्चभिरिन्द्रियैः षष्ठेन मनसा जीवस्य यत् ज्ञानं स्यात् तन्मतिज्ञानं । श्रुतं द्विधा भवति । द्रव्यश्रुतं भावश्रुतं च, यथा–द्रव्यश्रुतं द्वादशाङ्गीरूपं, भावश्रुतं द्वादशाङ्गीसमुत्पन्नोपयोगरूपं । अवधिज्ञानं द्विप्रकारं–भवहेतुकं श्राद्धसाधुतिरश्चां (गुण· हेतुकं) च । मनःपर्यायज्ञानं सार्धद्वौ (द्वय) द्वीपसमुद्रस्थितसंज्ञिपञ्चेन्द्रियमनोविषयं द्विभेदं ऋजुमतिविपुलमतिरूपं साधूनामेव भवति । केवलज्ञानं घनघातिकर्मचतुष्टयक्षयसमुत्पन्नं सकललोकालोकविषयं । ज्ञानसाहचर्यादज्ञाप्यनु(ज्ञानु)क्रमपि त्रिधाऽज्ञानं, यथा–मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं विभङ्गज्ञानं । सप्त द्वीपसमुद्रान् यावत् विभङ्गज्ञानं तु पश्यति मिथ्यादृष्टीनामेव त्रीण्यज्ञानानि भवन्ति । एतत्सूत्रे नोक्तं बहिर्गम्यं । वाचां मनसां चाग्रतो वक्ष्यमाणाः प्रत्येकं चतुर्धा (चत्वारो) योगाः । तथा कायानां योगाः सप्तधा (सप्त सर्वमीलनेन पञ्चदश योगाः स्युरित्यर्थः। उपयोगो द्विधा–तत्र ज्ञानाज्ञानभेदाष्टकरूपाः साकारोपयोगाः (इतरे) चत्वारः, यथा– चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनकेवलदर्शनरूपाः । संयोगे एवं द्वादश उपयोगाः स्युरित्यर्थः। उत्पद्यन्ते (एपत्तिः) उपपातः । च्यवन्ते चेति (च्युतिः) च्यवनं। जीवानां उपपातच्यवनयोरिहापि सम्बन्धादुपपातच्यवनविषययोर्विरहकाललक्षणं–अपान्तरालकाललक्षणमेकसमयसङ्ख्या चेति गृह्यते इत्यध्याहारः । तिष्ठन्ति नरकादिभवे श‍ृङ्खलाबद्धा इव जन्तवः पाप(पुण्य)कर्मपरिणत्या स्थितिरायुर्जीवितमित्येकार्थाः। 'पज्जत्तित्ति' आहारादीनामत्र निर्वृत्तिर्निष्पत्तिर्यतो दलिकाद्–दलभूतात्पुद्गलसमुहाद् भवति तस्य दलिकस्य तामेवाहाराद्यभिनिर्वृत्तिं स्वस्वविषयपरिणमनरूपां प्रति यत् करणं जीवसम्बन्धिशक्तिरूपं सो पर्याप्तिः । ताश्च षोढा आहुः, यथा—आहारशरीरेन्द्रियश्वासोच्छ्वासभाषामनःस्वरूपाः । किमाहारेति० किमाहारकोऽनाहारको वा जीवः ? यद्वा किंस्वरूपः सचित्तादि-

आहारकः ? केन वा शरीरेणाहारोऽस्येति किमाहारः ? । आहरणं आहारः । सन्नोत्ति० विशिष्टा संज्ञास्तिस्रः । यया त्रिकालविषयमर्थं जानाति सा दीर्घकालिकी(क्ये)वसमनस्कानामेव । यश्च स्वदेहपालनहेतोरिष्टवस्तुषु प्रवर्तते अहिताच्च निवर्तते वर्तमानकालविषयं च चेतनं ज्ञानं यस्य तस्य हेतुवादोपदेशिकीसंज्ञा द्वीन्द्रियादीनामेव । यश्च सम्यग्दृष्टिः क्षायोपशमिकज्ञानयुक्तो यथाशक्तिहेयोपादेयनिग्रहपरस्तस्य दृष्टिवादोपदेशिकीसंज्ञा छद्मस्थसम्यग्दृशामेव इति संज्ञात्रिकमवमन्तव्यं । गमनं गतिः । आगमनमागतिः । अथ वेदत्रयमाह—पुंवेदः स्त्रीवेदः नपुंसकवेदः । प्रज्ञापनादिषु विस्तरेणाभिहिता अर्थाः ततः संक्षिप्य गृह्यन्ते प्रतिपाद्यन्तेऽभिधीयन्ते वाऽस्यामिति ग्रहेरणिरित्यौणादिके अणिप्रत्यये ङीप्रत्यये च सङ्ग्रहणीति निष्पन्नं । संक्षेपतो द्वारगाथाद्वयस्य व्याख्यानं कृतमित्यर्थः । अत्र चकारः समुच्चयार्थः ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ चतुर्विंशतिदण्डकेषु चतुर्विंशतिद्वाराणि निरूपयन्नाह—

चउ गब्भतिरियवाउसु, मणुआणं पंच सेस तिसरीरा ।
थावर चउगे दुहओ, अंगुलअसंखभागतणू ॥ ५ ॥

(अव०) 'दुव्वयणे बहुवयण' मिति प्राकृतलक्षणेन गर्भजतिर्यक्वाय्वोश्चत्वारि शरीराणि सम्भवन्ति, सम्भवश्च न भवन्त्येवेति निश्चयः, एवं सर्वत्रापि ज्ञेयम् । आहारकत्यागेन कयोश्चित्तयोर्वैक्रियकरणेन चतुर्णां सम्भवः, मनुष्याणां पञ्चापि । शेषा दण्डकास्त्रिशरीरा औदारिकयुक्ताभ्यां च तैजसकार्मणाभ्यां । १ । स्थावरचतुष्के पृथिव्यप्तेजोवायुरूपे 'दुहतोत्ति' द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां जघन्योत्कृष्टरूपाभ्यां अङ्गुलासंख्येयभागानि शरीराणि, यद्यपि बादराणां वानाग्न्यप्पृथिवीनां शरीराणि मिथोऽङ्गुलासङ्ख्येयगुणवृद्धानि तथापि यथोक्तमानान्येव ॥ ५ ॥

(टीका)—चउगब्भेत्ति० गर्भजतिर्यग्वाय्वोश्चत्वारि औदारिक-वैक्रियतैजसकार्मणलक्षणानि शरीराणि भवन्ति, भवन्तीत्यध्या-हारः । "दुव्वयणे बहुवयणमिति" प्राकृतलक्षणेन (द्वित्वेऽपि बहुवचनं) गर्भजतिर्यग्वाय्वोश्चत्वारि शरीराणि सम्भवन्ति, संभव एव न निश्चयेन । आहारकत्यागेन वैक्रियकरणेन च चतु-र्णां संभवः। 'मणुआणं पञ्चेति०' मनुष्याणां पञ्च औदारिकवै-क्रियआहारकतैजसकार्मणलक्षणाः शरीराः स्युः । सेसेति० शेषेषु दण्डकेषु त्रीणि शरीराणि भवन्ति, तान् दण्डकान् विस्तरेणाह—त्रयोदश देवानां सप्तपृथिवीभेदेनैकः नैरयिकाणां सर्वमीलनेन चतुर्दश दण्डकाः जातास्तेषु त्रयो वैक्रियतैजसकार्मणलक्षणाः शरीरा भवन्ति । तथा पृथिव्यप्तेजोवनस्पतीनां चत्वारः पञ्चमो द्वीन्द्रियाणां षष्ठस्त्रीन्द्रियाणां सर्वमीलनेन सप्त दण्डका जाता-स्तेषु त्रीणि औदारिकतैजसकार्मणलक्षणानि भवन्ति । सर्वमील-नेनैकविंशतिर्दण्डका जातास्तेषु त्रीणि शरीराणि भवन्ति इत्ययं भावः । प्रथमं शरीरद्वारं व्याख्यातं । अथावगाहनाद्वारमाह—थावरेति० वनस्पतिं मुक्त्वा स्थावरचतुष्केषु शरीरं द्विधा, यथा जघन्यतः उत्कृष्टतश्चाङ्गुलासङ्ख्येयभागप्रमाणं शरीरं स्यात्, अङ्गुलासंख्यातभागवपुर्मानं स्यादित्यर्थः, परं जघन्यापेक्षया उत्कृष्टमसङ्ख्येयगुणमित्यर्थः ॥ ५ ॥

सव्वेसिंपि जहन्ना, साहाविय अंगुलस्ससंखंसो ।
उक्कोस पणसयधणू, नेरइया सत्तहत्थ सुरा ॥६॥

(अव०)शेषाणां सर्वेषां विंशतिदण्डकजीवानां स्वाभाविकस्य मौलस्य शरीरस्य जघन्यावगाहना अङ्गुलस्यासङ्ख्यातो भागः । उत्कृष्टतः पञ्चशतधनुरुच्चा नैरयिकाः, सुराः सप्तहस्तोच्चाः ॥ ६ ॥

(टीका)—सव्वेसिंपि जहन्नेति० पृथिव्यप्तेजोवायून स्थावर-चतुष्कान् सत्यज्य विहाय सर्वेषामपि विंशतिदण्डकानां स्वभा-वतो जघन्याङ्गुलासंख्यातभागतनु स्यात् । सर्वनिकृष्टं वपुर्मानं स्यादित्यर्थः । अथ उत्कृष्टदेहमानमाह उक्कोस पणसयेति०

सप्तम्यां माघवत्याख्यायां नरकपृथिव्यां धनुःपञ्चशतप्रमाणवपुषः पञ्चशतकोदण्डशरीरमानाः नैरयिकाः जीवाः स्युः, स्युरित्यध्याहारः । ततोऽर्द्धो(र्धार्धो)ना ज्ञेया रत्नप्रभां यावत् । सौधर्मेशानयोर्देवानां तथा भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्काणां तूच्चत्वं वपुःप्रमाणं उत्कृष्टतः सप्त हस्ताः ज्ञेयाः, सप्त रत्नयो भवन्ति इत्यर्थः, "बद्धमुष्टिरसौ रत्निः" इति वचनात् ॥ ६ ॥

गब्भतिरि सहसजोयण,वणस्सई अहियजोयणसहस्सं ।
नरतेइंदि तिगाऊ, बेइंदिय जोयणे बार ॥७॥
जोयणमेगं चउरिं–दिदेहमुच्चत्तणं सुए भणिअं ।
वेउव्वियदेहं पुण, अंगुलसंखं समारंभे ॥ ८ ॥

(अव०) गर्भजतिरश्चां मत्स्यादीनां योजनसहस्रं, वनस्पतेः साधिकयोजनसहस्रं तदूर्ध्वं तु पृथ्वीविकारः । नरास्त्रीन्द्रियाश्च त्रिगव्यूतोच्चाः । द्वीन्द्रिया ' जोयणे बारत्ति ' द्वादशयोजनोच्छ्रयाः। चतुरिन्द्रियदेहमुच्चत्वेन योजनमेकं । श्रुते प्रज्ञापनादौ भणितमुक्तं प्रस्तावादाह–वैक्रियदेहं पुनः प्रारम्भेऽङ्गुलसङ्ख्यातभागमानं,उत्कृष्टं ' देवनरअहियलक्खंति ' द्वा० ॥ ८ ॥

(टीका)—गब्भतिरिसहसेति० मत्स्योरगादयो गर्भजास्तिर्यञ्चः सहस्रयोजनमानाः-सहस्रयोजनप्रमाणा भवन्ति भवन्तीत्यध्याहारः । वणस्सेति० प्रत्येकवनस्पतीनां मागरादिगतपद्मनालादीनां शरीरं देहमानं किञ्चिदधिकं योजनसहस्रमुच्चत्वं स्यात । ननु शरीरमानं उत्सेधांगुलेन समुद्रपद्मह्रदादीनां प्रमाणांगुलयोजनयोजनसहस्रावगाहत्वात् तद्गतपद्मनालादीनां तु उत्सेधांगुलापेक्षयात्यन्तदैर्घ्यं स्यात् ? अत आह– उत्सेधांगुलयोः सहस्रमाने जलाशये गोतीर्थादिस्थाने वनस्पतेः साधिकं योजनसहस्रं, तदूर्ध्वं तु पृथिवीविकार इत्यर्थः । नरतेइन्ति० श्रुते सिद्धान्ते नराणां मनुष्याणां त्रीन्द्रियाणां कर्णशृगालिकादीनां क्रोशत्रिकं देहो-

च्चत्वं भणितं कथितं अहतेति कर्तृपदं । गव्यूतित्रयमुच्चत्वं शरीरमानेन नरत्रीन्द्रियौ भवत इत्यर्थः । बेइंदियेति० द्वीन्द्रियाणां शङ्खप्रभृतीनां द्वादशयोजनप्रमाणं देहोच्चत्वं वपुर्मानं स्यादित्यर्थः ॥ ७ ॥ जोयणेति० चतुरिन्द्रियाणां मक्षिकाभ्रमरदंशककंशारिशलभपतङ्गवृश्चिकप्रमुखाणामुत्कृष्टतो योजनमेकं देहमानमुच्चत्वं भणितं कथितं । अत्र खण्डान्वयो ज्ञेयः, गाथात्रयेणावगाहनास्वरूपं व्याख्यातं । अथ पुनर्वैक्रियावगाहनामाह–वेउव्वियेति ,पुनर्वैक्रिय देहस्य प्रारम्भे जघन्यतोऽङ्गुलस्य संख्यांशः संख्येयभागं वपुर्भवति उत्तरवैक्रियशरीरापेक्षया । भवधारणीयं तु अङ्गुलासंख्येयभागं प्रारम्भे ॥ ८ ॥

अथोत्कृष्टां वैक्रियावगाहनामाह—

देवनर अहियलक्खं, तिरियाणं नव य जोयणसयाइं ।
दुगुणं तु नारयाणं, भणियं वेउव्वियसरीरं ॥ ९ ॥

(अव०) लब्धिवैक्रियशरीरिणो जीवतोऽन्तर्मुहूर्त्तात् तपरो न वैक्रियशरीरेऽवस्थानमस्ति । पुनरौदारिकशरीरस्य अवश्यं प्रतिपत्तेरिति ॥ ९ ॥

(टीका) देवनरेति० असुरकुमारादिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्माद्यच्युतावसानदेवानां च उत्कृष्टतः सहजशरीरग्रहणोत्तरकालं कार्यमाश्रित्य विविधा क्रियत इति उत्तरवैक्रिया च पुनर्देवानां उत्तरवैक्रियतनोर्योजनानां किञ्चिदधिकं लक्षं । तथा नराणां वैक्रियशरीरं किञ्चिदधिकं योजनलक्षं भणितं कथितं । ग्रैवेयकानुत्तरेषु देवानामुत्तरवैक्रियतनुर्नास्ति, सामर्थ्ये सति कार्याभावात्तदकरणमित्यर्थः । तिरियेति०, अत्र तुशब्दः पुनरर्थे तिरश्चां उत्कृष्टा वैक्रियतनुर्नवयोजनशतप्रमाणा भणिता । तु पुनः नैरयिकाणां स्वस्वाभाविकदेहादुत्तरवैक्रियशरीरं द्विगुणं ज्ञेयं,

यथाऽऽद्यायां रत्नप्रभायां धनुःपञ्चदशकं हस्तद्वयं द्वादशांगुलप्रमाणं । ततो द्वितीयायां धनुष(नूषि) पञ्चत्रिंशद्धस्तमेकं । तृतीयायां द्वाषष्टिर्हस्तद्वयं । तुर्यायां धनुषः(षां) पञ्चविंशत्यधिकं शतं । पञ्चम्यां पञ्चाशदधिकं शतद्वयं नैरयिकाणां देहमानमुच्चत्वेन स्यात । षष्ठ्यां नारकाणां धनुःपञ्चशतानि शरीरं स्यात् । पुनः सप्तम्यां नैरयिकाणामुच्चत्वेन धनुःसहस्रमेकं उत्तरवैक्रियदेहमानं स्यादित्यर्थः । जघन्यतस्तु तदेव नारकाणां द्विविधोऽपि स्वाभाविक उत्तरवैक्रियश्च क्रमादंगुलासंख्यातांशोऽऽङ्गुलसंख्यातांशश्च, जघन्यश्चोत्पत्तिसमय एव नान्यदा ॥ ९ ॥

अथ उत्तरवैक्रियशरीरमानमाह—

अंतमुहुत्तं निरए,मुहुत्तचत्तारि तिरियमणुएसुं ।
देवेसु अद्धमासो, उक्कोस विउव्वणाकालो ॥१०॥

(अव०) इतिवचनसामर्थ्यात् अन्तर्मुहूर्त्तचतुष्टयं तेषां देशबन्ध इत्युच्यते तन्मनान्तरमित्यवसेयम् । तृतीयसंहननद्वारमाह ॥१०॥

टीका—अन्तमुहुत्तन्ति० नरकस्थजीवानां वैक्रियशरीरस्यान्तर्मुहूर्त्तमुत्कृष्टमानं भवति । तिर्यग्मनुष्ययोर्वैक्रियशरीरस्य चत्वारो मुहूर्त्ताः उत्कृष्टाः स्थितयो भवन्ति (तिर्भवति) इत्यध्याहारः । भवनपत्यादिसौधर्माद्यच्युतान्तदेवानां उत्कृष्टतः उत्तरवैक्रियवपुषोऽर्द्धमासः कालः स्यात्। किञ्चिद्विशेषमाह–देवनैरयिकयोः स्वाभाविकंवैक्रियदेहउत्तरवैक्रियदेहश्च स्यात्,च पुनः तिर्यग्नरयोर्वैक्रियदेह.(अस्वाभाविक.) स्यात्। वायोरस्वाभाविकं स्वाभाविकदेहं स्यात । केषाञ्चिन्मते औदारिकं वैक्रियं च, केषाञ्चिन्मते वैक्रियमेवेत्यनुयोगद्वारसूत्रे प्रोक्तमित्यर्थः । पृथिव्यप्तेजोवनस्पतिषु विकलेन्द्रियेषु च वैक्रियदेहा न स्युरिति भावः । देहशब्दः पुंक्लीबत्वं (च.) । अवगाहनाद्वारं द्वितीयं प्ररूपितं ॥ १० ॥

अथ संहननद्वारं तृतीयमाह—

थावरसुरनेरइया, असंघयणा य विगलछेवट्ठा ।

संघयणछक्कं गब्भय–नरतिरिएसुं मुणेयव्वं ॥ ११ ॥

(अव०)स्थावरसुरनैरयिकाः संहननरहिताः अस्थ्यभावादेव । चः समुच्चये किं समुच्चिनोति सैद्धान्तिकमतेन सुरा नारकाश्च प्रथमसंहननिनः त्रिकलाः सेवार्त्ता इति अस्थिसम्बन्धमात्रसंहननवन्तः,गर्भजनरतिरश्चोः संहननषट्कं ज्ञातव्यम् । ३ द्वा० ॥ ११ ॥ चतुर्थं संज्ञाद्वारमाह—

टीका—थावरसुरेति० पञ्चानां स्थावराणां, त्रयोदशदेवानां, सप्तपृथिवीभेदेनैकः नारकाणां सर्वमीलनेनैकोनविंशतिर्दण्डका जातास्तेषु दण्डकेषु षडपि संहननानि न सन्ति न ज्ञातव्यानि इत्यर्थः । विकलेन्द्रियाणां द्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्नराणां च सहननं सेवार्त्तं ज्ञातव्यम् । कार्मग्रन्थिकास्तु संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिरश्चां अपि षडप्याहुः। क्वचिदेकेन्द्रियाणां सेवार्त्तं देवानां च वज्रर्षभनाराचमुक्तं, तदौपचारिकं । तुशब्दार्थे अपिशब्दः, तु पुनः गर्भजतिर्यग्मनुष्ययोः षडपि संहननानि ज्ञातव्यानि । को भावः ? गर्भजतिर्यग्नरेषु षडपि संहननान्याहुः विकलेष्वेकं सेवार्त्तमन्येष्वेकोनविंशतिदण्डकेषु न संहननानि भवन्ति इत्यर्थः । अत्र चकारः समुच्चयार्थः ॥११॥

संहननद्वारं तृतीयं निगमयन्नथ संज्ञाद्वाराभिधित्सया चतुर्थं संज्ञाद्वारं व्याख्यानयति—

सव्वेसिं चउ दह वा, सन्ना सव्वे सुरा य चउरंसा ।
नर तिरि छस्संठाणा, हुंडा विगलिन्दिनेरइआ ॥१२॥

(अव०)संज्ञा सर्वजीवानां चतस्रो दश वा, केषाञ्चिन्नृणां षोडशापि परमल्पत्वान्न विवक्षितम् । ४द्वा० । पञ्चमं संस्थानद्वारमाह– सर्वे सुराश्च भीमो भीमसेन इतिन्यायेन समचतुरस्रसंस्थानाः। नरतिर्यञ्चौ षट्संस्थानौ त्रिकलेन्द्रियनैरयिका हुण्डसंस्थानाः ॥१२॥ स्थिराणां षड्विधसंस्थानराहित्येऽपि संस्थानानां आकारभेदत्वादेव एतच्छरीराकारानाह—

टीका—सव्वेसिं चउ दहेति० सर्वेषां चतुर्विंशतिदण्डकजीवानां आहारभयमैथुनपरिग्रहलक्षणाश्चतस्रः संज्ञाः स्युः । अथवा दश संज्ञाः स्युः यथा– पूर्वोक्ताश्चतस्रः क्रोधमानमायालोभलोकआघलक्षणाः(णाश्चेति) संज्ञाः दश भवन्ति, भवन्तीत्यध्याहारः । चतुर्थं संज्ञाद्वारं व्याख्यातं । अथ पञ्चमं संस्थानद्वारं प्रोच्यते । सव्वे सुरेति० भवनपत्यादिवैमानिकान्ता देवाः सर्वेऽपि समचतुरस्रसंस्थानाः स्युः, समाश्चतस्रोऽस्रयश्चतुर्दिग्विभागोपलक्षिताः शरीरावयवाः यत्र समा वा चत्वारोऽस्राः कोणाः यत्र ते (तत्) समचतुरस्राः(स्रं) गभजनरा गर्भजतिर्यञ्चश्च तयोः समचतुरस्रन्यग्रोधपरिमण्डलसादिकुब्जवामनहुण्डाख्यानि षडपि संस्थानानि भवन्ति । हुंडा वीति० विकलेन्द्रियाणां नैरयिकाणां स्थावराणां च हुण्डाख्यसंस्थानं स्यात् । हुण्डस्य किं लक्षणं स्यात् ? तदुच्यते । यथा– सर्वावयवेषु अलक्षणं स्यात, शुभाकाररहितं हुण्डं भवति इत्यर्थं ।ननु चतुर्विंशतिदण्डकानां षडपि संस्थानानि प्रोक्तानि, यदि स्थावराणां नानाविधध्वजसूचिबुदबुदार्धमसूरा(आ)कारा वर्तन्ते तर्हि बहूनि संस्थानानि भवन्ति ! प्रोच्यते, अमी भेदा हुण्डान्तर्गता भवन्ति इत्यर्थः ॥ १२ ॥

हुण्डस्य भेदनाह—

नाणाविह धयसूइ, बुब्बुय वणवाउतेउअपकाया ।
पुढवीमसूरचंदा-कारा संठाणओ भणिआ ॥१३॥

(अव०) नानाविधं, १ ध्वजः पताका, २ सूची, ३ बुद्बुदाकाराणि क्रमेण वनस्पतिवायुतेजोऽप्कायशरीराणि । पृथ्वी अर्द्धमसूराकारा भणिता भगवत्यादौ ॥ १३ ॥ षष्ठं कषायद्वारमाह—

टीका—नाणाविहेति० वनस्पतयो नानाविधसंस्थाना विचित्रसंस्थानाः भणिताः। च पुनः वायवो ध्वजसंस्थाना भणिता । अग्नयः सूचिकलापसंस्थानाः भणिताः प्रोक्ताः । आपः स्तिबुकबिन्दुसंस्थानाः बुद्बुदाकारा भणिता कथिताः पंपोटा इति लोकोक्तिः । पृथिव्यो मसूरवच्चाकारा अर्धमसूराकारा इत्यर्थः ॥ १३ ॥

सव्वेवि चउकसाया, लेसछगं गब्भतिरियमणुएसुं ।
नारयतेऊवाऊ, विगला वेमाणिय तिलेसा ॥१४॥

(अव०) सर्वेपि जीवाः चतुष्कषायवन्तः । निष्कषायाश्च केचन मनुष्येषु । सप्तमं लेश्याद्वारमाह– लेश्याषट्कं गर्भजतिर्यग्मनुष्येषु, नारकतेजोवायुविकला वैमानिकाश्च त्रिलेश्याः प्रथमद्वितीयोः पृथिव्योः कापोता । तृतीयस्यामुपरि कापोता अधो नीला । पंकायां नीला धूमायां नीला कृष्णा च । षष्ठीसप्तम्योः कृष्णा एव । तथा सौधर्मैशानयोस्तेजः कल्पत्रये पद्मा लान्तकादिषु शुक्ला एवेति ॥ १४ ॥

पञ्चमं संस्थानद्वारं संहरन् षष्ठं कषायद्वारं प्रकपयति ॥
टीका- सव्वेवि चउ० इति० केवलिसिद्धजीवान् मुक्त्वा चतुर्विंशतिदण्डकानां जीवेषु चत्वारः कषायाः भवन्ति । षष्ठं कषायद्वारं वर्णितं । अथ सप्तमं लेश्याद्वारं विवृणोति । लेसेति० गर्भजतिर्यग्मनुष्ययोर्लेश्या. षडप्याहुः । च पुनः नारयेति० नैरयिकानां तेजसां वायूनां विकलेन्द्रियाणा च कृष्णाद्यास्तिस्रो लेश्या भवन्ति । वैमानिकानां देवानां तेजआद्यास्तिस्रो लेश्या भवन्ति, भवन्तीत्यध्याहारः ॥ १४ ॥

जोइसिय तेउलेसा, सेसा सव्वेवि हुंति चउलेसा ।
इंदियदारं सुगमं, मणुआणं सत्त समुग्घाया ॥१५॥

(अव०) ज्योतिष्काः केवलतेजोलेश्यावन्तः । शेषाः सर्वेऽपि पृथिव्यब्वनस्पतिभवनपतिव्यन्तराश्चतुर्लेश्या भवन्ति । तेजोलेश्यावतां केषाञ्चिद्देवानां भूजलवनेषूत्पादात् कियत्कालं तल्लेश्यासम्भवः ॥ ७ ॥ इन्द्रियद्वारं सुगमम् । ८ । नवमं समुद्घातद्वारमाह– मनुष्येषु सप्त समुद्घाताः॥ १ सप्तसमुद्घातानां नामान्याह–

टीका—जोइसियेति० तेजोलेश्याका ज्योतिष्काः भवन्ति । आद्यपदं व्याख्यातं । गाथाद्वितीयपादस्य व्याख्यानमाह-सेसा सव्वेवित्ति० शेषाः सर्वेऽपि चतुर्लेश्यावन्तः स्युः । को भावः ? चतुर्दशदण्डकेषु चतस्रो लेश्याः भवन्ति । तद् विस्तरेणाह-भवनपतीनां व्यन्तराणां च कृष्णा नीला कापोता तैजसी चेति चतस्रो लेश्याः स्युः । च पुनः पृथिव्यब्वनस्पतीनां कृष्णाद्याश्च-तस्रो लेश्याः स्युः, अत्रापि विशेषमाह-परमाधार्मिकाणां कृष्णैव ज्योतिष्केषु आद्यकल्पद्विके च तेजोलेश्या । कल्पत्रिके सनत्कुमारादिके पद्मलेश्या लान्तकादिषु चानुत्तरान्तेषु शुक्ललेश्या भवति भवति इत्यध्याहारः । सप्तमं लेश्याद्वारं निरूपितं । अथ अष्टम इन्द्रियद्वारं व्याख्यानयति-इंदियेति० इन्द्रियद्वारं सुगममपि वहितः किमपि विशेषमाह-तत्र इन्द्रियाणि पञ्च श्रोत्रादीनि प्रसिद्धान्येव सामान्यतः, विशेषतः पुनस्तानि द्विधा द्रव्येन्द्रियाणि भावेन्द्रियाणि (च) । तत्र द्रव्येन्द्रियाणि पुद्गलद्रव्यरूपाणि भावेन्द्रियाणि लब्ध्युपयोगलक्षणानि, तत्र पुनर्द्रव्येन्द्रियाणि निर्वृत्त्युपकरणभेदात् द्विधा । निर्वृत्तिरपि द्विधा अन्तर्बहिश्च । तत्र श्रोत्रेन्द्रियस्यान्तर्मध्ये कदम्बपुष्पाकारदेहावयवरूपा चक्षुषोर्मसूराकारा घ्राणयोर्गतिमुक्तपुष्पाकारा रसनायाः क्षुरप्राकारा स्पर्शेन्द्रियस्य च नानाकारा विचित्रसंस्थाना निर्वृत्तिरस्ति इत्यर्थः । द्रव्येन्द्रियस्वरूपं प्रोक्तं, अथ भावेन्द्रियाणि लब्ध्युपयोगरूपाणि जीवस्य ज्ञानावरणादिकर्मक्षयोपशमभावात् या शब्दग्रहणशक्तिः सा लब्धिः, येन पुनः शब्दादीनां ग्रहणपरिणामः स उपयोगः, एतद्द्वयरूपाणि भावेन्द्रियाणि । द्रव्येन्द्रियभावेन्द्रिययोः संस्थानं स्वरूपं च व्याख्यातं । अथ एषां पञ्चेन्द्रियाणां विषयमाह- श्रवणयोर्द्वादशयोजनविषयः स्यात्, द्वादशयोजनात मेघादीनां शब्दग्रहणशक्तिरस्ति इत्यर्थः। च पुनः चक्षुषोः किञ्चिदधिकं एकं लक्षं विषयः स्यात्, उत्कृष्टतः किञ्चिदधिकमेकं लक्षं दृष्टिप्रमाणं भवति इत्यर्थः, अत्र ज्ञातं विष्णुकुमारदृष्टान्तेन । च पुनः घ्राणेन्द्रियस्य नव योजनानि यावत् विषयः स्यात्, नवयोजनात् विषयं गृह्णाति इत्यर्थः । पुन उत्कृष्टतो रसनायाः नव योजनानि यावद्विषयः

स्यात्, नवयोजनात्पुद्गलरसमास्वादयतीत्यर्थः । यथा दूरतस्तितिडीरसालक्षारादीन् दृष्ट्वा मुखे जलं समेति इति दृष्टान्तो ज्ञेयः । तथा स्पर्शेन्द्रियस्य नवयोजनानि यावत् विषयो भवति, स्वशरीरं प्रारभ्य नवयोजनप्रान्तं यावत् पुद्गलद्रव्यं स्पर्शेन्द्रियो गृह्णाति इत्यर्थः । च पुनरेषां पञ्चानां विषयभेदं विवृणोति– श्रोत्रयोराकर्णन–श्रवणं त्रिधा भवति, यथा– शुभः अशुभः मिश्रश्च । अथवा जीवेभ्यो द्वीन्द्रियादिभ्यः,अजीवेभ्यः पटहादिभ्यो मिश्रेभ्यो भेर्यादिभ्यः,(शब्दानामुत्पन्नानां) कर्णयोराकर्णनं त्रिविधं स्यात् । च पुनः चक्षुषोर्विलोकनभेदाः पञ्चधा भवन्ति,यथा–चक्षुषा पञ्च शुक्लपीतरक्तनीलकृष्णा वर्णा गृह्यन्ते, पञ्चवर्णा दृष्टिगोचरा भवन्ति इत्यर्थ । तथा घ्राणेन्द्रियस्य द्वौ सुगन्धदुर्गन्धविषयभेदौ भवतः, घ्राणेन्द्रियं सुगन्धदुर्गन्धे गृह्णाति इत्यर्थः, घ्राणविषये समभ्येत इत्यर्थः । रसनायाः पञ्च कटुकादिविषयभेदा भवन्ति । केऽपि षडप्याहुः, यथा कटुकतिक्तकषायाम्लमधुरक्षारभेदात् । षण्णामपि रसानां स्वादं जिह्वा जानाति इत्यर्थः । तथा स्पर्शेन्द्रियस्याष्टौ सुकुमालादिविषयभेदा भवन्ति, यथा– सुकुमालकर्कशगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षभेदात्. स्पर्शेन्द्रियः स्पर्शेन स्पर्शं जानाति इत्यर्थः । पञ्चेन्द्रियाणां सर्व्वेऽपि त्रयोविंशतिर्विषयभेदा जाता इत्यर्थः । अथ श्रवणादीनामवगाहनामाह–चतुर्णां कर्णचक्षुर्घ्राणरसनानामङ्गुलासंख्येयभागावगाहना भवति । च पुनः स्पर्शेन्द्रियस्य स्वदेहप्रमाणावगाहना ज्ञातव्या । अथ केषामिन्द्रियाणां कामभोगेच्छा भवति तल्लक्षणमाह–श्रवणचक्षुषोः कामेच्छा भवति, च पुन घ्राणरसनास्पर्शेन्द्रियाणा भोगेच्छा भवति, आद्यौ द्वौ कामिनौ ज्ञेयौ त्रयः प्रान्ताः भोगिनो ज्ञेया इत्यर्थः । अथ एषां पञ्चेन्द्रियाणां पुनरुपकरण किं स्यात्तदाह–कर्णेन्द्रियादीनां निजनिजविषयग्रहणशक्तिर्यथा चन्द्रहासस्य छेदनशक्तिरिव । इन्द्रियाणां सदृष्टान्तो विचारः प्रवचनसारोद्धारवृत्तितो भावनीयः । अष्टममिन्द्रियद्वारं व्याख्यातं । अथ नवमं समुद्घातद्वारं प्ररूपयति–मणुएसु इति० मनुष्ये सप्त समुद्घाता भवन्ति ॥ १९ ॥

वेयणकसायमरणे, वेउव्विय तेअए अ आहारे।
केवलिय समुग्घाया, सत्त इमे हुंति सन्नीणं ॥१६॥

टीका—वेयणकसायेति० संज्ञिमनुष्याणाममी सप्त वेदनाकपायमरणादि(घाः)समुद्घाता भवन्ति, भवन्तीत्यध्याहारः ॥१६॥

एगिंदियाण केवल--तेउआहारग विणा उ चत्तारि।
ते विउव्वियवज्जा, विगला सन्नीण ते चेव ॥१७॥

टीका—एगिन्दियाणेति० एकेन्द्रियाणां केवलतैजसआहारकान् विना- वर्जयित्वा चत्वारो वेदनाकषायमरणवैक्रियलक्षणाः समुद्घाता भवन्ति। तु पुनः वैक्रियवर्ज्जास्ते पूर्वज्ञाः (काः)। के ते ? केवलतैजसआहारकवैक्रियसमुद्घातवर्ज्जा विकला भवन्ति, विकलानां त्रयो वेदनाकषायमरणरूपाः समुद्घाता भवन्तीत्यर्थः। संज्ञिनां ते सप्त समुद्घाता भवन्ति। तुः पुनरर्थे। एव निश्चयार्थे। चः समुच्चयार्थे ॥ १७ ॥

पण गब्भतिरिसुरेसु, नारयवाउसु चउर तिय सेसे।
विगल दुदिट्ठी थावर, मिच्छत्ति सेस तिय दिट्ठी।१८।

(अव०) गर्भजतिर्यक्सुरयोः पञ्च, नारकवाय्वोश्चत्वारः। शेषे स्थावरे विकले च त्रयः समुद्घाताः सर्वत्रानुक्रमेण ।९। दशमं दृष्टि द्वारमाह- विकलेषु दृष्टिद्विकं सम्यक्त्वमिथ्यात्वरूपं,स्थावरा मिथ्यात्विनः। शेषास्तिर्यक्सुरनारकनरास्त्रिदृष्टयः सम्यक्मिथ्यात्वमिश्र सहिता भवन्ति १० ॥ १८ ॥ अथैकादशदर्शनद्वारमाह—

टीका—पणगब्भेति, गर्भजतिर्यक्षु भवनपत्यादिवैमानिकान्तेषु देवेषु पञ्च समुद्घाता भवन्ति। तथाहारककेवलिसमुद्घाताभावात्। नारयेति० नैरयिकवाय्वोराद्याश्चत्वारः समुद्घा-

ता भवन्ति । तियसेसे इति०, शेषेषु त्रयः समुद्घाता भवन्ति । चकारात् चतुर्षु पृथिव्यप्तेजोवनस्पतिषु विकलेन्द्रियेषु चा-धात्रयः समुद्घाता भवन्ति । अर्थात् सप्तदण्डकेषु त्रयः समुद-घाता भवन्तीत्यर्थः । नवमं समुद्घातद्वारं व्याख्यातं । अथ द-शमं दृष्टिद्वारं कथ्यते । विगलेति० विकलेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रि-येषु द्वे दृष्टी भवतः, सम्यग्दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिश्चेत्यर्थः । स्थावरा-णामेका मिथ्यादृष्टिः स्यात् । सेसति० शेषेषु दण्डकेषु तिस्रो दृष्टयो भवन्ति । सविस्तरेणाह–नैरयिकाणां भवनपत्यादिवै-मानिकान्तानां देवानां मनुष्याणां गर्भजतिरश्चां च तिस्रो दृष्ट-यः प्राप्यन्ते । कोऽर्थः ? षोडशदण्डकेषु तिस्रो दृष्टयो भवन्ती-त्यर्थः । दशमं दृष्टिद्वारं व्याख्यातं । चः समुच्चयार्थः ॥ १८ ॥

अथ एकादशं दर्शनद्वारमाह—

थावरबितिसु अचक्खू, चउरिंदिसु तदुगं सुए भणियं
मणुआ चउदंसणिणो, सेसेसु तिगं तिगं भणिअं ॥१९॥

(अव०) स्थावरद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियेषु केवलमचक्षुर्दर्शनं, चतुरि-न्द्रियेषु तद् द्विकं चक्षुरचक्षूरूपं श्रुते कर्मग्रन्थादौ भणितं,मनुष्याश्च-तुर्दर्शनिनः। शेषेषु सुरनारकतिर्यक्षु त्रिकं त्रिकं दर्शनस्य चक्षुरचक्षुरव-धिरूपं ।११। ॥१९॥ द्वारद्वयं समकमाह—

टीका—थावरबितिसुत्ति० पञ्चसु स्थावरेषु द्वीन्द्रियेषु त्रीन्द्रि-येषु च अचक्षुर्दर्शनमेकं भणितं प्रोक्तं श्रुते । चतुरिन्द्रियेषु तद्-द्विकं भणितं तयोश्च चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोर्द्विकं तद्द्विकं । च पुनः मनुष्याः चतुर्दर्शनिनो भवन्ति, मनुष्येषु चत्वारि चक्षुरचक्षुरव-धिकेवलरूपाणि दर्शनानि भणितानीत्यर्थः । सेसेसु तिगं तिगं-ति० शेषेषु दण्डकेषु त्रिकं त्रिकं भणितम् । नैरयिकेषु भवनप-त्यादिवैमानिकावसानेषु तिर्यक्षु चाद्यानि त्रीणि दर्शनानि भव-न्ति, एतावता पञ्चदशदण्डकेषु त्रीणि आद्यानि दर्शनानि भव-न्तीत्यर्थः । दर्शनद्वारं समुदीरितम् ॥ १९ ॥

अथ द्वादशं ज्ञानद्वारं व्याख्यानयति—

अन्नाण नाण तिय तिय, सुरतिरिनिरए थिरे अनाणदुगं
नाणन्नाणदु विगले, मणुए पण नाण ति अनाणा २०।

(अव०) द्वन्द्वैकवद्भावात् सुरतिर्यग्निरयेऽज्ञानत्रिकं ज्ञानत्रिकं च भवति सम्यक्त्वप्राप्तौ स्थिरे ज्ञानद्विकं, यद्यपि भूदकवनेषु सैद्धान्तिकमतेन सम्यक्त्वं वमतां देवानां तेषूत्पादे सास्वादनसद्भावाच्च श्रुतमती भवतः, परं नेहाधिकृते विकले ज्ञानाज्ञानयोर्द्विकं, मनुष्येषु पञ्च ज्ञानानि त्रीण्यज्ञानानि भवन्ति ॥ २० ॥ चतुर्दशं योगद्वारमाह—

टीका—अन्नाणनाणेति० सर्वेषु देवेषु तिर्यक्षु नैरयिकेषु च ज्ञानत्रिकं भवति, त्रीणि मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानरूपाणि भवन्तीत्यर्थः । च पुनः विकलेषु द्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु ज्ञानद्विकं भवति, मतिज्ञानश्रुतज्ञाने स्यातामित्यर्थः । च पुनः मनुष्येषु पञ्चज्ञानानि भवन्ति, मतिज्ञानश्रुतज्ञानावधिज्ञानमनःपर्यायज्ञानकेवलज्ञानरूपाणि भवन्तीत्यर्थः । द्वादशं ज्ञानद्वारं प्ररूपितम् । अथ गाथान्तर्भूतं त्रयोदशमज्ञानद्वारं निरूप्यते-सर्वेषु देवेषु तिर्यक्षु नैरयिकेषु त्रीणि मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानरूपाणि अज्ञानानि भवन्ति । च पुनः स्थावरेषु अज्ञानद्विकं भवति, मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं च स्यादित्यर्थः । पुनः द्विकलेषु अज्ञानद्विकं भवति, मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं च स्यादित्यर्थः । मनुष्येषु मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानरूपाणि त्रीण्यज्ञानानि भवन्ति । ज्ञानद्वारान्तरज्ञानद्वारमन्तर्भूतं नत्र प्रादुष्कृतं । अत्र चकारः समुच्चयार्थः ॥२०॥

अज्ञानद्वारं संहृत्याथ चतुर्दशं योगद्वारमाह—

सच्चेअरमीसअसच्च-मोस मणवय विउव्विआहारे ।
उरलं मीसा कम्मण, इय जोगा देसिया समए ॥ २१ ॥

टीका—सच्चेअरेति० प्रथमः सत्यमनोयोगः १ । इतरो द्वितीयोऽसत्यमनोयोगः २ । तृतीयो मिश्रमनोयोगः ३ । चतुर्थोऽसत्यामृषामनोयोगः ४ । तथैव वचनस्यापि चत्वारो योगा ज्ञेयाः । नवम औदारिकयोगः ९ । दशम औदारिकमिश्रयोगः १० । एकादशो वैक्रिययोगः ११ । द्वादशो वैक्रियमिश्रयोगः १२ । त्रयोदश आहारकयोगः १३ । चतुर्दश आहारकमिश्रयोगः १४ । त्रयाणामौदारिकादीनां प्रत्येकं मिश्रशब्दः प्रयोज्यः । पञ्चदशस्तु तैजसकार्मणयोगः १५ । को भावः ? मनोवचनयोरष्टौ योगाः कायस्य सप्त योगाश्च स्युः, सर्वे पञ्चदश योगा ज्ञेया इत्यर्थः । समये सिद्धान्ते भगवता इति योगा दर्शिताः, आगमे योगाः कथिता इत्यर्थः । कथमितीति किं ते पूर्वोक्ता एवेत्यर्थः ॥२१॥

केषां कियन्तो योगा भवन्ति तदाह—

इक्कारस सुरनिरए, तिरिएसुं तेर पनर मणुएसुं ।
विगले चउ पण वाए, जोगतियं थावरे होइ ॥२२॥

(अव०) औदारिकद्विकाहारकद्विकाभावात्सुरनिरययोर्विषये एकादश योगाः । तिर्यक्षु त्रयोदश केषांचिद्वैक्रियलब्धिसम्भवेन तद्द्विकसम्भवात् । पञ्चदश मनुष्येषु, विकले औदारिकद्विककार्मणान्तिमभाषारूपं योगचतुष्कं, पञ्च वाते औदारिकद्विकवैक्रियद्विककार्मणरूपं योगत्रिकं स्थावरचतुष्के भवति ॥ २२ ॥ पञ्चदशमुपयोगद्वारमाह—

टीका—इक्कारेति० भवनपत्यादिवैमानिकान्तेषु नैरयिकेषु चौदारिकौदारिकमिश्राहारकाहारकमिश्रवर्ज्जा एकादश योगा भवन्ति । ते के ? मनोवचनयोरष्टौ कायस्य त्रयो वैक्रियवैक्रियमिश्रतैजसकार्मणरूपाः योगाः स्युः । तथा तिर्यक्षु आहारकाहारकमिश्रौ विहाय अन्ये त्रयोदश योगा भवन्ति । च पुनः मनुष्येषु पञ्चदश पूर्वोक्ता योगा भवन्ति । च पुनः विकलेषु द्वित्रि-

चतुरिन्द्रियेषु असत्यवचनौदारिकौदारिकमिश्रतैजसकार्म्मणभेदा-श्चत्वारो योगाः स्युः । च पुनः वायौ औदारिकौदारिकमिश्र-वैक्रियवैक्रियमिश्रतैजसकार्मणलक्षणभेदात् पञ्च योगा भवन्ति । वायून् वर्जयित्वा चतुर्षु स्थावरेषु औदारिकौदारिकमिश्रतैजस-कार्मणलक्षणाः त्रयो योगाः स्युः । योगद्वारं व्याख्यातम् । अत्र चकारोऽध्याहारः ॥ २२ ॥

अथ पञ्चदशमुपयोगद्वारं व्याख्यानयति—

ति अनाण नाण पण चउ, दंसण बार जिअलक्ख-णुवओगा।
इय बारस उवओगा, भणिया तेलुक्कदंसीहिं ॥२३॥

टीका—तिअनाणनाणेति०, त्रिलोकदर्शिभिर्द्वादश उपयोगाइति भणिताः । त्रयाणां लोकानां समाहारस्तत्त्रिलोकं, त्रिलोकं पश्य-न्ति ते त्रिलोकदर्शिनस्तैः कथमितीति किं ते ? तानाह—मत्य-ज्ञान-श्रुताज्ञान-विभङ्गज्ञानरूपाणि त्रीण्यज्ञानानि तथा पञ्चज्ञाना-नि च प्रसिद्धानि, च पुनः चत्वारि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्श-नलक्षणानि दर्शनानि, सर्वेऽपि मिलिता द्वादश उपयोगा जाता भवन्ति, भवन्तीत्यध्याहारः तत्र ज्ञानानि विशेषार्थावगाहीनि । दर्शनानि तु सामान्यार्थावगाहीनि । एतेषां (एते) द्वादश जीवलक्षणानि, इति स्वरूपकथनम् । उपयोगा नाम्नेति ज्ञात-व्याः ॥ २३ ॥

केषु केषु कति कति उपयोगा भवन्ति ? तानाह—

उवओगा मणुएसु, बारस नव निरयतिरियदेवेसु ।
विगलदुगे पण छक्कं, चउरिंदिसु थावरे तिअगं ॥२४॥

(अव०) मनुष्येषु द्वादशोपयोगाः । अष्टौ साकाराश्चत्वारो निराकाराः,एत एव मनःपर्यायकेवलज्ञानकेवलदर्शनरहिता नव नि-

रयतिर्यग्देवेषु, विकलद्विके मति १ श्रुत २ मत्यज्ञान ३ श्रुताज्ञान ४ अचक्षुदर्शनरूपाः पञ्चोपयोगाः । चतुरिन्द्रियेषु पञ्च पूर्वोक्ताः चक्षुर्दर्शनसहिताः षट् उपयोगाः । स्थावरे त्रिकं मत्यज्ञानश्रुताज्ञाना चक्षुर्दर्शनरूपम् ॥ २४ ॥ षोडशं सप्तदशं च संख्याद्वारमाह—

टीका—उवओगा मेति० मनुष्येषु द्वादश उपयोगा भवन्ति । च पुनः नैरयिकेषु तिर्यक्षु च भवनपत्यादिवैमानिकान्तेषु नव उपयोगा भवन्ति, त्रीण्यज्ञानानि आद्यानि त्रीणि ज्ञानानि केवलदर्शनरहितानि त्रीणि दर्शनानि ज्ञेयानि, सर्वेऽपि मिलिता नव उपयोगा जाता इत्यर्थः । च पुनर्विकलद्विके द्वीन्द्रिये त्रीन्द्रिये च मतिज्ञान–श्रुतज्ञान–मत्यज्ञान–श्रुताज्ञान–अचक्षुदर्शनभेदात् पञ्च उपयोगा भवन्ति । तथा चतुरिन्द्रियेषु मतिज्ञानश्रुतज्ञानमत्यज्ञानश्रुताज्ञानचक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनभेदात् षट् उपयोगा भवन्ति । पञ्चसु स्थावरेषु मत्यज्ञानश्रुताज्ञानअचक्षुर्दर्शनभेदास्त्रय उपयोगा भवन्ति । उपयोगद्वारं व्याख्यातम् ॥ २४ ॥

अथ षोडशमुपपाताख्यं सप्तदशं च्यवनाख्यं चेति द्वारद्वयं गाथयाऽऽह (एकयैवाह)—

संखमसंखा समए, गब्भयतिरिविगलनारयसुरा य।
मणुआ नियमा संखा, वणणंता थावर असंखा ।२५।

(अव०) चतुर्दशरज्ज्वात्मकेऽपि लोके एकस्मिन् समये उत्पद्यमाना नियमेति पदं सर्वत्र ग्राह्यं, तेन नियमान्निश्चयेन गर्भजतिर्यग्विकलनारकसुराश्च एको द्वौ त्रयो दश विंशतिर्यावत्सङ्ख्याता-असङ्ख्याता वा प्राप्यन्ते नत्वनन्ताः । मनुष्यास्तु नियमात्सङ्ख्याता एव । वनस्पतयोऽनन्ताः “ निच्चमसंखो भागो अणंतजीवो चयइ एइ ” इतिवचनात् शेषाश्चत्वारः स्थावरा असङ्ख्याता एव न सङ्ख्याता न चानन्ताः ॥ २५ ॥ प्रस्तावादाह—

टीका—गर्भजतिर्यञ्चो विकला द्वित्रिचतुरिन्द्रिया नैरयिका भवनपत्यादिवैमानिकान्ताश्चैकस्मिन् समये जघन्यत एको द्वौ त्रयो वा उत्कृष्टतः संख्याता असंख्याता वोपपाते तथैव च्यवने च भवन्ति । को भावः ? एकस्मिन् समये उत्कृष्टतः संख्याता असंख्याताश्च गर्भजतिर्यगादयः उत्पद्यन्ते च्यवन्ते चेत्यर्थः । विशेषमाह—केवलं सहस्रारादूर्ध्वं सर्वत्र देवाः संख्याता उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च, यतस्तत्र मनुष्या एव यान्ति, आनतादिच्युता देवाश्च नरेष्वागच्छन्ति अयं विशेषः । तथा एकस्मिन् समये एकादिसंख्यानां चोपपाते तथैव च्यवने ज्ञेया, अथवा नियमेति पदं सर्वत्र योज्यम् । सम्मूर्च्छिममनुष्या असंख्येया उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च । च पुनः वनस्पतिकायिका जीवाः स्वस्थानतः प्रतिसमयमनन्ता एवोत्पद्यन्ते । तथैव च्यवन्ते, यद्यस्मात् कारणात् एकैकस्मादपि निगोदात् तदसंख्येयभागोऽनन्तजीवात्मको नित्यं च्यवते उद्वर्तते एति चोत्पद्यते । यदा तु परस्थानत उत्पद्यमानाश्चिन्त्यन्ते तदा संख्याता असंख्याता एवेत्यर्थः । अथ स्थावराः पृथिव्याद्याः एकेन्द्रियाः स्वस्थानतः परस्थानतो वेत्यनपेक्ष्य सामान्यतः उत्पत्तौ चिन्त्यमानाः प्रत्येकमनुसमयमसंख्याता भवन्त्युत्पद्यन्ते तथैव असंख्याता एव च्यवन्ते, न पुनः समयानन्तरेण नाप्येकाद्याः संख्याताः॥ २५ ॥

असंन्निनर असंखा, जह उववाए तहेव चवणे वि
बावीससगतिदसवास-सहस्स उक्किट्ठ पुढवाई ॥२६॥

(अव०) असंज्ञिनो नरा उत्पद्यमाना असङ्ख्याता लभ्यन्ते । अत्रवातिदेशमाह— यथोपपातद्वारं सङ्ख्यामाश्रित्य व्याख्यातमेवं च्यवनद्वारमप्यवसातव्यम्, समानत्वादुपपातच्यवनयोः । अष्टादशं आयुर्द्वारमाह— अग्रेऽपि नरप्यायुरिति पदं सर्वत्रानुवर्त्तनीयम्, तेन पृथिव्याः द्वाविंशतिवर्षसहस्राण्युत्कृष्टमायुरिति सर्वत्र योज्यम् । एवं उदकस्य सप्त वायोस्त्रीणि, वनस्पतेर्दशवर्षसहस्राणि ॥ २६ ॥

टीका-असन्निति० असंज्ञिनो मिथ्यादृष्टयः सर्वपर्याप्तिभिरपर्याप्ताश्च एवंविधा नरा असंख्याताः प्रादुर्भवन्ति तथैवासंख्याता एव च्यवन्ते-म्रियन्ते च । यथा उपपातो भवति तथैव च्यवनमपि ज्ञेयमित्यर्थः । अपिशब्दः समुच्चयार्थः । उपपातच्यवनद्वारमभिधाय अथाष्टादशं स्थितिद्वारमाह- बावीससेति० पृथिवीकायजीवानां द्वाविंशतिवर्षसहस्रा उत्कृष्टा स्थितिः स्यात् । अथाप्कायस्थितिमाह- अप्कायस्य सप्तवर्षसहस्रा उत्कृष्टा आयुःस्थितिर्भवति । अथ वायुकायस्य स्थितिमाह- वायुकायस्य त्रयो वर्षसहस्रा उत्कृष्टा स्थितिः स्यात् । अथ वनस्पतिकायस्योत्कृष्टां स्थितिमाह- वनस्पतीनां तरुगणानां उत्कृष्टा दशवर्षसहस्रा स्थितिर्भवति ॥ २६ ॥

तिदिणग्गि तिपल्लाऊ, नरतिरिसुरनिरयसागरातत्तीसा

वंतरपल्लं जोइस, वरसलक्खाहियं पलियं ॥ २७ ॥

(अव०) अग्नेः त्रीणि दिनान्यायुः । गर्भजतिर्यग्नरा त्रिपल्यायुषो देवकुर्वादिषु सुरनारकाणां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि व्यन्तराणां पल्योपमम्, ज्योतिषां वर्षलक्षाधिकं पल्योपमम् ॥ २७ ॥ असुराणामायुःस्थितिमाह—

टीका—तिदिणग्गीति० तेजस्कायस्य उत्कृष्टा स्थितिः त्रीणि दिनानि भवन्ति । स्थावराणां स्थितिं प्ररूप्याथ नरतिरश्चाः स्थितिमाह-तिपल्लेति० नरतिरश्चोस्त्रीणि पल्योपमानि स्थितिर्भवति । अथ सुरनैरयिकानां स्थितिमाह-सुरनैरयिकयोस्त्रयस्त्रिंशत्सागराणि उत्कृष्टा स्थितिर्भवति । अथ व्यन्तराणां स्थितिमाह-वन्तरेति० व्यन्तरदेवदेवीनां दशवर्षसहस्राणि जघन्या स्थितिः स्यात् । अथ उत्कृष्टां स्थितिमाह- व्यन्तरदेवानां पल्योपमं व्यन्तरदेवीनां तु पल्यार्द्धं ज्योतिष्काणां चन्द्ररविग्रहनक्षत्राणां च वर्षाणां लक्षेणाधिकं पल्योपममुत्कृष्टमायुरवगन्तव्यम्। एषां किञ्चिद्विवरणमाह-चन्द्राणां लक्षेणाधिकं पल्योपममायुस्ततो रवीणां वर्षाणां सहस्राधिकं पल्योपमं ततो ग्रहाणां पल्योपमं

ततो नक्षत्राणां पल्योपमार्द्धं ततस्तारकाणां पल्यस्य चतुर्थो भागः। एषां देवीनां स्थितिमाह—चन्द्रविमानवासिदेवीनां पञ्चाशद्वर्षसहस्राधिकं पल्यार्द्धं ततः सूर्यदेवीनां पञ्चशतवर्षाधिकं पल्यार्द्धं ततो ग्रहदेवीना पल्यार्द्धमेव नक्षत्रदेवीनां विशेषाधिकः पल्यस्य चतुर्थो भागः ततस्तारकदेवीनां किञ्चिदधिकः पल्यस्याष्टमो भागः । अथ ज्योतिष्काणां जघन्यां स्थितिमाह—चन्द्रादिदेवदेवीरूपाणां चतुर्णां युगलानां पल्यस्य चतुर्थो भागः पञ्चमके युगले तारकदेवदेवीरूपे पल्याष्टमो भागः ॥२७॥

असुराणां स्थितिमाह—

असुराण अहियअयरं, देसूणदुपल्लयं नवनिकाए ।
बारस वासुणपणदिण, छम्मासुक्किट्ठ विगलाऊ ॥२८॥

(अव०) असुराणां चमरादीनां कियताप्यधिकमतरं सागरोपमशेषे निकायनवके देशोनपल्योपमद्विकं दक्षिणदिशमाश्रित्य द्व्यर्धपल्योपमं उत्तरस्यां तु द्वे देशोनपल्योपमे । द्वीन्द्रियाणां द्वादशवर्षाणि । त्रीन्द्रियाणामेकोनपञ्चाशद्दिनानि । चतुरिन्द्रियाणां षण्मासा उत्कृष्टमायुः । २८ । उक्तोत्कृष्टा स्थितिः । अथ जघन्यान्तामेवाह—

टीका—असुराण अहियेति० असुराणां किञ्चिदधिकमेकमतरमेकं सागरोपममित्यर्थः । तत्र दाक्षिणात्यानामसुराणामेकमतरमौत्तराणां साधिकमतरमित्यर्थः । दाक्षिणात्यानां धरणेन्द्रादीनां नवनिकायानां द्वितीयमर्द्धं यस्य (द्वितीयस्यार्धं यत्र) तद् द्व्यर्द्धं सार्द्धपल्योपमा स्थितिर्भवति इत्यर्थः । तथा उत्तरदिग्वर्तिनां नवनिकायानां देशोने किञ्चिदूने द्वे पल्योपमे भवतः। तरीतुमशक्यं प्रभूतकालतरणीयत्वादतरं सागरोपमं । असुराणां स्थितिं प्ररूप्य अथ विकलानां स्थितिं प्ररूपयति । बारसेति० विकलानां—द्वीन्द्रियाणां त्रीन्द्रियाणां चतुरिन्द्रियाणां च द्वादश वर्षाणि एकोनपञ्चाशद्दिनानि षण्मासाश्च क्रमेणोत्कृष्टा स्थितिर्ज्ञेया ज्ञातव्या इत्यर्थः ॥ २८ ॥

पृथिव्यादिदशपदानां जघन्यां स्थितिमाह—

पुढवाइदसपयाणं, अंतमुहुत्तं जहन्नआउठिई ।
दससहस्सवरिसठिइआ, भवणाहिवनिरयवंतरिया ॥ २९ ॥

(अव०) स्थावरपंचकविकलत्रिकतिर्यक्नराणामंतर्मुहूर्त्तं जघन्यायुः स्थितिः । भवनाधिपनरकव्यंतरा जघन्यतो दशसहस्रस्थितिका भवंति २९ ॥ अथ वैमानिकानामायुःस्थितिमाह ।

टीका—पुढवाइदसेति० पञ्च स्थावरास्त्रयो विकलेन्द्रिया द्वौ मनुष्यतिर्यञ्चौ सर्वाणि मीलितानि पृथिव्यादीनि दश पदानि जातानि । एतेषां पृथिव्यादिदशपदानामन्तर्मुहूर्त्तं जघन्यमायुर्भवति । अथ भवनाधिपानां जघन्यस्थितिमाह- दससहसेति० भवनाधिपानां नैरयिकाणां व्यन्तराणां च दशवर्षसहस्राणि जघन्या स्थितिर्ज्ञेया ॥ २९ ॥

अथ वैमानिकानां स्थितिमाह—

वेमाणिअजोइसिया, पल्लतयठंसआउआ हुंति ।
सुरनरतिरिनिरएसुं, छ पज्जत्ती थावरे चउगं ॥ ३० ॥

(अव०) वैमानिका ज्योतिषिकाश्च जघन्यतः क्रमेण एकपल्योपमाष्टभागायुषो भवन्ति । अथैकोनविंशतितमं पर्याप्तिद्वारमाह । सुरनरतिर्यक्निरयेषु पर्याप्तेषु षट्पर्याप्तयो भवन्ति । स्थावरे आहारशरीरइंद्रियश्वासोच्छ्वासरूपं पर्याप्तिचतुष्कं, अपर्याप्ता अपि जीवा पर्याप्तित्रयं समाप्यैव म्रियंते नार्वाक् ॥ ३० ॥

टीका—वेमाणीति० वैमानिकानां जघन्यं पल्योपममायुर्भवति । ज्योतिष्काणां च तदष्टांश आयुर्भवति । तस्य पल्यस्य अष्टांशः पल्यस्याष्टांशोऽ(पल्याष्टांशोऽ) ष्टमो भागो भवती-

त्यर्थः । उत्कृष्टजघन्ययोः स्थितिमभिधाय अथैकोनविंशतितमं पर्याप्तिद्वारमाह–सुरनरेति० भवनपत्यादिवैमानिकान्तेषु सुरेषु नरेषु नैरयिकेषु तिर्यक्षु च षडपि पर्याप्तयो भवन्ति । पञ्चसु स्थावरेषु आहारशरीरेन्द्रियश्वासोच्छ्वासभेदात् चतस्रः पर्याप्तयो भवन्ति ॥ ३० ॥

अथ विकलानां पर्याप्तिमाह—

विगले पंच पजत्ती, छद्दिसि आहार होइ सव्वेसिं ।

पणगाइपए भयणा, अह सन्नतियं भणिस्सामि ॥३१॥

(अव०) पूर्वोक्तं पर्याप्तिचतुष्कं भाषापर्याप्त्यधिकं विकले पर्याप्तिपञ्चकम् । अथ विंशतितममाहारद्वारमाह । सर्वेषां जीवानां षड्दिक आहारो भवति । सर्वे जीवा दिक्षट्कस्थानाहारपुद्गलान् गृह्णन्तीतिभावः । पञ्चादिकादिके आहारे भजना । यथा लोकान्तर्वर्त्तिजीवानां पञ्चदिक्कः । लोकनिष्कूटस्थानां त्रिचतुर्दिक्कः । एकविंशं संज्ञाद्वारमाह । अथ संज्ञात्रिकं भणिष्यामि ॥ ३१ ॥

टीका– विगले पञ्चेति विकलानां द्वित्रिचतुरिन्द्रियाणामाहारशरीरेन्द्रियश्वासोच्छ्वासभाषाभेदात् पञ्च पर्याप्तयो भवन्ति । पर्याप्तिद्वारं व्याख्यातं । अथ विंशतितममाहारद्वारं विवृणोति । छद्दिसित्ति० षट्सु दिक्षु सर्वेषां संसारिणां जीवानां गत आहारो भवति । षड्भ्यो दिग्भ्यो जीवा आहारं गृह्णन्ति इत्यर्थः । लोकान्ते लोकप्रान्ते च पुनः लोककोणे लोकान्ते ये जीवास्सन्ति तेषां जीवानां पञ्चसु अथवा चतसृषु तिसृषु यथा संभवमाहारो भवति, पञ्चकादिपदेषु भजना कोऽर्थः ? केचन जीवाः पञ्चसु दिक्षु गतान् पुद्गलान् केचन चतसृषु दिक्षु गतान् पुद्गलान् केचन तिसृषु दिक्षु गतान् पुद्गलान् आहारयन्ति इति भावः । इत्याहारद्वारं व्याख्यातं । अथैकविंशतितमं संज्ञाद्वारं व्याख्यास्यति । अहेति० अथ संज्ञात्रिकं भणिष्यामि भणामीत्यर्थः ॥ ३१ ॥

चउविहसुरतिरिएसुं, निरएसु य दीहकालिगी सन्ना।
विगले हेउवएसा, सन्नारहिया थिरा सव्वे ॥३२॥

(अव०) चतुर्विधसुरतिर्यक्षु निरयेषु च दीर्घकालिकी संज्ञा। दीर्घोऽतीतानागतवर्त्तमानविषयः कालो ज्ञेयो यस्या इति व्युत्पत्तेः, विकले हेतूपदेशिकी संज्ञा। किञ्चिन्मनोज्ञानसहिता वर्त्तमानविषया संज्ञेत्यर्थः। विशिष्टैतत्संज्ञात्रयरहिताः सर्वे स्थिरा ज्ञेयाः ॥३२॥

टीका—चउविहेति० चतुर्विधसुरेषु तिर्यक्षु नैरयिकेषु च दीर्घकालिकीसंज्ञा भवति। अत्र चकारः समुच्चयार्थः, भवतीत्यध्याहारः। यः पुरुषः दीर्घमपि कालं विषयमतीतमर्थं स्मरति भविष्यच्च वस्तु चिन्तयति। कथं नु नाम मया कर्तव्यमिति स दीर्घकालिक्युपदेशेन युक्तः। विकलेषु विकलेन्द्रियेषु हेतूपदेशिकी संज्ञा स्यात्। यस्तु सचिन्त्येष्टानिष्टेषु छायातपादिवस्तुषु स्वदेहपालनहेतोः प्रवृत्तिनिवृत्ती विधत्ते स हेतूपवादोपदेशेन युक्तः। सर्वे स्थावराः संज्ञारहिता भवन्ति। स्थावरेषु संज्ञा न भवन्तीत्यर्थः ॥ ३२ ॥

केषु केषु काः संज्ञा भवन्ति? ता आह—

मणुआण दीहकालिय, दिट्ठीवाओवइसिया केवि।
पण पजतिरिमणुअच्चिय, चउविहदेवेसु गच्छंति ॥३३॥

(अव०) मनुजानां दीर्घकालिकी संज्ञा। दृष्टिवादोपदेशिकी क्षायोपशमिकादिसम्यक्तसहिताः केऽपि। पञ्चेन्द्रियतिर्यंचोऽप्येतत्संज्ञायुक्ता भवन्ति। केचित् परमलत्वान्न विवक्षिताः, द्वाविंशं गतिद्वारं त्रयोविंशमागतिद्वारं चाह। पर्याप्ताः पञ्चेन्द्रियाश्च तिर्यंचो मनुजाश्चतुर्विधदेवेषु गच्छन्ति। न शेषजीवाः। इति देवानामागतिद्वारम् ॥ ३३ ॥ अथ देवानां गतिद्वारमाह—

टीका—मणुआणेति० मनुष्याणां सामान्यतः दीर्घकालिकीसंज्ञा
भवति, विशेषस्तु केऽपि मनुजाः दृष्टिवादोपदेशिकाः स्युः।
यस्तु सम्यग्दृष्टिर्हेतोर्यथाशक्ति रागद्वेषादिरिपून् पराभवति
जयतीत्यर्थः, स दृष्टिवादोपदेशिकया सम्यग्दृष्टिरेवेत्यर्थः। केऽ-
पि पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोऽपि एतत्संज्ञायुक्ता अपि, परमल्पत्वान्न
विवक्षिताः। सुखावबोधाय स्वामितया संज्ञात्रयं योजयति,
यथा-द्वीन्द्रियादीनां अर्थात् सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियाणां च हेतू
पदेशिकीसंज्ञा, गर्भजतिर्यग्नरसुरनारकाणां दीर्घकालिकीसंज्ञा,
छद्मस्थसम्यग्दृशां मनुष्याणां केषाञ्चित् तिरश्चां च दृष्टिवादोप-
देशिकी संज्ञा, तु पुनः मनुष्याणां दीर्घकालिकीसंज्ञा स्यात्,
अतो मनुष्येषु द्वे दृष्टी भवत इत्यर्थः। पृथिव्याद्येकेन्द्रियाणां
वल्ल्यारोहणाद्यभिप्रायरूपा ओघसंज्ञैवेत्यर्थः। संज्ञाद्वारं प्ररूपितं
। अथ द्वाविंशतितमं गतिद्वारमाह– पणपज्जेति० चतुर्विधदेवेषु
पर्याप्तिभिः पूर्णाः गर्भजपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्याश्च गच्छन्ति–
यान्तीत्यर्थः। चतुर्विधदेवेषु संख्यातायुषो मनुष्यास्तेषां गमनं
अत्र गमनं प्राप्तिः स्याद्वादो भवतीत्यवसेयम्। देवानां गति-
द्वारं समाप्तम् ॥ ३३ ॥

अथ देवानामागतिद्वारमाह—

संखाउ पजपणिंदि, तिरियनरेसु तहेव पज्जते ।
भूदगपत्तेयवणे, एएसुच्चिय सुरागमणं ॥३४॥

(अव०) संख्यातायुःपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्नरेषु। तथैव प
र्याप्ताभूदकप्रत्येकवने एतेष्वेव सुराणामागमनमुत्पादो भवति।
इति सुरगत्यागती नारकाणां गत्यागती आह ॥ ३४ ॥

टीका—संखाउ पज्जेति० संख्यातायुष्षु पर्याप्तेषु पञ्चेन्द्रिय-
तिर्यक्षु तथा मनुष्येषु च तथैव पर्याप्तयोर्भूदकयोर्भूजलयोः
प्रत्येकवनस्पतौ च एतेष्वेव पञ्चस्वेवेत्यर्थः, सुराणामागतिराग-
मनं भवति। सुराणामागतिद्वारं व्याख्यातं ॥ ३४ ॥

पज्जत्तसंखगब्भय, तिरियनरा निरयसत्तगे जंति ।
निरयउवट्टा एएसु, उप्पज्जंति न सेसेसु ॥३५॥

(अव०) पर्याप्तसंख्यातायुषो गर्भजतिर्यग्नराः नरकसप्तके यांति 'असन्नि खलु पढम'मिति वचनात् असंज्ञिनोऽपि प्रथमां पृथिवीं यावद्यांति । परं तेषामिह नाधिकृतत्वात् । नरकादुद्वृत्ताश्च जीवा एतल्लक्षणेषु एतेष्वेव तिर्यङ्नरेषूत्पद्यंते, न शेषेषु जीवेषु । इति नारकगत्यागती ॥३६॥ अथ पृथ्व्यब्वनस्पतीनां गत्यागती आह—

टीका— पज्जत्तेति० पर्याप्ताः संख्यातायुषो गर्भजतिर्यंचः संख्यातायुषो नराश्च सप्तसु निरयेषु यान्ति-गच्छन्ति । "असन्नी खलु पढमं" इति वचनात् असंज्ञिनोऽपि प्रथमां पृथिवीं यावत् यान्ति, परं तेषा इहानधिकृतत्वात् नोक्तं । नैरयिकगतिद्वारं व्याख्यातं । अथ नैरयिकागतिद्वारं व्याख्यानयति । निरउत्ति० तथा निरयान्नरकात् उध्धृताश्च्युता जीवा एतेष्वेव संख्यातायुष्षु गर्भजतिर्यग्मनुष्येष्वप्युत्पद्यन्ते आयान्तीत्यर्थः, शेषेभ्यो द्वाविंशतिद्वारेभ्यो नैरयिका जीवा न भवन्ति, एतेषु च नोत्पद्यन्ते नायान्तीत्यर्थः । नैरयिकागतिद्वारं प्ररूपितं ॥ ३५ ॥

अथ पृथिव्यब्वनस्पतिषु जीवानां गतिद्वारमाह—

पुढवीआउवणस्सइ, मज्झे नारयविवज्जिया जीवा ।
सव्वे उववज्जंति, नियनियकम्माणुमाणेणं ॥३६॥

(अव०) पृथिव्यब्वनस्पतिकायमध्ये नारकविवर्जिताः सर्वे त्रयोविंशतिदंडकस्था जीवा उत्पद्यंते । निजनिजयथाकृतकारितानुमोदितकर्मणामनुमानेन । नजनिजेतिवदता सूत्रकृता स्वयं कृतं कर्म भुज्यते न परकृतमित्यावेदितम् । कर्मानुमानेनेति सत्कर्मणा शुभस्थाने असत्कर्मणाशुभस्थाने ॥ ३६ ॥ एतेषामेव गतिद्वारमाह ।

टीका पुढवीति० पृथिव्यब्वनस्पतीनां मध्ये नारकविवर्जिता इति, कोऽर्थः-निरयजीवान् विहाय अन्ये सर्वे त्रयोविंशतिद-ण्डकस्थजीवा निजनिजकर्मानुमानेन-निजशुभाशुभकर्मानुसारे-णोत्पद्यन्ते प्रादुर्भवन्तीत्यर्थः । गतिद्वारं विवर्णितम् ॥ ३६ ॥

अथ पृथिव्यब्वनस्पतीनां त्रयाणामागतिद्वारमाह—

पुढवाइदसपएसुं, पुढवीआऊवणस्सई जंति ।

पुढवाइदसपएहि य, तेउवाउसु उववाओ ॥३७॥

(अव०)तस्यैव दंडकत्रयस्य जीवानां गतिद्वारमाह। पृथिव्यादिदश-पदेषु अनुक्रमस्थितेषु पृथिव्यब्वनस्पतिजीवा यांति । न नारक-सुरेष्वित्यर्थः।इति पृथ्व्यब्वनस्पतीनां गत्यागती। तेजोवाय्वोरागति-द्वारमाह। तेजोवाय्वोर्विषये पृथिव्यादिदशपदेभ्य एव उत्पद्यन्ते जीवाः ॥३७॥ अथ तेजोवाय्वोर्गतिमाह—

टीका—पुढवाइत्ति० पृथिव्यादिदशपदेषु- स्थावरविकलेन्द्रिय-तिर्यग्मनुष्येषु पृथिव्यब्वनस्पतयः- पृथिव्यब्वनस्पतिसत्कजीवा यान्ति गच्छन्तीत्यर्थः । पृथिव्यादिभ्यः दशपदेभ्य जीवानां तेजोवाय्वोरुपपात उत्पत्तिर्भवति इत्यर्थः । त्रयाणां पृथिव्यब्व-नस्पतीनामागतिद्वारं व्याख्यातम् ॥ ३७ ॥

अथ तेजोवाय्वोर्गतिद्वारमाह—

तेउवाऊगमणं, पुढवीपमुहंमि होइ पयनवगे ।

पुढवाइठाणदसगं, विगलाइतिअं तहिं जंती ॥३८॥

(अव०) तेजोवाय्वोरागमनं पृथिवीप्रमुखे पदनवके भवति इति तेजोवायुगत्यागती । विकलेन्द्रिया पृथिव्यादिदशस्थानेभ्य ए-[illegible] मृत्वा न तत्र यांति नान्यत्र । इति विकलगत्यागती ॥ ३८ ॥ अथ गर्भजतिर्यग्मनुष्याणां गत्यागती आह ।

टीका—तेउवाऊ इत्ति० तेजोवाय्वोर्गमनं पृथिव्यादिनवपदेषु स्थावरविकलेन्द्रियतिर्यक्षु तेजोवायुजीवानामुपपातः स्यात्, स्यादित्यध्याहारः।पृथिव्यादिनवपदसम्बन्धिनो(षु)जीवा(वेषु)(गच्छ) भवन्तीत्यर्थः। प्राकृतत्वात् द्विवचनं न स्यात् एकवचनं बहुवचनं च स्यात्, (तां), द्वयोस्तेजोवाय्वोर्गतिद्वारं कथितम्। अथ विकलानां गतिद्वारमाह–पुढवाइठाणेति० विकलेन्द्रियेषु पृथिव्यादिस्थानदशका जीवा यान्ति, स्थावरविकलेन्द्रियतिर्यग्मनुष्या गच्छन्ति इत्यर्थः। विकलानां गतिद्वारं व्याख्यातम्। अथ विकलानामागतिद्वारमाह–तेषु पृथिव्यादिस्थानदशकेषु विगलेति० द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियत्रिकं याति विकलेन्द्रियास्तेषु भवन्तीत्यर्थः विकलानामागतिद्वारं विवर्णितम् ॥ ३८ ॥

अथ गर्भजतिरश्चां गत्यागतिद्वारमाह—

गमणागमणं गब्भय–तिरिआणं सयलजीवठाणेसुं।
सव्वत्थ जंति मणुआ, तेउवाउहिं नो जंति ॥३९॥

(अव०) गर्भजतिर्यंचो मृत्वा चतुर्विंशतिदंडकेषु यांति। चतुर्विंशतिदंडकेभ्यश्चोत्प ते। इति गर्भजतिर्यग्गत्यागती। मनुजा मनुष्याः सर्वत्र यांति। सर्वत्रेतिवचनबलात् चतुर्विंशतिदंडकजीवेषु कालक्षेत्रसंहननसद्भावे च सिद्धावपि यांति। आयांतश्च मनुजास्तेजोवायुवर्जितेभ्यो द्वाविंशतिदंडकेभ्यः समायांति। इति समर्थिते सविस्तर गत्यागतिद्वारे। अथ चतुर्विंशं वेदद्वारमाह।

टीका–गमणेति० सकलजीवस्थानेषु चतुर्विंशतिदण्डकेषु गर्भजतिरश्चां गमनागमने–गत्यागती भवतः। अथ मनुष्याणां गतिमाह–सर्वत्र चतुर्विंशतिदण्डकेषु मनुष्या यान्ति गच्छन्ति। अथ मनुष्याणां गतिद्वारं प्रोच्यते– द्वाविंशतिदण्डकेभ्यो उद्धृताश्च्युता जीवा मनुष्या भवन्ति, तेजोवायुभ्याम् च्युता जीवा मनुष्यत्वेन नोत्पद्यन्ते, न मनुष्या भवन्तीत्यर्थः। सूत्रपाठत्वात् अ यापि व्यस्तं प्रतिपादितं, अनुक्रमेण नोक्तमित्यर्थः। गत्यागतिद्वारे विवर्णिते ॥ ३९ ॥

अथ चतुर्विंशतितमं वेदद्वारमाह-

वेयतिय तिरिनरेसु, इत्थी पुरिसो य चउविहसुरेसु।
थिरविगलनारएसुं, नपुंसवेओ हवइ एगो ॥४०॥

(अव०) वेदत्रिकं तिर्यङ्नरेषु, स्त्रीवेदः पुरुषवेदश्च चतुर्विधसुरेषु, स्थिरविकलनारकेषु नपुंसकवेद एक एव भवति। अथ संक्षिप्तसङ्ग्रहणीगाथाद्वयानुक्तमपि, सोपयोगित्वात्किंचिज्जीवाल्पबहुत्वं दर्श्यते ॥ ४० ॥

टीका—वेअतियेति० तिर्यग्नरेषु पुरुषस्त्रीनपुंसकलक्षणा वेदा भवन्ति। तथा चतुर्विधसुरेषु स्त्रीपुरुषलक्षणौ वेदौ भवतः। च पुनः स्थावरविकलेन्द्रियनैरयिकेष्वेको नपुंसकलक्षणो वेदो भवति। अत्र चकारः समुच्चयार्थः। तत्र येन स्त्रियं प्रति अभिलाषः स्यात् स नरवेदः तृणदाहतुल्यः। येन पुरुषं प्रति अभिलाषः स्यात् स स्त्रीवेदः करीषदाहतुल्यः। येन पुंस्त्रीविषये अभिलाषः स्यात् स नपुंसकवेदः नगरदाहतुल्यः। वेदद्वारं प्ररूपितम् ॥४०॥

अथ गाथाद्वयेनाल्पबहुत्वद्वारमाह—

पज्जमणु बायरग्गी, वेमाणिअभवणनिरयवंतरिया।
जोइस चउपणतिरिआ, बेइंदि तेइंदि भू आउ ॥४१॥
वाऊ वणस्सइच्चिय, अहिआ अहिआ कमेणिमे हुंति।
सव्वेवि इमे भावा, जिणा! मएऽणंतसो पत्ता ॥४२॥

(अव०) पज्जत्तिपदं बायरत्तिपदं च वदतः सूत्रकृतोऽयमाशयः, यदहं पर्याप्तबादरजीवविषयमेवाल्पबहुत्वं वदिष्यामिनोऽपर्याप्तसूक्ष्मविषयमिति। इह संसारे स्तोकाः पर्याप्तमनुष्याः। मनुष्येभ्यो बादराग्निजीवाः असंख्यातगुणाः। एभ्यो वैमानिका अ-

संख्यातगुणाः । एभ्यो भवनपतयोऽसंख्यातगुणाः । एभ्यो नारका असंख्यातगुणाः । एभ्यो व्यंतरा असंख्यातगुणाः । एभ्यो ज्योतिष्काः संख्यातगुणाः । एभ्यश्चतुरिंद्रियाः संख्यातगुणाः । एभ्यो पंचेन्द्रियास्तिर्यंचो विशेषाधिकाः । एभ्यो द्वींद्रिया विशेषाधिकाः एभ्यस्त्रीन्द्रिया विशेषाधिकाः । एभ्यः पृथ्वीकाया विशेषाधिकाः । ततोऽप्काया विशेषाधिकाः। अप्कायिकेभ्यो वायुकायिका असंख्यातगुणाः । ततो वनस्पतयोऽनन्तगुणाः । संख्यातगुणेन असंख्यातगुणेन अनन्तगुणेन च यथासम्भवमिमे जीवाः क्रमेणाधिका भवन्ति । अथ ग्रन्थकारो जिनान् स्तौति । सर्वेऽपि च इमे पूर्वोक्ता भावाः तेषु तेषु जीवस्थानकेषु गमनागमनरूपाः हे जिनाः मया भवे भ्रमता अनन्तशः अनन्तकृत्वः प्राप्ताः यथा मया तथाऽन्यैरपि जीवैः । एतेन स्वामिनः पुरः स्वदुःखं निवेदितम् । अथ तद्विमोचनलक्षणां प्रार्थनामाह ।

टीका— पज्जमणुइति० पज्जत्ति बायरत्ति पदं वदतः सूत्रकृतोऽयमाशय—यदहं पर्याप्तबादरजीवविषयमेवाल्पत्वबहुत्वं वदिष्यामि नापर्याप्तसूक्ष्मविषयमिति । इह संसारे सर्वजीवेभ्यः सर्वस्तोकाः गर्भजमनुष्यास्तेभ्योबादराग्नयः पर्याप्ताः असंख्येयगुणाधिकास्तेभ्यो वैमानिका देवा असंख्येयगुणाधिकास्तेभ्यो भवनवासिनो देवा असंख्येयगुणाधिकास्तेभ्यो नैरयिका असंख्येयगुणाधिकास्तेभ्योव्यन्तरा असंख्येयगुणाधिकास्तेभ्यो ज्योतिष्काः संख्येयगुणाधिकास्तेभ्यश्चतुरिन्द्रियाः पर्याप्ताः संख्येयगुणाधिकास्तेभ्यः संज्ञिनः पञ्चेन्द्रिया विशेषाधिकास्ततो द्वीन्द्रिया विशेषाधिकास्ततस्त्रीन्द्रिया विशेषाधिकास्तेभ्यः पृथवीकायिका जीवा असंख्यातगुणाधिकास्तेभ्योऽप्कायिका जीवा असंख्यगुणाधिकास्तेभ्यो वायुकायिका जीवा असंख्येयगुणाधिकास्तेभ्यो वनस्पतिकायिका जीवा अनन्तगुणा क्रमेण इमे पूर्वोक्तपदार्थाः अधिका अधिका भवन्ति, मनुष्यादिवनस्प-

त्यवसानान् शब्दान् प्रति प्रत्येकं भवन्तीति क्रिया प्रयोज्येत्यर्थः । अत्र चकारः समुच्चयार्थः । घण्टालालान्यायेन पूर्वमग्रतः सर्वत्र अधिका भवन्ति च इति ग्रहणीयम्,त्पबहुत्वद्वारं समाप्तम् । अथ गाथोत्तरार्धेन (दण्डकभ्रान्ति दर्शयति-) सर्वेऽपि च इमे पूर्वोक्ता भावाः पर्याप्तास्तेषु तेषु जीवस्थानेषु गमनागमनरूपाः हे जिना ! मया भवे भ्रमता अनन्तशोऽनन्तकृत्वः प्राप्ताः । यथा मया तथाऽन्यैरपि जीवैः । एतेन स्वामिनां पुरः स्वदुःखं निवेदितम् । अथ तद्विमोचनलक्षणां प्रार्थनामाह-सव्वेवि इमे भावे० हे जिना ! परमेष्ठिनो ! मया सर्वेऽपि इमे चतुर्विंशति दण्डकभावाः अनन्तशः प्राप्ताः अनन्तवारान् संप्राप्ता इत्यर्थः अनन्तवारान् अनन्तशः ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

संपइ तुम्ह भत्तस्स, दंडगपयभमणभग्गहियअस्स ।
दंडतियविरय(इ)सुलहं,लहुं मम दिंतु मुक्खपयं ॥४३

(अव०) हे जिना इति पदं पूर्वस्थितमिहापि गृह्यते । तेन हे जिनाः ! सम्प्रति इह भवे भवतां भक्तस्य त्रिकरणशुद्ध्या भक्तिमतः । दण्डकपदेषु सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तरूपेषु भ्रमणं पुनः पुनर्गत्यागतिरूपं तस्माद्भग्नं निवृत्तं हृदयं मनो यस्य एवंविधस्य मम विज्ञप्तिकर्तुः । दण्डत्रिकात् मनोवाक्कायानर्थप्रवृत्तिरूपाद्विरतानां सुलभं सुप्रापं दण्डत्रिकविरतसुलभं मोक्षपदं लघु शीघ्रं भवन्तो ददतु वितरन्तु ॥ ४३ ॥ ग्रन्थकारः स्वनाम कथयति-

टीका—सम्पइ तुम्हेति० हे जिना ! हे परमेष्ठिनो भवन्तः सम्प्रति शीघ्रं मम मोक्षपदं-शिवपदं ददतु दिशन्तु दिन्तु इति क्रियापदं भवन्त इति कर्तृपदमध्याहार्यं । अथवा प्राकृते हि मंत्रं विधयो विकल्प्यन्ते इतिवचनात् युष्मदर्थे अन्यपुरुषवचनप्रवृत्तिरित्यर्थः । कथम्भूतं ? मोक्षपदं दण्डत्रिकविरतिसुलभं दण्ड्यन्ते सर्वस्वापहारेण लुप्यन्ते जन्तवः प्राणिन एभिरिति दण्डाः मनोवाक्कायरूपा इत्यर्थस्तेषां त्रिकं दण्डत्रिकं

दण्डत्रिकस्य विरतिर्विरमणं दण्डत्रिकविरतिः दण्डकत्रिकविरत्या सुलभं सुप्रापं दण्डत्रिकविरतिसुलभं किंभूतस्य मम भक्तस्य-भक्तिमतः केषां? युष्माकं पुनः किंभूतस्य मम? दण्डकपदभ्रमणभग्नहृदयस्य दण्डकपदेषु सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तरूपेषु भ्रमणं पुनर्गत्यागतिरूपं तस्मात् भग्नहृदयस्य निवृत्तचित्तस्येत्यर्थः।दण्डकानां पदानि दण्डकपदानि दण्डकपदेषु भ्रमणं दण्डकपदभ्रमणं दण्डकपदभ्रमणात् भग्नं-निवृत्तं हृदयं-चित्तं यस्य स दण्डकपदभ्रमणभग्नहृदयस्तस्य दण्डकपदभ्रमणभग्नहृदयस्य इति गाथार्थः ॥ ४३ ॥

सिरिजिणहंसमुणीसर-रज्जे सिरिधवलचंदसीसेणं ।
गजसारेणं लिहिया, एसा विन्नत्ति अप्पहिया ॥४४॥

(अव०) श्रीजिनहंसमुनिनामानो ये श्रीजिनसमुद्रसूरिपट्टप्रतिष्ठिताः मुनीश्वराः खरतरगच्छाधिपतयः। तेषां राज्यं गच्छाधिपत्यलक्षणं तस्मिन् विजये सैद्धान्तिकशिरोमणीनां श्रीधवलचन्द्रगणीनां शिष्येण संविग्नपण्डिताभयोदयगणि लालितपालितेन गजसारगणिना नाम्ना साधुना। एषा विचारषट्त्रिंशिकारूपा श्रीतीर्थंकृतां विज्ञप्तिर्लिखितेतिपदेनौद्धत्यं परिहृतं। यद्वा पूर्वं यन्त्रपत्रतया लिखिता ततः सुगमतायै सूत्रतया गुम्फिता इत्यर्थः। किंभूता आत्महिता अनेन "न भवति हि धर्मः श्रोतुः, सर्वस्यैकान्ततो हितश्रवणात्। ब्रुवतोऽनुग्रहबुद्ध्या वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति ॥ १ ॥" इति सूक्तं स्थापितम् ॥ ४४ ॥

निधिमुनिशरेन्दु(१५७९)संवल्लिपीकृता पत्तनेऽवचूर्णिरियम्।
संशोध्या धीमद्भिर्मत्वेदं बालचापल्यम् ॥ १ ॥

॥ श्रीगजसारमुनिप्रणिता स्वोपज्ञाऽवचूर्णिः समाप्ता ॥

टीका- सिरिजिणेति० हे जिनाः ! जिनहंसमुनीश्वरराज्ये गजसारेण एषा विचारषट्त्रिंशिकाकरणरूपा विज्ञप्तिर्लिखिता । किंभूतेन गजसारेण ?-श्रीधवलचन्द्रशिष्येण श्रिया युक्तो धवलचन्द्रः श्रीधवलचन्द्रस्तस्य शिष्यः श्रीधवलचन्द्रशिष्यस्तेन श्रीधवलचन्द्रशिष्येण, किंभूता विज्ञप्तिः ?-आत्महिता आत्मने हिता आत्महिता, परेषां बोधो भवतु वा मा भवतु परं वक्तुर्बोधो भवति, यदुक्तं-अस्तु वा माऽस्तु वा बोधः, परेषां कर्मयोगत । तथापि वक्तुर्महती, निर्जरा गदिता जिनैः ॥ १ ॥ ४४ ॥

अथ टीकाकारप्रशस्तिः—

(आर्या) श्रीहीरविजयसूरीश्वरा बभूवुर्जगत्त्रयीविदिताः ।
तद्वाचका महोदयराजः श्रीभानुचन्द्राह्वाः ॥ १ ॥

जयन्तु ते वाचकभानुचन्द्रा, अभ्यस्तसद्वाङ्मयवीततन्द्राः ।
ये मानसे हंसतया बभूवुरकब्बरक्षोणिपतेस्तु भूते ॥ २ ॥

श्रीभानुचन्द्रामलपट्टचारुप्रासादशृङ्गार्जुनकुम्भकल्पाः ।
ते सन्तु चारूदयचन्द्रसन्तः, सुखापनाः सूरिकलालसन्तः ॥३॥

सर्व्यार्थसार्थाकृतिकामधेन्वाः, यस्य प्रासादाद गुणचक्रधाम्नः ।
षट्त्रिंशिकायाः किल रूपचन्द्रो,वृत्ति चकारोदयचन्द्रशिष्यः ४

संवत्शरर्ष्यङ्गनिशेश १६७८ वर्षे, ज्येष्टस्य कृष्णेतरचारुपक्षे ।
षष्ठ्यां तिथौ वाक्पतिर्यवारे,स्वस्यावबोधाय विनिर्मितेयम् ५

अनुष्टुभ- ग्रन्थाग्रगणितं सर्वं, संख्ययाऽत्र विनिश्चितम् ।
षट्त्रिंशदधिकं पञ्च, शतं जातमनुष्टुभाम् ॥ ६ ॥

॥ श्रीरूपचन्द्रमुनिप्रणिता वृत्तिः समाप्ता ॥

॥ समाप्तमिदं वृत्त्यवचूर्णिविभूषितम् ॥

॥ श्रीदण्डकप्रकरणम् ॥